सुलभ साहित्य माला

अठारहवाँ पुष्प

शरत्-साहित्य

(अठारहवाँ भाग)

दत्ता



अनुवादकर्ता—
सुन्दरलाल त्रिपाठी

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर लिमिटेढ, बम्बई ४

प्रकाशक—
नाथूराम प्रेमी
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर लिमिटेड
हीराबाग, बम्बई ४

पाँचवीं आवृत्ति
मार्च १९५६

मूल्य डेढ़ रुपया

मुद्रक—
रघुनाथ दिपाजी देसाई,
न्यू भारत प्रिंटिंग प्रेस,
६ केळेवाडी, गिरगाँव, बम्बई ४

दत्ता

१

उस समय हुगली ब्रांच-स्कूलके हेडमास्टर साहब जिन तीन लड़कोंको विद्यालयके रत्न बताते थे वे तीनों अलग अलग गाँवोंसे हर रोज एक कोसका रास्ता पैदल चलकर पढ़ने आते थे। तीनोंमें बहुत अधिक प्रेम था। ऐसा एक भी दिन नहीं आता था जिस दिन ये तीनों मित्र स्कूलके रास्तेमें एक बरगदके ठूँठके नीचे इकट्ठे न होते हों और वहाँसे साथ साथ न जाते हों। तीनोंके मकान हुगलीके पश्चिममें थे। जगदीश सरस्वतीका पुल पार करके दिग्सा गाँवसे आता था और वनमाली तथा रासबिहारी आते थे पास-पासके गाँव कृष्णपुर और राधापुरसे। इनमें जगदीश सबसे अधिक मेधावी था और सबसे ज्यादा गरीब भी। उसके पिता एक ब्राह्मण पण्डित थे जो यजमानी करके, ब्याह-जनेऊ कराकर अपनी गृहस्थी चलाते थे। वनमाली धनी घरका था। उसके पिताको लोग कृष्णपुरका जमींदार कहते थे। रासबिहारी भी अच्छे खाते-पीते गृहस्थ थे। जमीन-जायदाद, खेती-बाड़ी, तालाब-बगीचा वगैरह गँवई गाँवमें जिनके होनेपर गृहस्थीका निर्वाह सुन्दरतासे हो सकता है वह सब उनके पास था। यह सब होते हुए भी लड़कोंने क्यों शहरमें मकान किराये नहीं ले लिया और क्यों वे आँधी-पानी शीत-घाम सिरपर सहकर इतना रास्ता पैदल चलकर रोज घरसे विद्यालय आते-जाते रहे, इसका कारण यह था कि उन दिनों पिता-माता कल्पना भी नहीं कर पाते थे कि लड़कोंके लिए यह भी कोई कष्ट है, बल्कि वे समझते थे कि इतना दुख सहाये बिना सरस्वती देवी पढ़ाई नहीं दे सकतीं। सो कारण जो भी हो तीनों लड़कोंने इसी तरह एण्ट्रेन्स पास की। बरगदके नीचे बैठकर और बरगदके ठूँठको गवाह बनाकर तीनों मित्र रोज प्रतिज्ञा करते थे कि जिन्दगीमें हम कभी अलग नहीं होंगे कभी विवाह नहीं करेंगे वकील बनकर

तीनों एक मकानमें रहेंगे, रुपए कमाकर सब एक सन्दूकमें जमा करेंगे और उन्हें देशके काममें लगा देंगे।

यह तो हुई लड़कपनकी कल्पना। लेकिन जो कल्पना नहीं है, सच है, वह आखिर किस रूपमें सामने आया यही संक्षेपमें कहता हूँ।

मित्रताकी गाँठ बी० ए० क्लासमें ही ढीली पड़ गई। उस समय कलकत्तेमें केशवचन्द्र सेनका प्रचण्ड प्रताप था। व्याख्यानोंकी धूम थी। उसे गँवई गाँवके तीनों लड़के सहसा सँभाल न सके—तीनों बह गये। यह ठीक है लेकिन बनमाली और रासबिहारी जिस प्रकार धूमधड़ाकेसे दीक्षा लेकर ब्राह्म समाजमें शामिल हो गये जगदीश वैसा न कर सका—असमंजसमें पड़ गया। वह तीनोंमें सबसे अधिक मेधावी अवश्य था लेकिन बड़ा ही कमजोर भावुक। तिसपर उसके ब्राह्मण पण्डित पिता उस समय तक जीवित थे, जब कि यह बला ? दोनोंके सिरपर नहीं थी। कुछ समय पहले पिताके परलोक चले जानेके कारण बनमाली कृष्णपुरका जमींदार हो गया था और रासबिहारी अपने राधापुरकी सारी जमीन-जायदादका एकच्छत्र सम्राट्। इसलिए थोड़े दिन बाद ही वे दोनों मित्र ब्राह्म-परिवारोंमें विवाह करके और विदुषी पत्नियाँ लेकर घर लौट आये। लेकिन दरिद्र जगदीशको यह सुभीता नहीं मिल सका। उसे ठीक समयपर कानून पास करना पड़ा और एक गृहस्थ ब्राह्मणकी ग्यारह वर्षकी कन्यासे विवाह करके रुपए कमानेके लिए इलाहाबाद चले जाना पड़ा। लेकिन, बाकी दोनोंको जो काम कलकत्तेमें बिलकुल सहज जान पड़ा था गाँव लौटनेपर वही बहुत ही कठिन हो गया। बहुएँ ससुरालमें आकर घूँघट नहीं काढ़तीं जूते-मोजे पहनकर रास्तेमें बाहर निकलती हैं—यह तमाशा देखनेके लिए गाँवोंके लोग आ-आकर भीड़ करने लगे और गाँव-भरमें ऐसी नहीं छी छी थू थू शुरू हो गई कि एकदम निरुपाय हुए बगैर कोई भी वहाँ जीको लेकर वास न कर सकता। बनमालीके पास उपाय था इसलिए वह गाँव छोड़कर कलकत्तेमें आकर रहने लगा और केवल जमींदारीके भरोसे न रहकर उसने रोजगार भी आरम्भ कर दिया। लेकिन रासबिहारीकी आय थी थोड़ी इसलिए वह एक सूप * जैसी

* बंगालका एक प्रयोग—आगे दिपाहि सूपे पीछे दिपाहि सूपे (आगेमें ही लगा लो पीठपर सूप रख लिया) अर्थात् उपाय न होनेके कारण विवाद किये बिना ही सब सहनेको तत्पर होना।

पीठपर और एक विदुषी पत्नीको पीठपर लादकर किसी प्रकार अपने गाँवमें ही समाजसे बहिष्कृत एक घर होकर रहने लगा।

अतएव इन तीनों मित्रोंमेंसे एकके इलाहाबादमें एकके रामपुरमें और एकके कलकत्तेमें रहने लगनेके कारण जिन्दगी-भर पड़ोसी रहकर एक एक मकानमें निवास करने और एक सन्दूकमें रुपये जमा करके लेनदेन करनेकी प्रतिज्ञा चिर-काल स्थगित रही और जो सूखा बरगदका वृक्ष इसका गवाह था वह शायद किसीके विरुद्ध कोई अपराध लगाये बिना चुपचाप मन ही मन हँसता रहा।

इसी प्रकार बहुत दिन बीत गये। इस बीच तीनों मित्रोंमें शायद ही कभी भेंट हुई हो; लेकिन फिर भी बचपनका प्रेम एकदम कम नहीं हुआ। जगदीशके जब लड़का हुआ तब उसने वनमालीको मुबारकबाद देते हुए इलाहाबादसे लिखा 'तुम्हारे अगर लड़की हो तो उसे बहू बनाकर लड़कपनमें जो पाप किया है, उसका कुछ प्रायश्चित करूँगा। यह बात मैं किसी दिन नहीं भूला हूँ कि तुम्हारी बगलसे ही पड़ोसी बनकर अब मैं तुमसे दूर रह रहा हूँ।'

वनमालीने उसके उत्तरमें लिखा 'बहुत अच्छा। मेरी कामना है कि तुम्हारा लड़का दीर्घायु हो। लेकिन मेरे लड़की होनेकी कोई आशा नहीं। तो भी यदि किसी दिन महाप्रभुके आशीर्वादसे सन्तान हुई, तो तुम्हें दूँगा।" चिट्ठी लिखकर वनमाली मन ही मन हँसा; क्योंकि दो वर्ष पहले उसके दूसरे मित्र रासबिहारीके जब लड़का हुआ, तब उसने भी ठीक यही प्रार्थना की थी। व्यापारकी कृपासे अब वह बहुत बड़ा धनी हो गया है। इसलिए उसकी कन्याको सभी अपनी बहू बनाना चाहते हैं।

२

चार छः महीनेकी नहीं पचीस वर्ष बादकी कहानी लिख रहा हूँ। वनमाली अब बूढ़े हो गये हैं। कई वर्षोंसे रोग भोगते भोगते वे चारपाईपर पड़ गये हैं और उन्हें मालूम हो रहा है कि अब शायद उठना नहीं हो सकेगा। हमेशासे ही वे भगवत्परायण और धर्मभीरु हैं। मौतसे उन्हें डर नहीं केवल यह सोचकर ही कुछ दुःखी हैं कि वे अपनी एकमात्र कन्या विजयाका ब्याह कर जानेका मौका नहीं पा सके। उस दिन तीसरे पहर अचानक विजयाका हाथ अपने हाथमें लेकर बोले "मेरे लड़का नहीं है, इसके लिए मैं जरा भी दुःखी नहीं। तू मेरी सब कुछ है। यद्यपि अभी तक तेरे अठारह वर्ष भी पूरे नहीं हुए हैं, किन्तु तेरे

सिरपर अपनी इतनी बड़ी सम्पत्तिका बोझ रखकर जाते हुए मुझे रत्तीभर भी भय नहीं हो रहा है। तेरे माँ नहीं, भाई नहीं, कोई बूढ़ा चाचा-दादा तक नहीं। तो भी मैं यह जानता हूँ कि मेरा सब सुरक्षित रहेगा। केवल एक अनुरोध किये जाता हूँ बेटी, जगदीश चाहे जो करे, और चाहे जैसा हो, वह मेरा बचपनका मित्र है। अपने जानते कर्ज़के बदले उसका घर-द्वार नहीं ले लेना। उसके एक लड़का है। उसे मैंने आँखोंसे नहीं देखा, लेकिन सुना है वह बहुत अच्छा है। बापके अपराधसे उसे निराश्रय मत करना बेटी, यही मेरा अन्तिम अनुरोध है।"

विजयाने आँसुओंसे रुँधे गलेसे कहा, "बापू, तुम्हारा आदेश मैं किसी दिन नहीं टालूँगी। जगदीश बाबू जितने दिन जियेंगे, उन्हें तुम्हारे समान ही मानूँगी, लेकिन उनके न रहनेपर सब सम्पत्ति उनके लड़केके लिए क्यों ही क्यों छोड़ दूँगी? उन्हें तुमने भी आँखों नहीं देखा और मैंने भी नहीं। और यदि सचमुच ही वे निकम्मे हैं, तब तो स्वयं ही अपने पिताका ऋण चुका सकेंगे।"

वनमालीने कन्याके मुँहकी ओर आँखें उठाकर कहा, "ऋण भी तो कुछ कम नहीं है बेटी। उनका लड़का यदि न चुका सके तो?"

कन्याने उत्तर दिया, "जो नहीं चुका सकता वह कुसन्तान है बापू, उसे सहारा देना उचित नहीं।"

वनमाली अपनी बुद्धिमती तेजस्विनी कन्याको पहचानते थे। इसलिए उन्होंने अधिक तर्क-वितर्क नहीं किया, और केवल एक लम्बी साँस लेकर कहा, "सारे काम-काजोंमें भगवानको सिर-माथेपर रखकर जो कर्तव्य हो वही करना बेटी। मैं कोई विशेष अनुरोध करके तुम्हें बाँधकर नहीं जाना चाहता।"

यह कहकर क्षण-भर चुप रहकर उन्होंने फिर एक साँस ले ली और कहा, "जानती हो बेटी विजया, यह जगदीश जब सचमुच मनुष्य कहे जाने योग्य था तब उसने तेरे पैदा होनेके पहले ही तुझे अपने इस लड़केके नामपर माँग लिया था। मैंने भी बेटी, बात दे दी थी।" यह कहकर उन्होंने उत्सुक दृष्टिसे देखा।

वनमालीकी यह कन्या बचपनमें ही माँसे बिछुड़ गई थी। इन्होंने ही उसके पिता-माता दोनोंका स्थान पूरा किया था। इसीलिए विजयाने पितासे सीधा बात करनेमें कभी संकोच नहीं किया, उसने कहा, "बापू, तुमने केवल मुँहसे ही बात दी थी, मनसे नहीं।"

क्यों बेटी ! ”

“ माँ होती तो क्या एक बार उन्हें अपनी आँखोंसे भी न देखना चाहते ! ”

वनमालीने कहा — “रासविहारीसे जब सुना कि उसका शायद अपनी माँके समान दुर्बल है, डॉक्टर लोग उसके दीर्घ जीवनकी आशा नहीं करते तब मैंने उसे नजदीक पाकर भी कभी बुलाकर नहीं देखना चाहा। वह उस समय इस कलकत्तेमें ही किसी एक बासेमें रहकर बी० ए० पढ़ता था। उसके बाद अपनी बीमारीकी परेशानीके कारण वह बात फिर सोची ही नहीं। लेकिन अब देखता हूँ, मुझसे भारी भूल हो गई बेटी। तो भी तुमसे सच कह रहा हूँ विजया, उस समय जगदीशको तेरे सम्बन्धमें मैंने अपने मनसे ही पसन्द किया था।” कुछ क्षण ठहरकर उन्होंने कहा — “आज तो सब यही जानते हैं कि जगदीश एक अकर्मण्य जुआरी, शराबी, नशेबाज है। लेकिन एक समय था जब वह जगदीश ही इस गाँवमें सबसे अच्छा था। विद्या-बुद्धिके लिए नहीं कहता बेटी, वह तो बहुत लोगोंमें होती है, लेकिन इस तरह जान देकर प्रेम करते मैंने और किसीको नहीं देखा; और वह प्रेम ही उसका काल हुआ। उसके अनेक दोष मैं जानता हूँ, किन्तु जब याद आता है कि स्त्रीकी मृत्युके कारण वह शोकसे पागल हो गया तब तेरी माँकी बात स्मरण करके मैं तो बेटी उसे मन ही मन क्षमा किये बिना न रह सका। उसकी स्त्री सती-लक्ष्मी थी। उसने मरनेके समय नरेन्द्रको पास बुलाकर केवल इतना ही कहा था — बेटा, केवल यही आशीर्वाद दिये जाती हूँ कि भगवानपर तुम्हारा अचल विश्वास रहे। सुना है कि शायद माँका अन्तिम आशीर्वाद निष्फल नहीं गया। नरेन्द्रने इतनी वयसमें ही भगवानको अपनी माँके समान ही प्रेम करना सीख लिया है। और जो यह कर सका है, संसारमें उसके लिए और क्या बाकी रहा बेटी !”

विजयाने प्रश्न किया — “तो क्या संसारमें यही सबसे बड़ा पाना है बाबू !”

मरणोन्मुख वृद्धकी सूखी आँखें सजल हो उठीं। सहसा दोनों हाथ बढ़ाकर कन्याको हृदयपर खींचकर उन्होंने कहा — “हाँ, यही सबसे बड़ा पाना है बेटी। संसारके भीतर संसारके बाहर — विश्वब्रह्माण्डमें इतना बड़ा पाना और कुछ नहीं है विजया। तुम अगर किसी दिन पा सको या न पा सको बेटी, पर जो पा सका है तुम उसीके पैरोंमें मस्तक रख सको, — मरते समय तुम्हें यही आशीर्वाद दिये जाता हूँ।”

विजया उस दिन पिताकी छातीपर औंधी पड़ी हुई थी। उसे ऐसा लगा

कि कोई मानो बहुत मधुर, बहुत करुणा दृष्टिसे उसके पिताके हृदयके भीतरसे उसके निजके हृदयके गहरे अन्तस्तल तक प्रेमपूर्वक एकटक देख रहा है। इस अभूतपूर्व परम आश्चर्यमय अनुभूतिने उस दिन क्षण-भरके लिए उसे घेर-सा लिया। वनमालीने कहा "नरेन्द्रका नाम जानती है। उसके मुँहसे सुना है कि वह डॉक्टर हो गया है लेकिन डॉक्टरी नहीं करता। यदि इस देशमें होता तो एक बार उसे बुलाकर आँखें भरकर देख लेता।"

विजयाने प्रश्न किया "इस समय वे कहाँ हैं?"

वनमालीने कहा "अपने मामाके पास बर्मामें। इस समय मुझमें कमरेतककी सब बातें चिट्ठियोंसे पढ़नेकी शक्ति नहीं है, तो भी उसके मुँहकी दो-एक उड़ती हुई बातोंसे मालूम हुआ मानो उस लड़केने अपनी माके सारे ही सद्गुण पाये हैं। भगवान करें, वहीं किस तरह भी हो वह मिल-जाये।"

शाम हो गई। नौकर दिया-बत्ती करने आकर विलास बाबूके आनेकी खबर देकर चला गया। वनमालीने कहा "तो तुम अब नीचे जाओ बेटी मैं थोड़ा विश्राम करूँ।"

विजया जब पिताके सिरहानेका तकिया ठीककर उनके पैरोंपर यथास्थान शाल देकर अन्धकारमें आँखोंके ऊपरसे आड़में करके, धीरे धीरे चली गई तब पिताकी छातीसे केवल एक लम्बी साँस निकल गई। उस दिन विलासके आनेकी खबरसे कन्याके मुँहपर जो आनन्द आभा दिखाई पड़ी थी, बूढ़ेको उसने व्यथा ही पहुँचाई।

विलासबिहारी रासबिहारीका लड़का है। यह इसी कलकत्तेमें रहके एम० ए० में पढ़ता रहा अब भी एम० ए० में पढ़ रहा है। वनमाली समाज त्याग करनेके बादसे अधिकतर देश नहीं जाते। यद्यपि रोजगारकी उन्नतिके साथ साथ देशमें भी उन्होंने बहुत-सी जमींदारी बढ़ा ली है, लेकिन उस सबकी देख-भालका भार उनके बालबन्धु रासबिहारीपर है। इसी सिलसिलेमें विलासका इस घरमें आना-जाना आरम्भ होकर कुछ समयके बाद किस कारण अधिक हो गया इसका पता पाठकको लगेगा।

३

दो महीने हुए, वनमालीकी मृत्यु हो गई है। उनके कलकत्तेके भारी भरे घरमें विजया इस समय अकेली है। उसकी देखभाल विलासबिहारी

देख-भाल रासबिहारी करते थे और इसी सूत्रसे उसके एक प्रकारसे अभिभावक बन बैठे हैं। लेकिन वे खुद गाँवमें रहते हैं, इसीलिए उनके लड़के बिलासबिहारी पर ही विजयाकी सारी जवाबदारीका भार आ पड़ा है। वही उसका वास्तविक अभिभावक बन गया है।

उन दिनों प्रत्येक ब्राह्म-परिवारमें 'सत्य' 'सुनीति' 'सुरुचि' शब्द बहुत बड़े बनाकर सिखाये जाते थे। क्योंकि विलेतमें पढ़ने जाकर हिंदू युवक जब पिता-माताके विरुद्ध, देव-ऋषियोंके विरुद्ध, प्रतिष्ठित समाजके विरुद्ध विद्रोह करके इस समाजके बँधे हुए रजिस्टरमें नाम लिखा बैठते थे तब ये शब्द ही टेक लगाकर उनके कच्चे मस्तकको गर्दनपर सीधा रख सकते थे—झुककर और टूटकर गिरने नहीं देते थे। वे कहते जो सच समझेंगे वही करेंगे। चाहे माताका अश्रु-जल हो और चाहे पिताका दीर्घ श्वास कुछ भी देखने-सुननेकी जरूरत नहीं। ये सब दुर्बलताएँ सब प्रयत्नोंसे दूर करेंगे नहीं तो ब्रह्मलोकका पद नहीं पा सकेंगे।" और ये सब बातें विजयाने भी सीख ली थीं।

आज गाँवसे विलास बाबू बूढ़े नशेबाज जगदीशका मृत्यु-संवाद लेकर आये थे। वे विजयाके पिताके मित्र अवश्य थे लेकिन विलास बाबू जब कहने लगे कि किस प्रकार जगदीश शराब पीकर बेहोश होकर ऊपरसे गिरकर मर गये तब ब्राह्म-धर्मकी सुनीति स्मरण करके विजयाने पिताके इस दुर्भाग्य-सखाके विरुद्ध घृणासे ओंठ सिकोड़ने में रत्ती-भर भी संकोच नहीं किया। विलास कहने लगा 'जगदीश मुखर्जी*मेरे पिताजीका भी बचपनका मित्र था; लेकिन वे उसका मुँह तक नहीं देखते थे। वह दो बार रुपया उधार माँगने आया। पिताजीने दोनों ही बार उसे नौकरसे धक्का देकर बाहर निकलवा दिया। वे सदा ही कहा करते हैं, इन मतवालियोंको आश्रय देना भगवानके श्रीचरणोंमें अपराध करना है।"

विजयाने सम्मति देते हुए कहा "बिलकुल सच कहते हैं।

विलास उत्साहित होकर व्याख्यानके ढंगसे कहने लगा मित्र हो या कोई भी हो दुर्बलताके कारण किसी भी तरह ब्राह्म-समाजके परम आदर्शको गिराना उचित नहीं है। न्यायसे अब जगदीशकी सारी सम्पत्ति हमारी है। उसका लड़का पिताका ऋण चुका सके तो अच्छा है, न चुका सके तो

* मुखोपाध्याय 'के अपभ्रंश मुखर्जी शब्दका अधिक प्रचलित प्रयोग।

कानूनके अनुसार इसी क्षण हमें उस हाथमें ले लेना चाहिए। असलमें, छोड़ देनेका हमें कोई अधिकार भी नहीं है। क्योंकि इन रुपयोंसे हम अनेक सत्कार्य कर सकते हैं। समाजके कितने लड़कोंको विलायत तक भेज सकते हैं। धर्मप्रचारमें खर्च कर सकते हैं, और न जाने कितने अच्छे काम कर सकते हैं। क्यों यह न करें, बताइए? इसके सिवा अपराधी या उसका लड़का हमारे समाजका भी नहीं है, जो उसपर किसी प्रकारकी दया करना आवश्यक हो। पिताजीने आज मुझे आपके पास यह कहकर भेजा है कि आपकी सम्मति पाते ही वे सब ठीक ठाक कर डालेंगे।"

विमला मृत पिताकी अन्तिम बातें स्मरण करके कुछ सोचने लगी, सहसा जवाब नहीं दे सकी। उसको इस तरह संकोच करते देखकर विलास जोर देकर दृढ़ स्वरसे कह उठा 'नहीं नहीं आपको मैं किसी प्रकार डावाँडोल नहीं करने दूँगा। दया और दुर्बलता पाप है। केवल पाप ही क्यों महापाप है। मैंने मन ही मन संकल्प किया है कि उसका घर आपके नाम लिखाकर मैं यह करूँगा जो कभी नहीं हुआ। मैंने गाँवमें ब्रह्म-मन्दिरकी प्रतिष्ठा करके देशके अभागे मूर्ख लोगोंको धर्मकी शिक्षा दूँगा!—आप एक बार सोचिए तो सही। देखिए, इन लोगोंकी मूर्खताकी ज्वालासे तंग आकर ही तो आपके स्वर्गीय पितृदेवने देश छोड़ा था। उनकी कन्या होकर क्या आपको उचित नहीं है कि यह निष्कंटक बदला लेकर उनका ही परम उपकार करें? सोचिए, आप ही इस बातका उत्तर दीजिए।"

विमला विचलित हो उठी। विलास उस स्वरसे कहने लगा "सारे देशमें कितना नाम हो जायगा कैसी धूम मच जायगी सोचकर तो देखिए! हिन्दुओंको स्वीकार करना ही होगा और यह बतानेका भार मुझपर है कि ब्राह्मसमाजमें मनुष्य है, दया है, स्वार्थत्याग है। जिसको उन्होंने निर्वासन करके देशसे विदा कर दिया था उसी महात्माकी महीयसी कन्याने उनके ही कल्याणके लिए यह विपुल स्वार्थत्याग किया है। सारे भारतवर्षमें कितना विराट् 'मौरल एफेक्ट' होगा बताइए तो!" यह कहकर विलासबिहारीने सामनेकी टेबुलपर जोरसे हाथ पटका। सुनते सुनते विमला मुग्ध हो गई। सचमुच ही इतने बड़े कामका लोभ संवरण करना अठारह वर्षकी लड़कीके लिए सम्भव नहीं। उसने पूरी सम्मति देकर कहा "उनके लड़केका नाम सुना है, नरेन्द्र है। अब वह कहाँ है, जानते हैं?"

जानता है। अभागे पिताकी मृत्युके बाद वह घर आ गया है और अब उसका श्राद्ध करके यहीं रहने लगा है।"

आपसे, जान पड़ता है बातचीत होती है?

बातचीत? छि: आप मुझे क्या समझती हैं बताइए तो?" यह कहकर विजयाको एकदम अप्रतिभ करके विलास बाबू कुछ हँसे और बोले "मैं तो सोच ही नहीं सकता कि जगदीश मुकर्जीके लड़केसे बात करनी चाहिए। तो भी उस दिन रास्तेमें सहसा पागलके समान एक नये आदमीको देखकर मैं चकित हो गया। सुना वही नरेन्द्र मुकर्जी है।"

विजयाने कुतूहलसे पूछा पागलके समान? सुना है वे तो डाक्टर हैं!

विलास बाबूने घृणासे सारे अंगोंको सिकोड़कर कहा ठीक पागलके समान।—डाक्टर? मैं विश्वास नहीं करता। मस्तकपर बड़े बड़े बाल,—जैसा लम्बा वैसा ही रोगी-सा। इसका प्रत्येक पंजर मैं समझता हूँ दूरसे गिना जा सकता है—नहीं तो रूप है! मानो ताड़-गाछका सिपाही हो! छि:—"

वास्तवमें अपने रूपका गर्व करनेका अधिकार विलासको था। क्योंकि वह ठिंगना मोटा और भारी जवान था। उसके छातीके पंजर यत्न करके भी नहीं देखे जा सकते। वह और भी कुछ कहने जा रहा था पर विजयाने बाधा देकर पूछा "अच्छा विलास बाबू, जगदीश बाबूका घर यदि हम सचमुच ही दखल कर लें तो गाँवमें क्या एक बड़ा अपवाद न उठ खड़ा होगा?"

विलास जोर देकर कह उठा बिलकुल नहीं। आप पाँच-सात गाँवमें ऐसा एक भी आदमी नहीं पायेंगी जिसकी इस शराबीपर बूँद-भर भी सहानुभूति रही हो। ऐसा कोई भी आदमी उस परगनेमें नहीं है जो उसके लिए 'आह' करे।' फिर कुछ हँसकर कहा ' किन्तु यदि ऐसा न भी हो तो भी मेरे जीवित रहते यह चिन्ता आपके मनमें नहीं आनी चाहिए।—लेकिन मैं कहता हूँ, यदि दिनके लिए एक बार देख आना आपका भी कर्तव्य है।"

विजयाने आश्चर्यमें पड़कर पूछा ' क्यों? मैं कभी तो वहाँ गई नहीं!"

विलास उद्दीप्त स्वरसे कह उठा इसीलिए तो कहता हूँ कि आपको जाना ही चाहिए। प्रजाको एक बार अपनी महारानी देखने दीजिए। मुझे तो निश्चय ही ऐसा लगता है कि उन्हें इस सौभाग्यसे वंचित करना महापाप है।"

क्रमशः विमलाका सारा मुँह आरक्त हो उठा। उसके नीचा मुँह करके कोई एक बात कहनेकी चेष्टा करते ही विलास बाधा डालकर बोल उठा, "इसमें इधर उधर करनेकी बात ही नहीं है। एक बार सोचकर तो देखिए, कितने काम आपको नहीं करने हैं। यह बात आपके मुँहके ऊपर ही मैं कह सकता हूँ कि आपके पिता इतनी बड़ी जमींदारीके मालिक होकर भी कुछ पापिष्ठ कुलोंके डरसे कभी अपने गाँवमें वापस नहीं गये, यह उन्होंने कोई अच्छा काम नहीं किया। यह क्या हमारे ब्राह्मसमाजका आदर्श है? यह तो किसी समाजका आदर्श नहीं है।"

विमलाने क्षणभर चुप रहकर कहा, "लेकिन आपके मुँहसे सुना है, मकान बेमरम्मत पड़ा तो रहने योग्य नहीं है।"

विलास बोला, "आप हुक्म दीजिए, एक बार बोलिए कि वहीं आइएगा, मैं दस दिनके भीतर ही उसे रहने योग्य बना दूँगा। हुक्मभर दीजिए, मैं प्राणपणसे इसका बंदोबस्त कर दूँगा कि वह मकान आपकी मर्यादाके योग्य आपको सँभाल सके। देखिए, यह बात बहुत दिनसे बार-बार मेरे मनमें आती रही है कि आपको सामने रखकर मैं जो कुछ कर सकता हूँ, मैं समझता हूँ उसकी कोई सीमा नहीं है।"

विमलाको राजी करके विलास चला गया, वह उसी स्थानपर चुपचाप बैठी रही। जो उसका गाँव है,—घर है, उसमें वह जन्मसे आज तक यद्यपि कभी नहीं गई, लेकिन बीच-बीचमें पिताके मुँहसे उसका कितना वर्णन उसने नहीं सुना है! देशकी बातें करनेमें उनका उत्साह और आनन्दका पार नहीं रहता था। लेकिन तब वे सब कहानियाँ उसका मन जरा भी आकर्षित नहीं कर पाती थीं; ज्यों ही सुनती थी त्यों ही भूल जाती थी। लेकिन आज कहींसे अकस्मात् वे सब भूली बातें लौट आकर, आकार धारण करके उसकी आँखोंके सामने खड़ी हो गईं। उसे लगने लगा, उनके गाँवका घर शहर कलकत्तेकी इस अट्टालिकाके समान बड़ा और जानदार नहीं है, लेकिन वहीं तो उसके सात पुरखोंकी पीढ़ी है। वहीं बाबा-दादी, परबाबा-परदादी, उनके भी पिता-माता —इस प्रकार न जाने कितने पुरखोंके सुख-दुःखमें और उत्सव-व्यसनमें दिन कट गये तो उसका ही आखिर क्यों नहीं कटेगा!

पश्चिमके सामने हजारोंके सिर्मिले मकानकी आड़में सूर्य छिप गया। इस बातको लेकर पिताके साथ उसकी न जाने कितनी बातें हो चुकी हैं। उसे याद

आया कितनी सन्ध्याओंमें वे उस इमलीपेड़परपर बैठकर लम्बी साँस छोड़कर बोले हैं, " बिजया मैंने यह दुःख अपने देशके घरमें कभी नहीं पाया। वहाँ कभी किसी हालतकी सिर्मिकिरी तक हमारे इस प्रेम सुर्यास्तको इस प्रकार छिपाकर नहीं गई हुई। तू तो जानती नहीं बेटी, लेकिन मेरी जो दोनों आँखें इस हृदयके भीतरसे उमगकर एकटक देखती हैं वे साफ देख रही हैं कि अपनी पुष्करिणीके किनारे छोटी नदी इस समय सोनेके पानीसे झलमल झलमल कर उठी है, और उसके उस पार जितनी दूर नजर जाती है मैदानके बाद मैदानके अन्तमें इस समय भी सूर्य अस्ताचल जाते जाते भी गाँवकी माया काटकर जा नहीं सके हैं। बेटी धानीके खेतपर तू देख रही है कि किसान काम पूरा करके घरोंकी ओर मनुष्योंका स्रोत बहा जा रहा है; लेकिन इस दस बारह हाथ जमीनको छोड़कर उनके साथ आनेका जरा-सा भी तो रास्ता नहीं है। इस सन्ध्या-वेलामें यहाँ भी तो मनुष्योंका उल्टा स्रोत घरकी ओर बहकर आता हुआ दिखता है, किन्तु मुझे उनके प्रत्येक चेहरे-मोहरेकी बात उतना परिचय रहता था बेटी।" इस प्रकार कहकर वे अकस्मात् एक अत्यन्त गहरी साँस हृदयसे निकालकर चुप हो जाते थे। एक दिन वे जिस गाँवको छोड़ आये थे उसके लिए इतने सुख-ऐश्वर्यमें भी उनका हृदय रोता रहता है, इस बातको विजया जब-तब जान लेती थी। तथापि एक दिन भी उसने इसका कारण सोचकर नहीं देखा; लेकिन आज विलास बाबूके उस ओर उसकी दृष्टि आकर्षित करके चले जानेपर, परलोकगत पितृदेवकी बातें स्मरण हो आईं। और उनकी सारी छिपी वेदनाका कारण अकस्मात् एक मुहूर्तमें उसके मनमें प्रकाशित हो उठा। कलकत्तेकी इस विपुल भीड़भाड़में भी वे किस प्रकार एकाकी जीवन बिता गये हैं, आज उसे आँखोंके आगे साफ देखकर वह एकदम डर गई और आश्चर्य यह है कि जिस गाँव पितृ घरसे उसका जन्मसे लेकर अब तक परिचय नहीं है, वही आज उसे दुर्निवार शक्तिसे खींचने लगा।

४

बहुत दिनोंसे छोड़ा हुआ जमींदारका घर विजयाकी देख-भालमें सुधारा जाने लगा; कलकत्तेसे यह सब विविध असबाब बैलगाड़ियोंमें भर भर कर भिजा जाने लगा जिसे लोगोंने पहले कभी नहीं देखा था। जमींदारकी इकलौती कन्या अपने घर रहने आएगी यह खबर फैलते ही सिर्फ कृष्णपुरमें ही नहीं राधापुर

राधापुर, दिघड़ा आदि आस-पासके पाँच-सात गाँवोंमें भी हलचल मच गयी। एक तो घरके नजदीक जमींदारका निवास हमेशासे ही लोगोंको बुरा लगता रहा है दूसरे जमींदारके गाँवमें न रहनेका ही प्रजाको अभ्यास हो गया है। इसलिए उसके फिरसे बसनेकी इच्छा सबको एक अन्याय्य उत्पात-सी लगी। मैनेजर रासबिहारीके प्रबल शासनमें उनके दुःखोंकी तो ही कमी नहीं थी, अब जमींदारकी लड़कीके गाँव लौटनेके इस उपलक्षमें यह कौन-सा नया उपद्रव खड़ा करेगा, यह बाजार, मैदान, घाट—सब कहीं एक अशुभ चिन्ता-चर्चाका विषय बन गया। परलोकगत बूढ़े जमींदार वनमाली जितने दिन जीवित रहे उतने दिन दुःखमें भी यह सुख था कि किसी तरह एक बार उनके नजदीक पहुँच सकनेपर किसीको भी निराश होकर नहीं लौटना पड़ता था। लेकिन जमींदारकी लड़कीकी उमर थोड़ी है और माथा गरम है,—रासबिहारीके लड़केके साथ विवाहकी हवा भी गाँवोंमें फैल रही है,—वे मेमसाहब जैसी शिक्षिता हैं। इसलिए निकट भविष्यमें ही रासबिहारीके पाशविक शासनकी कल्पना करके किसीके मनमें कोई सुख नहीं रह गया—छोटी जातियोंके मनमें भी नहीं और बैकुण्ठ ब्राह्मणोंके मनमें भी नहीं। इसी तरह, भय और चिन्तामें वर्षा बीत गई। शरत्‌के आरम्भमें ही एक मधुर प्रभातमें दो घोड़ोंकी बग्घी किराये करके उसकी जमींदार-कन्या कितने नरनारियोंकी भय-कुतूहलभरी दृष्टियोंके बीच हुगली स्टेशनसे पिता माताके पुराने निवासस्थानमें आ उपस्थित हुई।

जमींदारकी कन्या है,—अठारह उन्नीस वर्ष पार हो गये हैं, फिरभी विवाह नहीं हुआ—जूता-मोजे पहनती है,—जात-पाँतका विचार नहीं करती—इत्यादि चिन्ता गाँवके लोग एकान्तमें करने लगे। साथ ही जमींदारका नजराना लेकर एक एक, दो दो करके आकर पाँच छः दिन बीतनेके बाद एक दिन सबेरे जब विजया चाय पीकर नीचेकी बैठकके कमरेमें विलास बाबूके साथ जमीन-जायदादके सम्बन्धमें बात-चीत कर रही थी, तब नौकरने आकर बताया

"एक सज्जन मिलना चाहते हैं।"

विजयाने कहा, "यहीं लिवा लाओ।"

इधर कुछ दिनोंसे लगातार उसकी प्रजाके बहुत छोटे-बड़े लोग नजराना लेकर जब-तब मिलने आया करते थे इसलिए पहले उसने विशेष कुछ नहीं सोचा। किन्तु, कुछ समयके बाद उस सज्जनके नौकरके पीछे ही कमरेमें घुसनेपर

उसकी तरफ दृष्टि उठाते ही विमला विस्मित हो रही। उसकी उम्र अनुमानतः चौबीस-पच्चीसकी होगी। आदमी लम्बे डील-डौलका था, लेकिन उस हिसाबसे हृष्ट-पुष्ट नहीं, वरन् दुबला-पतला था। वर्ण गेहुआँ गोरा था, दाढ़ी मूँछें बनी थीं। पैरोंमें चट्टियाँ थीं, देहमें कुरता नहीं था, केवल एक मोटी चादरके झरोखेसे सफेद जनेऊके धागे दिखाई पड़ते थे। वह मामूली नमस्कार करके एक कुर्सी खींचकर बैठ गया। इसके पहले जो कोई भद्र आदमी मिलने आया है, वह केवल नवरात्रिका रुपया हाथमें लेकर ही भीतर घुसा है। लेकिन इस व्यक्तिके आचरणमें तो संकोचका लेश भी नहीं है। इससे आपमनसे केवल विमला ही विस्मित नहीं हुई, विमलको भी कम आश्चर्य नहीं हुआ। दूसरे, गाँवमें रहनेपर भी विमल इस ओरके सब लोगोंको पहचानता था। आगन्तुक सज्जनने ही पहले बात आरम्भ की। उसने कहा, "मेरे मामा पूर्ण गांगुली आपके पड़ोसी हैं। उनका मकान सटका ही है। मैं सुनकर अवाक् हो गया कि उनके बाप-दादाओंके समयकी दुर्गा-पूजा अबकी बार शायद आप बन्द करा देना चाहती हैं। इसका मतलब क्या है?" यह कहकर उसने विमलाके मुँहपर दृष्टि जमा ली। प्रश्न और उसके पूछनेके ढंगसे विमला आश्चर्यमें पड़ गई और मन ही मन विरक्त भी हुई लेकिन उसने कोई उत्तर नहीं दिया।

उत्तर दिया विमलने। उसने रूखे स्वरसे कहा, "आप क्या इसीलिए मामाकी तरफसे झगड़ा करने आये हैं? लेकिन किससे बात कर रहे हैं, यह तो मत भूल जाइए।"

आगन्तुकने हँसकर कुछ जीभ दबाकर कहा, "सो मैं भूला नहीं हूँ, और झगड़ा करने भी नहीं आया हूँ। वरन् बातपर मुझे विश्वास नहीं हुआ इसलिए अच्छी तरह जान लेनेके लिए आया हूँ।"

विमलने हँसी दबानेके ढंगसे कहा, "विश्वास क्यों नहीं हुआ?"

आगन्तुकने कहा, "कैसे होगा बताइए भला? केवलमात्र आपने पड़ोसीके धर्म-विश्वासपर आघात कीजिएगा, इस बातपर विश्वास न करना ही तो स्वाभाविक है।"

धर्म-मत लेकर तर्क-वितर्क करना विमलका बचपनसे ही अत्यन्त प्रिय विषय रहा है। वह उत्साहसे प्रदीप्त होकर किंचित् उपहासके स्वरमें बोला, "आपके लिए निरर्थक जान पड़नेपर भी किसीके लिए भी उसका अर्थ नहीं होगा, अथवा आपके धर्म कहनेसे ही सब उसे सिर-आँखोंपर रख लेंगे, इसका तो कोई कारण

नहीं। मूर्ति-पूजा हमारे लिए धर्म नहीं है और उसे बन्द करना भी हम अन्याय नहीं मानते।"

आगन्तुकने गहरे विस्मयसे विजयाके मुँहकी तरफ दृष्टिपात करके कहा "आप भी क्या तब नहीं करती हैं?"

उसके विस्मयने विजयाको मानो चोट पहुँचाई लेकिन उस भावको छिपाकर उसने सहज स्वरसे ही जवाब दिया "मुझसे क्या आप इसके विरुद्ध विचार सुननेकी आशासे आये हैं?"

विलासने गर्वसे हँसकर कहा "ऐसा ही जान पड़ता है। लेकिन ये तो विदेशी आदमी हैं बहुत सम्भव है आपके विषयमें कुछ भी न जानते हों।"

आगन्तुकने क्षण-भर चुपचाप विजयाके मुँहकी तरफ एकटक देखकर उससे ही कहा "विदेशी न होने पर भी मैं इस योग्य आदमी नहीं हूँ, यह बात ठीक है। तो भी मैंने सचमुच आपसे यह आशा नहीं की थी। मूर्ति-पूजाकी बात आपके मुँहसे नहीं निकली फिर भी साकार-निराकार उपासनाका पुराना झगड़ा मैं यहाँ नहीं उठाऊँगा। आप लोग ब्राह्मसमाजी हैं यह भी मैं जानता हूँ। लेकिन यह तो वह नहीं है। गाँवमें यही तो एक पूजा है। सब लोग सारे वर्ष-भर इन तीन दिनोंकी आशासे बाट जोहते बैठे हैं।" यह कहकर और एक बार तीक्ष्ण दृष्टिपात करके उसने कहा "गाँव आपका है, प्रजा आपकी पुत्र-कन्याके समान है; यही आशा तो सब करते हैं कि आपके आनेसे साथ साथ गाँवका आनन्द-उत्सव चौगुना बढ़ जायगा लेकिन ऐसा न करके इतना धन खर्च करके इतना बड़ा निरानन्द बिना अपराधके अपनी दुखी प्रजाके माथेपर आप स्वयं दीर्घनिःश्वास छोड़ देंगी यह विश्वास कर लेना क्या सहज है? मैं तो विश्वास नहीं कर सकता।"

विजया सहसा उत्तर न दे सकी। दुखी प्रजाके नामसे उसका कोमल चित्त व्यथासे भर उठा। क्षण-भर कोई भी कोई बात नहीं कह सका। केवल विलास बाबू विजयाके उस निरुत्तर स्नेहार्द्र मुँहकी तरफ देखकर भीतर ही भीतर गरम और उत्तेजित होकर अचानक जोरसे बोल उठे "आपने बहुत-सी बातें कही हैं। मैं साकार-निराकारका तर्क आपसे नहीं करूँगा, इतना अधिक समय मेरे पास भी नहीं है। पर सुनिये आप। आपकी प्रजा चाहे क्यों न अपनी मूर्तियाँ गढ़कर घरमें बैठकर पूजा कर सकते हैं, उसमें कोई हर्ज नहीं; मुझे तो केवल आपत्ति है मुफ्त ढोल-ताशा बजाकर रात-दिन कानोंके पास पीटपीट कर इन्हें अस्वस्थ बना देनेमें।"

आगन्तुकने थोड़ा हँसकर कहा "दिन-रात तो बजते नहीं। इसके

लिहाजा सभी उत्सवोंमें थोड़ा बहुत होहल्ला धौलधप्पा तो होता ही है।" फिर विजयाको विशेष रूपसे सम्बोधन करके कहा — "सो यह अड़चन यदि कुछ हो भी तो होने दीजिए। आप माँकी जात हैं, इनके मानसिक अत्याचार-उपद्रव आप नहीं सहेंगी तो कौन सहेगा!"

विजया उसी प्रकार निश्चल बैठी रही। विलास ओठोंकी सूखी हँसी हँसकर बोला — "आपने तो मसजिद पीटनेके लिए बाल-बच्चोंकी और माँकी उपमा दे दी, सुननेमें भी बुरी नहीं लगी। लेकिन पूछता हूँ, आप खुद यदि मुसलमान होकर मसजिदके कमरोंके पास मुहर्रम शुरू कर देते तो क्या वह उन्हें अच्छा लगता? पर वह जो भी हो, हमारे पास व्यर्थ वाद-विवाद करनेका समय नहीं है। पिताजीने जो हुक्म दिया है, वही होगा। कलकत्तेसे यहाँ आकर मैं स्वयं ही रोककर मुहर्रम-वालोंसे इनके काम वहाँ न होने दूँगा — किसी भी तरह नहीं।"

उसके ओठोंके व्यंग और ज्यादा विषम उठनेके कारण आगन्तुककी आँखोंकी दृष्टि प्रखर हो उठी। उसने विजयाके मुँहकी तरफ आँखें उठाकर कहा — "मुझे पता नहीं, आपके पिता कौन हैं और उन्हें मनाही करनेका क्या अधिकार है; लेकिन आपने जो मुहर्रमकी अद्भुत उपमा दे डाली, सो यदि यह हिन्दुओंकी ठेलम-ठेली न होकर मुसलमानोंके मुहर्रमके ढोल-ताशे होते तो क्या आप उन्हें इस तरह रोक सकते? यह केवल निरीह सम्प्रदायके प्रति अत्याचार नहीं तो और क्या है?"

विलास अकस्मात् कुरसी छोड़कर उठ खड़ा हुआ। उसने लाल लाल आँखें करके भयानक आवाजसे चिल्लाकर कहा — "पिताजीके सम्बन्धमें तुम सावधान होकर बात करो, यह मैं कहे देता हूँ, नहीं तो अभी इसी वक्त तुम्हें दूसरे उपायसे सिखा दूँगा कि वे कौन हैं और उनका क्या अधिकार है।"

आगन्तुकने विलासके मुँहकी तरफ आश्चर्यसे तो देखा, लेकिन भयका चिह्न तक उसके मुँहपर दिखाई नहीं पड़ा। दिखाई पड़ा विजयाके मुँहपर। उसके घरमें बैठकर उसीके एक अपरिचित अतिथिके प्रति किये गये इस एकान्त अशिष्ट आचरणसे क्षोभ और लज्जाके मारे उसका सारा मुँह लाल हो उठा। आगन्तुक एक क्षण केवल विलासके मुँहकी तरफ देखता रहा; पर दूसरे ही क्षण उसकी पूरी उपेक्षा करके विजयाकी तरफ आँखें फेरकर बोला — "मेरे मामा बड़े आदमी नहीं हैं, उनकी पूजाका आयोजन भी साधारण-सा है। फिर भी आपकी दरिद्र प्रजाका सारे वर्षका यही अकेला आनन्द-उत्सव है। हो सकता है कि आपको

कुछ अड़चन हो लेकिन प्रजाका मुँह देखकर क्या इतना भी आप नहीं सह सकेंगी ?

विलास क्रोधसे पागल-सा होकर सामनेकी टेबुलपर जोरसे घूँसा मारकर चीत्कार कर उठा — "नहीं नहीं सह सकेंगी। कदापि नहीं सह सकेंगी। तुम मूर्ख स्त्रियोंका पागलपन सहनेके लिए कोई जमींदारी नहीं करता। तुम्हें और कुछ कहना न हो, तो जाओ हम लोगोंका समय व्यर्थ नष्ट मत करो।"

यह कहकर उसने हाथसे दरवाजा दिखा दिया।

उसकी उत्कट उत्तेजनासे क्षण-भरके लिये आगन्तुक सज्जन मानो हतबुद्धि हो गए। सहसा उनके मुँहसे प्रत्युत्तर नहीं निकल सका लेकिन विजयाने पितासे निष्फल शिक्षा नहीं पाई थी। उसने शान्त धीर भावसे विलासके मुँहकी तरफ देखकर कहा — आपके पिता मुझे कन्याके समान प्रेम करते हैं, इसी लिए शायद उन्होंने इसकी पूजा बन्द कर दी है। लेकिन मैं कहती हूँ, तीन चार दिन थोड़ा गोलमाल होता भी रहे तो क्या हर्ज है ?"

बात पूरी भी न हो पाई थी कि विलास दूने ही जोरसे विरोध कर उठा, "यह असहनीय गोलमाल है। आप जानती नहीं इसीलिए—"

विजयाने हसमुख होकर कहा — "होने दीजिए गोलमाल तीन ही दिन तो होगा न! और आप मेरी अड़चनकी चिन्ता करते हैं, लेकिन कलकत्ता होता तो आप क्या करते? वहाँ तो आठों पहर कानोंके पास तोपें दगती रहें तो भी चुप रहकर सहना पड़ता है।" यह कहकर उसने आगन्तुक युवककी ओर देखकर हँसते हँसते कहा — "अपने मामासे कह दीजिए, वे हर बार जैसी पूजा करते हैं, इस बार भी वैसी ही करें मुझे रत्ती-भर भी आपत्ति नहीं है।"

आगन्तुक और विलास बाबू दोनों ही विस्मयसे अवाक् होकर विजयाके मुँहकी ओर देखने लगे।

"तो अब आप जाइए," कहकर विजयाने हाथ उठाकर साधारण-सा नमस्कार कर लिया। अपरिचित सज्जन भी अपनेको सँभालकर उठ खड़े हुए, और धन्यवाद तथा प्रति नमस्कारके बाद विलासको भी एक नमस्कार करके बाहर चले गये। अवश्य ही क्रुद्ध विलासने दूसरी ओर आँखें फिराकर उसे स्वीकार किया। लेकिन दोनोंमेंसे कोई भी नहीं जान सका कि यह अपरिचित युवक ही उनके सबसे मुख्य आसामी जगदीशका लड़का नरेन्द्रनाथ है।

५

उसके चले जानेपर कोई मिनट-भर तक विजया अन्यमनस्क और चुप रही। उसके बाद सहसा चकित होकर मुँह उठाते ही बिलकुल अकारण ही उसके कपोलोंके ऊपर एक क्षीण आरक्त आभा दिख गई। विलासकी दृष्टि दूसरी जगह लगी न होती तो उसके विस्मय और अभिमानकी शायद सीमा न रहती। विजयाने मृदु हँसकर कहा, "हम लोगोंकी बात तो पूरी ही नहीं हो पाई। तो फिर तात्पर्य है ऐसी ही आपके पिताजीकी राय है?"

विलास खिड़कीसे बाहर देख रहा था। उसने उसी भावसे कहा, "हाँ।"

विजयाने पूछा, "लेकिन इसमें किसी तरहका गोलमाल तो नहीं है?"

विलास बोला, "नहीं।"

विजयाने दुबारा पूछा, "आज क्या वे उस पहर इस तरफ आएँगे?"

विलासने कहा, "कह नहीं सकता।"

विजयाने कहा, "आप नाराज हो गये क्या?"

इस बार विलासने मुँह फिराकर गम्भीर भावसे जवाब दिया, "नाराज न होनेपर भी पिताके अपमानसे पुत्रका दुःखी होना मैं समझता हूँ, अस्वाभाविक नहीं है।"

बातने विजयाको चोट पहुँचाई, तो भी उसने हँसीभरे मुँहसे कहा, "लेकिन इससे उनकी मान-हानि हुई है, यह अद्भुत धारणा आपके मनमें कैसे पैदा हुई? उन्होंने स्नेहवश समझा, मुझे कष्ट होगा, लेकिन मैंने उन सज्जनसे कह दिया है कि कष्ट नहीं होगा। केवल इतना ही। इसमें मान-अपमानकी बात तो कुछ भी नहीं है विलास बाबू!"

विलासकी गम्भीरताकी मात्रा इससे रत्तीभर भी कम नहीं हुई; उसने सिर हिलाकर उत्तर दिया, "यह बात नहीं है। अच्छा तो है, आप अपनी इस्टेटकी जिम्मेदारी खुद लेना चाहती हैं, लीजिए; लेकिन, इसके बाद मुझे पिताजीको सावधान कर देना होगा, नहीं तो पुत्रके कर्तव्यमें त्रुटि होगी।"

इस अचिन्तनीय अप्रिय प्रत्युत्तरको पाकर विजया विस्मयसे अवाक् रह गई और कुछ क्षण स्तब्ध भावसे रुककर अत्यन्त व्यथाके साथ बोली, "विलास बाबू, इस साधारणसे विषयको आप इस रूपमें लेकर इतना भारी बना देंगे, यह मैंने सोचा भी न था। अच्छा, समझकी कमीसे यदि अन्याय ही कर गई होऊँ तो मैं अपराध स्वीकार करती हूँ, भविष्यमें दुबारा न होगा।" यह कहकर

विजयाने विलासके मुँहकी तरफ देखकर एक साँस छोड़ी। उसने सोचा इसके बाद किसीसे कुछ कहना बाकी नहीं रह सकता। दोष स्वीकार करनेके साथ ही उसकी समाप्ति हो जाती है। लेकिन उसे यह खबर नहीं थी कि कुछ बाबूके समान कुछ मनुष्य ऐसे भी होते हैं जिनकी किसीकी भूल एक बार किसीको भी त्रुटिका अवसर या जानेपर फिर किसी प्रकार निकलना ही नहीं चाहती। इसीलिए, विलासने जब प्रभुतामें कहा "तो फिर पूर्ण बाबूसे कहला भेजिए कि रासबिहारी बाबूने जो हुक्म दिया है उसे रद करना आपकी शक्तिके बाहर है," तब विजयाकी दृष्टिके सामने इस व्यक्तिकी हिंस्र प्रकृति एक क्षणमें ही एकाएक जाग उठी। उसने कुछ क्षण चुपचाप ताकते रहकर धीरेसे कहा "यह क्या बहुत बड़े अन्यायका काम नहीं होगा? अच्छा, न हो तो मैं खुद ही चिट्ठी लिखकर उनकी अनुमति ले लेती हूँ।"

विलास बोला 'अब अनुमति लेना न लेना दोनों ही समान हैं। आप यदि इन्हें सारे गाँवकी आमदनीके योग्य ही बना डालना चाहती हैं, तो फिर मुझे भी अत्यन्त अप्रिय कर्तव्यका पालन करना होगा।'

विजयाका अंतःकरण अकस्मात् क्रोधसे भर उठा लेकिन उसने आत्म-संयम करके धीर भावसे पूछा 'वह कर्तव्य कौन-सा है, सुनूँ?"

विलास बोला 'कि आपकी ज़मींदारीसे अपना हाथ न हटाऊँ।"

आपका मना करना ही मानेंगे आप समझते हैं!'

इससे कम प्रयत्न तो मुझे नहीं करना होगा।"

विजयाने क्षण-भर चुप रहकर दूसरी तरफ देखते हुए उसी प्रकार जवाब दिया 'बहुत अच्छा आप जो कर सकें करें लेकिन मैं किसीके धर्म-कर्ममें बाधा नहीं डाल सकूँगी।"

कंठ स्वरमें मधुरता होनेपर भी उसके भीतरका क्रोध छिपा नहीं रहा। विलास तीव्र स्वरसे कह उठा "लेकिन यदि आपके पिता होते तो वे यह बात कहनेका साहस न करते।"

विजया फिरकर खड़ी हो गई उसने आँखें उठाकर विलासके मुँहकी तरफ देखा और कहा "अपने पिताकी बात आपकी बनिस्बत मैं कहीं ज्यादा जानती हूँ विलास बाबू। लेकिन यह बात लेकर [illegible] करनेसे क्या होगा? मेरे नहानेका समय हो गया है। मैं जाती हूँ।" यह कहकर सारे वक्तव्यको जोरसे बंद करके ज्यों ही वह उठकर खड़ी हुई त्यों ही क्रोधसे पागल विलासने

मुँहपरसे उसकी उभार की हुई असमजसाहतका बनावटी चेहरा एक क्षणमें खिसक गया। वह अपने स्वभावको एकदम भेला करके बहुत कड़ुवाईसे कह बैठा
   औरतोंकी जात ही ऐसी नमकहराम होती है।"

विभाने पैर छुआ लिये थे वह विभाके पैरोंसे लौटकर खड़ी हो गई और पल-भर इस बर्बरके मुँहकी तरफ देखकर बिना कुछ बोले धीरेसे कमरेसे बाहर चली गई। यह देखते ही विपिन सूख गया।

कोई इस भ्रममें न पड़ जाय कि विपिन सिर्फ मनिष्ठताके कारण विचार कर रहा था। इन सब लोगोंका स्वभाव ही यह है कि बात चाहे जो हो और उसका कारण चाहे कितना असंगत हो, फेर पानेपर उसे बेमतलब बढ़ा करके दुर्बलको सतानेमें डरे हुएको और अधिक डर दिखाकर व्याकुल करनेमें ही ये आनन्द अनुभव करते हैं।—लेकिन जब तिल-भर भी दुखे बिना उसे ही तुच्छ बनाकर विभा चुपकेसे उठकर चली गई, तब इस मजेदार बातकी सारी कुरनाने उसे खुद ही बहुत छोटा बना दिया। वह थोड़ी देर चुप बैठा रहा और फिर मुँहमें कालिख-सी लगाकर धीरे धीरे चला गया।

तीसरे पहर रासबिहारी कागजोंका बस्ता लेकर मिलने आये। वे बोले — "यह अच्छा नहीं हुआ बेटी। मेरी आज्ञाके विरुद्ध आज्ञा देकर मुझे बहुत ज्यादा लज्जित किया गया है। पर उसे जाने दो मालिक अब तुम्हारी है, तब यह बात लेकर मैं ज्यादा खींचतान नहीं करना चाहता। लेकिन बार बार ऐसा होनेपर तो आत्म-सम्मानकी रक्षाके लिए मुझे अलग होना ही होगा यह जता रखता हूँ।"

विभाने कोई उत्तर नहीं दिया बल्कि मौन मुँहसे उसने यह अपराध एक प्रकारसे मान ही लिया। रासबिहारीने तब कोमल होकर कागजोंके सम्बन्धकी बात उठाई। बड़ा लम्बा-चौड़ा भूमिकाका आरम्भ करके उन्होंने कहा कि "जगदीशका मकान अब तुमने समाजको ही दान कर दिया है बेटी तब और देर न करके पूजाकी छुट्टी खत्म होते ही उसका दखल ले लेना होगा। क्या कहती हो?"

विभाने सिर झुकाकर कहा — "आप जो ठीक समझेंगे वही होगा।" उसकी बातें सुननेकी खिवाय खत्म हो गई!

रासबिहारीने कहा, "बहुत दिन हुए। जगदीशने अपना सारा कुनबा कर्ज चुका देनेके लिए तुम्हारे पितासे आठ वर्षके करारसे दस हजार रुपये लेकर रेहन-नामा लिख दिया था। शर्त यह थी कि इतने दिनोंके भीतर चुका दे सके तो

अपना ही है; न चुका सके तो उसका बाग-तालाब — उसकी सारी सम्पत्ति अपनी है। सो आठ वर्ष बीतकर अब तो नवाँ वर्ष चल रहा है बेटी।"

विजयाने कुछ क्षण मुँह नीचा किये चुप बैठे रहकर मृदुकण्ठसे कहा "सुना है उनके लड़के बाहर हैं; उन्हें बुलाकर और कुछ दिनोंका समय देकर न देख लिया जाय? शायद वे कोई उपाय कर सकें।"

रासबिहारीने सिर हिलाते हिलाते कहा "वह कोई उपाय नहीं कर सकेगा —कर ही नहीं सकता। यदि कर सकता—"

रसिकाकी बात खतम ही नहीं हो पाई कि विलास सहसा गरज उठा। अब तक वह किसी प्रकार धीरज रखे था, अब न रख सका। कर्कश स्वरसे वह बोला 'कर भी सकता हो तो इस समय क्यों देने लगे? उनके लेनेके समय क्या उस दयालीको होश नहीं था कि मैं क्या कर्ज कर रहा हूँ और कैसे चुकाऊँगा?"

विजयाने एक बार विलासकी तरफ और फिर रासबिहारीके मुँहकी तरफ देख कर शान्त मृदु स्वरसे कहा, "वे बापूके मित्र थे। उनके सम्बन्धमें वे मुझे सम्मानके साथ बात करनेका आदेश दे गये हैं।

विलास फिर गरज उठा "उधार दे जानेपर भी वह एक—'

रासबिहारी बाधा डालकर कह उठे 'तुम चुप रहो न विलास।"

विलासने जवाब दिया "ये सब हिन्दुओंके सेन्टीमेन्ट * मैं किसी तरह बरदाश्त नहीं कर सकता। इसमें चाहे कोई नाराज हो या और कुछ करे। मैं सच कहनेसे नहीं डरता, सच काम करनेमें भी किसीसे पीछे नहीं रहता।"

रासबिहारी दोनों पक्षोंको ही शान्त करनेके मतलबसे देखता हुआ-सा मुँह बनाकर बार बार सिर हिलाते हिलाते कहने लगे, "सो तो ठीक है, सो तो ठीक है। हमारे देशका यह स्वभाव हमसे भी कहाँ छूट सका है? समझी न बेटी विजया?—मैं और तुम्हारे बापू इसीलिए देशके विरुद्ध होनेपर भी सत्य धर्म ग्रहण करते नहीं डरे थे।"

विजयाने कहा "मरनेके पहले बापू मुझे आदेश दे गये थे कि ऋण चुकानेके लिए मैं उनके बाल्य-बन्धुका घर-द्वार न बिकवा डालूँ।' यह कहते कहते ही उसकी आँखें छलछला उठीं। स्नेहमय पिताका जो अनुरोध उनके जीवनके समय एक असंगत खयाल जान पड़ता था उनकी मृत्युके बाद आज वह किसी तरह न टाले जानेलायक आदेशके समान बाधा पहुँचाने लगा।

---

* भावुकता।

विलासने कहा, "तो फिर मैं खुद ही यह सब हाल क्यों नहीं लिख कर भेजे बताओ ?"

विजयाने इसका कोई उत्तर दिये बिना रासबिहारीके मुँहकी ओर देखकर दुबारा कहा, "मेरी इच्छा है कि जगदीश बाबूके पुत्रको बुलवाकर उन्हें सब बातें बता दी जावें।"

उसके जवाब देनेसे पहले ही विलास फिर निर्लज्जके समान बोल उठा, "और वह यदि और भी दस वर्षका समय माँगे ? वह भी देना होगा क्या ? तब तो फिर जान पड़ता है कि वह समाज-प्रतिष्ठाकी आशा समुद्रके अतल गर्भमें विसर्जित कर देनी होगी।"

विजयाने इसका भी कोई उत्तर दिये बिना रासबिहारीको ही लक्ष्य करके कहा, "आप एक बार उन्हें बुला भेजकर, इस विषयमें उनकी क्या इच्छा है जान नहीं लीजिएगा ?"

रासबिहारी ठहरे अत्यन्त धूर्त आदमी। लड़केके उद्धत व्यवहारपर मन ही मन नाराज होनेपर भी उन्होंने बाहरसे उसका ही मतको वाजिब प्रमाणित करनेके लिए भूमिका रचकर शान्त और नरमीसे कहा, "देखो बेटी, तुम लोगोंके मतान्तरमें तीसरे आदमीका बोलना उचित नहीं है। क्योंकि, किस बातमें तुम लोगोंका हित है, यह आज नहीं तो कल तुम लोग ही स्थिर कर सकोगे। इस बूढ़ेके मतामतकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी। किन्तु, बात जब उठती है, तब यह तो कहना ही पड़ेगा कि इस मामलेमें तुम्हारी ही भूल हो रही है। मैंने अनेक बार देखा है कि जमींदारी चलानेके काममें मुझे विलासके सामने हार माननी पड़ती है। अच्छा बताओ भला किसकी गरज ज्यादा है ? तुम्हारी या जगदीशके लड़केकी ? उसमें कुछ चुकानेकी शक्ति ही यदि होती तो क्या वह खुद आकर एक बार प्रयत्न न कर देखता ? यह तो जानता है कि तुम आई हो। अब यदि हम ही दयेल बनकर उसे बुला भेजें तो वह निश्चय ही बहुत बड़ा समय माँगेगा, लेकिन उसका नतीजा सिर्फ यह निकलेगा कि वह रुपए भी नहीं दे सकेगा और दोनोंका समाज-स्थापनाका संकल्प भी सदाके लिए डूब जाएगा। बेटी, अच्छी तरह विचार करके देखो क्या यही ठीक नहीं है ?"

विजया चुप बैठी रही। उसके मनके भावका अनुमान करके बूढ़े रासबिहारीने कुछ क्षणके बाद कहा, "अच्छा तो है, उसके बुलानेमें तो कुछ हो नहीं सकेगा। तब फिर यदि वह समय माँगे तो उस समय न हो तो विचार करके देख लिया

जायगा। क्या कहती हो बेटी?"

विजयाने सिर हिलाकर बताया, "अच्छा" लेकिन तिसपर भी उसके मुँहका भाव देखकर साफ मालूम हुआ कि उसने मन ही मन इस प्रस्तावका अनुमोदन नहीं किया है। रासबिहारीने आज विजयाको पहचाना। उन्होंने अच्छी तरह समझ लिया कि इस लड़कीकी उमर कम है, लेकिन यह जानती है कि अपने पिताकी जायदादकी मैं मालिक हूँ और इसे मुट्ठीके भीतर लानेमें समय लगेगा। अतएव एक बात लेकर ही ज्यादा खींच-तान करना वाजिब नहीं है, यह सोचकर शामकी उपासनाका बहाना करके वे उठ बैठे। विजया प्रणाम करके चुपचाप आसन छोड़कर खड़ी हो गई। वे आशीर्वाद देकर बाहर चले गये। विजयाने पल-भर चुपचाप खड़ी रहकर कहा — मुझे बहुत-सी चिट्ठियाँ लिखनी हैं —आपको क्या मेरी कोई आवश्यकता है?"

बिलासने रूढ़ भावसे जवाब दिया, "कुछ नहीं। आप जा सकती हैं।"

"आपके लिए चाय भेजनेको कह दूँ क्या?"

"नहीं जरूरत नहीं है।"

"अच्छा नमस्कार।" कहकर विजया एक बार दोनों हाथ जोड़कर ही कमरेसे बाहर चली गई।

६

दिघड़ाके समीप जमींदार बाबूका मकान सरस्वतीके उस पार था। मकानके पीछेसे होनेपर भी नदी-किनारेके कुछ बाँसके पेड़ोंके कारण वनमाली बाबूके घरकी छतसे यह दिखाई नहीं पड़ता था। उस समय शरद् ऋतु बीतनेके साथ साथ छोटी-सी सरस्वतीके गर्भमें बहता पानी भी कम होता जा रहा था और तीरके ऊपरसे किनारोंके आने जानेकी पगडण्डी भी पैरोंसे कुचलकर नहीं होती जा रही थी। इसी पगडण्डीसे आज शामको विजया बूढ़े दरबान कन्हैयासिंहको साथ लेकर बाहर घूमने निकली थी। उस पारके बबूल, बाँस, खजूर आदि वृक्षोंके पत्तोंकी ओटसे अस्ताचलको ढलते हुए सूर्यकी आरक्त आभा बीच बीचमें उसके मुँहपर आकर पड़ रही थी। अनमनी दृष्टिसे दोनों किनारोंके इधर-उधरके दृश्य देखते देखते बराबर उत्तरकी तरफ बढ़ते हुए सहसा जहाँ उसकी आँखें जा लगीं वहाँ नदीमें कुछ बाँस इकट्ठे करके पार उतरनेके लिए पुल बना दिया गया था। उसे अच्छी तरह देखनेके लिए पानीके किनारे आकर

पास होते ही विमलाने देखा कि बहुत थोड़ी दूरपर एक व्यक्ति अत्यन्त निमग्न होकर मछली पकड़ रहा है। आहट पाते ही उस आदमीने मुँह उठाकर नमस्कार किया। ठीक उसी समय विमलाके मुँहपर सूर्यकी किरणें आकर पड़ीं या नहीं मालूम नहीं; लेकिन चार आँखें होते ही उसका गोरा मुँह एकदम मानों रंगीन हो गया। जो व्यक्ति मछली पकड़ रहा था वह पूर्ण बाबूका वही आगन्तुक था जो उस दिन मामाकी तरफसे उसके पास शिकायत करने गया था। उत्तरमें विमलाके नमस्कार करते ही उसने निकट आकर हँसमुख भावसे कहा "शामको ज़रा घूम लेनेके लिए नदीका किनारा ज़रूर बुरी जगह नहीं है लेकिन इस समय मलेरियाका डर भी कम नहीं है। इस सम्बन्धमें शायद आपको किसीने सावधान नहीं किया।"

विमलाने सिर हिलाकर कहा "नहीं" और दूसरे ही क्षण अपनेको सँभाल कर मुस्कराते हुए कहा "लेकिन मलेरिया तो आदमीको पहचानकर नहीं पकड़ता। मैं तो महज़ बिना जाने आई हूँ, पर आप तो जान बूझकर पानीके किनारे बैठे हैं। देखूँ तो कौन-सी मछली पकड़ी है?"

व्यक्तिने हँसकर कहा "छोटी मछली। लेकिन दो घण्टेमें सिर्फ़ दो ही पा सका। मनहूसीका पत्ता नहीं बैठा। लेकिन क्या कहूँ बताइए, आपके ही समान मुझे प्रायः परदेसी ही समझना चाहिए। बाहर बाहर दिन कटे हैं किसीसे ज़्यादा जान-पहचान भी नहीं है। लेकिन शाम तो जैसे भी हो काटनी ही पड़ती है।"

विमलाने गर्दन हिलाकर हँसते हुए कहा "मेरी भी लगभग यही दशा है। आपका मकान शायद पूर्ण बाबूके मकानके नज़दीक ही है।"

व्यक्तिने कहा "नहीं।" और फिर हाथसे नदीके उस पार दिखाकर कहा "मेरा मकान वह दिखता है। इसी गाँवके पुलपारसे आया हूँ।"

गाँवका नाम सुनकर विमलाने पूछा "तब तो जान पड़ता है जगदीश बाबूके लड़के नरेन्द्रको आप पहचानते हैं?"

उस व्यक्तिके सिर हिलाते ही विमला अत्यन्त कुतूहलसे सहसा प्रश्न कर बैठी "वे किस प्रकारके आदमी हैं?"

लेकिन मुँहसे निकलते ही वह अपने इस अशिष्ट प्रश्नके कारण अत्यन्त लज्जित हो उठी। विमलाकी लज्जाका भाव उस व्यक्तिकी दृष्टिसे छिपा नहीं रह सका। उसने हँसकर कहा "उसका मकान तो आपके मामाके मकानमें

जायगा। क्या कहती हो बेटी?"

विजयाने सिर हिलाकर बताया, "अच्छा" लेकिन तिसपर भी उसके मुँहका भाव देखकर साफ मालूम हुआ कि उसने मन ही मन इस प्रस्तावका अनुमोदन नहीं किया है। रासबिहारीने भाव विजयाको पहचाना। उन्होंने अच्छी तरह समझ लिया कि इस लड़कीकी उमर कम है, लेकिन यह जानती है कि अपने पिताकी जायदादकी मैं मालिक हूँ, और इसे मुट्ठीके भीतर लानेमें समय लगेगा। अतएव एक बात लेकर ही ज्यादा खींच-तान करना वाजिब नहीं है, यह सोचकर शामकी उपासनाका बहाना करके वे उठ बैठे। विजया प्रणाम करके चुपचाप आसन छोड़कर खड़ी हो गई। वे आशीर्वाद देकर बाहर चले गये। विजयाने पल-भर चुपचाप खड़ी रहकर कहा, "मुझे बहुत-सी चिट्ठियाँ लिखनी हैं,—आपको क्या मेरी कोई आवश्यकता है?"

विलासने रूखे भावसे जवाब दिया, "कुछ नहीं। आप जा सकती हैं।"

"आपके लिए चाय भेजनेको कह दूँ क्या?"

"नहीं जरूरत नहीं है।"

"अच्छा नमस्कार।" कहकर विजया एक बार दोनों हाथ जोड़कर ही कमरेसे बाहर चली गई।

६

दिघड़ाके स्वर्गीय जगदीश बाबूका मकान सरस्वतीके उस पार था। मकानके सीधमें होनेपर भी नदी-किनारेके कुछ बाँसके पेड़ोंके कारण वनमाली बाबूके घरसे उससे वह दिखाई नहीं पड़ता था। उस समय शरद ऋतु बीतनेके साथ साथ छोटी-सी सरस्वतीका वर्षामें बढ़ा पानी भी खतम होता जा रहा था और तीरके ऊपरसे किसानोंके आने जानेकी पगडण्डी भी पैरोंसे दबकर सख्त होती जा रही थी। इसी पगडण्डीसे आज शामको विजया बूढ़े दरबान कन्हैयासिंहको साथ लेकर बाहर घूमने निकली थी। उस पारके बबूल, बाँस, खजूर आदि वृक्षोंके पत्तोंकी फाँकोंसे अस्ताचलमें डूबते हुए सूर्यकी आरक्त आभा बीच बीचमें उसके मुँहपर आकर पड़ रही थी। अनमनी दृष्टिसे दोनों किनारेके इधर-उधरके दृश्य देखते देखते बराबर उत्तरकी तरफ बढ़ते हुए सहसा यहाँ उसकी आँखें जा लगीं जहाँ नदीमें कुछ बाँस इकट्ठे करके पार उतरनेके लिए पुल बना दिया गया था। उसे अच्छी तरह देखनेके लिए पानीके किनारे आकर

पास होते ही विजयाने देखा कि बहुत थोड़ी दूरपर एक व्यक्ति अत्यन्त निमग्न होकर मछली पकड़ रहा है। आहट पाते ही उस आदमीने मुँह उठाकर नमस्कार किया। ठीक उसी समय विजयाके मुँहपर सूर्यकी किरणें आकर पड़ीं या नहीं मालूम नहीं, लेकिन चार आँखें होते ही उसका गोरा मुँह एकदम मानो रंगीन हो गया। जो व्यक्ति मछली पकड़ रहा था वह पूर्ण बाबूका नाती था जो उस दिन मामाकी तरफसे उसके पास सिफारिश करने गया था। उत्तरमें विजयाके नमस्कार करते ही उसने निकट आकर हँसमुख भावसे कहा

घरसे थोड़ा घूम लेनेके लिए नदीका किनारा अवश्य बुरी जगह नहीं है, लेकिन इस समय मलेरियाका डर भी कम नहीं है। इस सम्बन्धमें शायद आपको किसीने सावधान नहीं किया।

विजयाने सिर हिलाकर कहा नहीं और दूसरे ही क्षण अपनेको सँभाल कर मुस्कराते हुए कहा लेकिन मलेरिया तो आदमीको पहचानकर नहीं पकड़ता। मैं तो क्षणिक लिए आई हूँ, पर आप तो जान बूझकर पानीके किनारे बैठे हैं! देखूँ तो कौन-सी मछली पकड़ी है?

व्यक्तिने हँसकर कहा छोटी मछली। लेकिन दो घण्टेमें सिर्फ दो ही पा सका। मलेरियाका पता नहीं बैठा। लेकिन क्या करूँ बताइए, आपके ही समान मुझे प्रायः परदेशी ही कहना चाहिए। बाहर बाहर दिन कटे हैं, किसीसे उतनी जान-पहचान भी नहीं है। लेकिन काम तो कैसे भी हो चलानी ही पड़ती है।'

विजयाने गर्दन हिलाकर हँसते हुए कहा मेरी भी समझमें नहीं आता है। आपका मकान शायद पूर्ण बाबूके मकानके नजदीक ही है।

व्यक्तिने कहा नहीं।" और फिर हाथसे नदीके उस पार दिखाकर कहा मेरा मकान उस दिशामें है। इसी गाँवके पुलपरसे आते हैं।"

गाँवका नाम सुनकर विजयाने पूछा तब तो आप पहचानते हैं जगदीश बाबूके लड़के नरेन्द्रको आप पहचानते हैं?"

उस व्यक्तिके सिर हिलाते ही विजया अत्यन्त कुतूहलसे सहसा प्रश्न कर बैठी "वे किस प्रकारके आदमी हैं?'

लेकिन मुँहसे निकलते ही वह अपने इस अशिष्ट प्रश्नके कारण अत्यन्त लज्जित हो उठी। विजयाकी लज्जाका भाव उस व्यक्तिकी दृष्टिसे छिपा नहीं रह सका। उसने हँसकर कहा "उसका मकान तो आपने कभीकी बाजारमें

जायगा। क्या कहती हो बेटी?"

बिजयाने सिर हिलाकर बताया, "अच्छा" लेकिन सिरपर भी उसके मुँहका भाव देखकर साफ मालूम हुआ कि उसने मन ही मन इस प्रस्तावका अनुमोदन नहीं किया है। रासबिहारीने आज बिजयाको पहचाना। उन्होंने अच्छी तरह समझ लिया कि इस लड़कीकी उमर कम है, लेकिन यह जानती है कि अपने पिताकी जायदादकी मैं मालिक हूँ, और इसे मुट्ठीके भीतर लानेमें समय लगेगा। अतएव एक बात लेकर ही ज्यादा खींच-तान करना वाजिब नहीं है, यह सोचकर सान्ध्य उपासनाका बहाना करके वे उठ बैठे। बिजया प्रणाम करके चुपचाप आसन छोड़कर खड़ी हो गई। वे आशीर्वाद देकर बाहर चले गये। बिजयाने पल-भर चुपचाप खड़ी रहकर कहा मुझे बहुत-सी चिट्ठियाँ लिखनी हैं,—आपको क्या मेरी कोई आवश्यकता है?

बिलासने रूखे भावसे जवाब दिया, "कुछ नहीं। आप जा सकती हैं।

आपके लिए चाय लानेको कह दूँ क्या?"

"नहीं जरूरत नहीं है।"

'अच्छा नमस्कार।" कहकर बिजया एक बार दोनों हाथ जोड़कर ही कमरेसे बाहर चली गई।

६

बिजयाके स्वर्गीय जगदीश बाबूका मकान सरस्वतीके उस पार था। बगलके गाँवमें होनेपर भी नदी-किनारेके कुछ बाँसके पेड़ोंके कारण बनमाली बाबूके मकानकी छतसे वह दिखाई नहीं पड़ता था। उस समय शरद् ऋतु बीतनेके साथ साथ छोटी-सी सरस्वतीके गर्भमें जमा पानी भी कम होता जा रहा था और तीरके ऊपरसे किसानोंके आने जानेकी पगडंडी भी पैरोंसे दबकर बनी होती जा रही थी। इसी पगडंडीसे आज शामको बिजया बूढ़े दरबान कन्हैयासिंहको साथ लेकर बाहर घूमने निकली थी। उस पारके बबूल, बाँस, खजूर आदि वृक्षोंके पत्तोंकी फाँकोंसे अस्ताचलमें डूबते [illegible] सूर्यकी आरक्त आभा बीच बीचमें उसके मुँहपर आकर पड़ रही थी। अकस्मात् दृष्टि दोनों किनारेके इधर-उधरके दृश्य देखते देखते बराबर उत्तरकी तरफ बढ़ते हुए सहसा वहाँ उसकी आँखें जा लगीं जहाँ नदीमें कुछ बाँस इकट्ठे करके पार उतरनेके लिए पुल बना दिया गया था। उसे अच्छी तरह देखनेके लिए पानीके किनारे आकर

आगे होते ही विजयाने देखा कि बहुत थोड़ी दूरपर एक व्यक्ति अत्यन्त निमग्न होकर मछली पकड़ रहा है। आहट पाते ही उस आदमीने मुँह उठाकर नमस्कार किया। ठीक उसी समय विजयाके मुँहपर सूर्यकी किरणें आकर पड़ीं या नहीं मालूम नहीं, लेकिन चार आँखें होते ही उसका गोरा मुँह एकदम मानों रंगीन हो गया। जो व्यक्ति मछली पकड़ रहा था वह पूर्ण बाबूका वही भानजा था जो उस दिन मामाकी तरफसे उसके पास सिफारिश करने गया था। उत्तरमें विजयाके नमस्कार करते ही उसने निकट आकर हँसमुख भावसे कहा "शामको थोड़ा घूम लेनेके लिए नदीका किनारा जरूर बुरी जगह नहीं है लेकिन इस समय मलेरियाका डर भी कम नहीं है। इस सम्बन्धमें शायद आपको किसीने सावधान नहीं किया।"

विजयाने सिर हिलाकर कहा "नहीं" और दूसरे ही क्षण अपनेको सँभाल कर मुस्कराते हुए कहा "लेकिन मलेरिया तो आदमीको पहचानकर नहीं पकड़ता। मैं तो शायद बिना जाने आई हूँ, पर आप तो जान बूझकर पानीके किनारे बैठे हैं। देखूँ तो कौन-सी मछली पकड़ी है?"

व्यक्तिने हँसकर कहा "पोठी मछली। लेकिन दो घण्टेमें सिर्फ दो ही पा सका। मजदूरीका पड़ता नहीं बैठा। लेकिन क्या करूँ बताइए, आपके ही समान मुझे उसकी परवाह ही करना चाहिए। बाहर बाहर दिन कटे हैं, किसीसे उतनी जान-पहचान भी नहीं है। लेकिन शाम तो कैसे भी हो काटनी ही पड़ती है।"

विजयाने गर्दन हिलाकर हँसते हुए कहा "मेरा भी अनुमान यही रहा है। आपका मकान शायद पूर्ण बाबूके मकानके नजदीक ही है।"

व्यक्तिने कहा "नहीं।" और फिर हाथसे नदीके उस पार दिखाकर कहा "मेरा मकान वह दिघड़ामें है। इसी नौकाके पुलपरसे आता हूँ।"

गाँवका नाम सुनकर विजयाने पूछा, "तब तो जान पड़ता है जगदीश बाबूके लड़के नरेन्द्रको आप पहचानते हैं?"

उस व्यक्तिके सिर हिलाते ही विजया अत्यन्त कुतूहलसे सहसा प्रश्न कर बैठी "वे किस प्रकारके आदमी हैं?"

लेकिन मुँहसे निकलते ही वह अपने इस अशिष्ट प्रश्नके कारण अत्यन्त लज्जित हो उठी। विजयाकी लज्जाका भाव उस व्यक्तिकी दृष्टिसे छिपा नहीं रह सका। उसने हँसकर कहा "उसका मकान तो आपने अपनी जायदादमें

स्वीकार किया है; अब उसके सम्बन्धमें पता लगानेसे क्या फल होगा ? लेकिन उसे जिस सदुद्देश्यसे किया है वह इस प्रान्तके सब लोगोंने सुन लिया है।"

विजयाने पूछा "एकदम किया या सुना ? शायद इस तरफ यही बात फैल गई है ?"

वह बोला "सब लोगोंकी बात ही है। जगदीश बाबूकी सारी जायदाद आपके पिताके पास रहन-नामेसे बन्धक थी। उनके लड़केकी शक्ति नहीं है कि उसने रुपये चुकाए, मियाद भी खत्म हो गई है —यह तो सभी जानते हैं।

मकान कैसा है ?"

बुरा नहीं है; अच्छा पक्का मकान है। जिस ढंगसे वे रहते हैं, उसके लिए अच्छा ही होगा। चलिए न और थोड़ा बढ़ते ही दिखाई पड़ जायगा।"

विजयाने चलते चलते कहा आप जब गाँवके आदमी हैं तब जरूर सब जानते हैं। अच्छा सुना है नरेन्द्र बाबू विलायतसे नामवरीके साथ डाक्टरी पास करके आये हैं। किसी अच्छी जगह प्रेक्टिस शुरू करके और भी कुछ मियाद लेकर क्या पिताका कर्ज नहीं चुका सकेंगे ?

व्यक्तिने गर्दन हिलाकर कहा सम्भव नहीं है। सुना है शायद उनका प्रेक्टिस करनेका इरादा भी नहीं है।"

विजयाने विस्मित होकर कहा "तब उनका मतलब आखिर क्या है ? इतना खर्च-पात करके विलायत जाकर कष्ट उठाकर डाक्टरी सीखनेका फल आखिर क्या होगा ? जान पड़ता है, किसी कामके आदमी नहीं हैं।'

उस भले आदमीने थोड़ा हँसकर कहा असम्भव नहीं है। तो भी सुना है शायद नरेन्द्र बाबू खुद हमेशा नया रोग मिटानेकी बनिस्बत कोई नया आविष्कार कर जाना अधिक पसन्द करते हैं जिससे बहुत ज्यादा लोगोंका उपकार हो। मैंने सुना है वे तरह तरहके यन्त्र लेकर दिन-रात खूब मेहनत किया करते हैं।"

विजयाने चकित होकर कहा यह तो बहुत बड़ी बात है। लेकिन घर द्वार चले जानेपर कैसे करेंगे ? ऐसी दशामें तो उन्हें रोजगार करना चाहिए। अच्छा आप यह तो जरूर बता सकेंगे, कि विलायत जानेके कारण क्या यहाँके लोगोंने उन्हें समाजसे बाहर कर दिया है ?"

भले आदमीने कहा सो तो जरूर कर दिया है। मेरे मामा पूर्ण बाबू उनके भी एक प्रकारसे आत्मीय हैं पर उन्होंने भी पूजाके दिनोंमें उन्हें मण्ड-पपर बुलानेका साहस नहीं किया। लेकिन इससे उनका कुछ बनता-बिगड़ता

नहीं है। अपने काम-काजमें लगे रहते हैं, समय पानेपर चित्र खींचते हैं — मकानसे बाहर निकलते ही नहीं। देखिए, वह है उनका मकान।" कहकर सतन उँगलीसे दूर झाड़ोंसे घिरी एक भारी कोठी दिखा दी।

इसी समय बूढ़े दरबानने पीछेसे टूटी-फूटी बंगलामें बताया कि हम बहुत दूर निकल आये हैं मकान पहुँचते पहुँचते शाम हो जायगी।

व्यक्तिने फिरकर खड़े होकर कहा "हाँ बात करते करते बहुत दूर आ गये हैं।"

उसे उसी गाँवके पुलपरसे गाँवमें जाना था इसलिए लौटते समय वह भी साथ साथ चलने लगा। विजयाने मन ही मन न जाने क्या सोचकर कहा "तो बताइए उन्हें किसी आत्मीय कुटुम्बीके घरमें भी आसरा पानेका भरोसा नहीं है।"

व्यक्तिने कहा "बिलकुल नहीं।"

विजयाने और थोड़ी देर चुपचाप चलकर कहा "वे किसीके भी पास नहीं जाना चाहते यह बात ठीक है। नहीं तो इस महीनेके आखिरमें ही तो उन्हें मकान छोड़ देनेका नोटिस दिया गया है। और कोई होता तो आखिर हम लोगोंसे एक बार मिलनेका प्रयत्न अवश्य करता।"

व्यक्तिने कहा "शायद उन्हें जरूरत नहीं है, या फिर सोचते होंगे कि फायदा क्या है। आप तो अब सचमुच ही उन्हें मकानमें रहने न दे नहीं सकेंगी?"

विजयाने कहा "न दे सकनेपर भी और कुछ दिन तो ठहरने दिया जा सकता है। इधर कम क्या करना हो फिर भी एक आदमीको घर-द्वार रहित करनेमें कष्ट तो होता है। लेकिन आपकी बातचीतके भावसे जान पड़ता है, उनसे आपकी पहचान है। कहिए, सच है न?"

व्यक्ति जरा हँसा उससे और कोई बात नहीं कही। वे लोग पुलके पास ही पहुँच थे कि उसने अपनी छोटी *बेंगनी उठाकर कहा, "यही हमारे गाँवको जानेका रास्ता है।" और फिर हाथ उठाकर नमस्कार करके गौरव धन उस पुलपरसे हिलते डुलते किसी प्रकार पार होकर वह सँकरे जंगली मार्गके भीतर अदृश्य हो गया।

बहुत दिनोंके बूढ़े नौकर कालीपदसिंह विजयाको बचपनसे गोदमें खिलाकर बड़ा किया था और उसीके साथ वह दरबानोंके न्यायोचित अधिकारको भी बहुत दूर पार कर गया था। उसने नजदीक आकर पूछा "ये बाबू कौन हैं बिटिया?"

*मछली पकड़नेकी बन्सी।

लेकिन विजया इतनी तन्मयी हो गई थी कि दूसरा प्रश्न उसके कानोंतक पहुँचा ही नहीं। बस अँधेरे नदी-तटकी सारी नीरव मधुरताकी लोभसे भावे उपेक्षा करके वह अपनेमें विभोर-सी केवल यह बात सोचते सोचते ही राह चलती रही,—कौन है यह और अब कब इससे भेंट होगी!

७

रासबिहारी बोले "हमने ही नोटिस दिया है, और हम ही उसे रद्द करने जायँ तो दूसरी रैयतको यह कैसा दिखेगा एक बार सोच तो देखो बेटी!"

विजयाने कहा "इसी बातकी एक चिट्ठी लिखकर उनके पास भेज क्यों नहीं देते? मुझे निश्चय जान पड़ता है, वे केवल अपमानके भयसे ही यहाँ आनेका साहस नहीं करते।"

रासबिहारीने पूछा "अपमान काहेका?"

विजया बोली "अगर उन्होंने सोचा है कि उनकी विनती हम लोग मंजूर नहीं करेंगे।"

रासबिहारीने उपहासके भावसे कहा "महारानी आपको भ्रम पड़ता है। इसलिए, क्या सिरपर चढ़कर हम लोगोंको घर याचना करके उसे रहने देना होगा?"

विजयाने कातर होकर कहा "इसमें भी दोष नहीं है काकाजी अपराधित क्षमा करनेमें कोई लज्जा नहीं है।"

रासबिहारीने कहा "लज्जा भले न सही, लेकिन हम लोगोंने समाज-स्थापनाका जो संकल्प किया है, उसका क्या होगा, यह तो बताओ?"

विजया बोली "उसका कोई दूसरा प्रबंध भी हम लोग कर सकते हैं।"

रासबिहारी मन ही मन बहुत बिगड़कर बाहरसे कुछ हँसते हुए बोले "तुम्हारे पिता काफी रुपए रख गये हैं तुम दूसरा इन्तजाम भी कर सकती हो यह मैं समझा; लेकिन यह बात तो मुझे समझा दो बेटी कि जिसे आज तक कभी तुमने आँखोंसे भी नहीं देखा है, हमारा इतना अनुरोध टालकर उसके लिए ही आखिर तुम्हें इतना दर्द क्यों है? भगवानकी कृपासे तुम्हारी और भी रैयत है, और भी दस आसामी हैं, उन सबके लिए भी क्या तुम यह प्रबंध कर सकोगी और वह कर सकनेमें ही मंगल होगा? पहले यह जवाब तो मुझे दे दो विजया।"

विजयाने कहा "आपको तो बता दिया है, कि यह मामूली आखिरी अनुरोध है। इसके सिवा मैंने सुना है—'

क्या सुना है?"

बखान किये बगैर उससे चिकित्साके सम्बन्धमें उसके तत्वानुसन्धान या आविष्कारकी बात विजयाने नहीं कही; इतना ही कहा, 'मैंने सुना है वे बहिष्कृत हैं एक-घरे कर देनेपर किसी आत्मीय कुटुम्बीके भी मकानमें उनके आश्रय पानेका रास्ता नहीं रह जायगा। इसके सिवा 'एक-घरे' शब्दका भाव मनमें आते ही मुझे कष्ट होता है बाबूजी।"

रासबिहारी अपना कम्फर्टर कानतक लपेटके बोले "तुम्हें इतनी उमरमें यदि इतना कष्ट होता है, तो मेरी इस उमरमें मुझे वह कितना अधिक हो सकता है; सोचो-सोचो तो सही! और अपने समूचे जीवनमें क्या मैं पहले पहल इसी अप्रिय कर्तव्यके सामने खड़ा हुआ हूँ बिटिया! नहीं ऐसा नहीं है। कर्तव्य सदैव हमारे सामने कर्तव्य है। उसके सामने हृदयकी रुचिकी कोई कीमत नहीं चल सकती। समाजकी जिस कठोर जिम्मेदारीका भार मुझपर रख गये हैं, वह मुझे जीवनके आखिरी दम तक उठाना ही होगा उसमें चाहे जितना कष्ट क्यों न भोग करना पड़े। या तो तुम मुझे सारी जिम्मेदारियोंसे पूरी मुक्ति दे दो नहीं तो मैं किसी प्रकार भी तुम्हारा यह असंगत अनुरोध न मान सकूँगा।"

विजया नीचा मुँह किये चुपचाप बैठी रही। पिताके बराबरपर उसके निरपराध गुरुको एक-घरे करनेका संकल्प उनके हृदयमें जो व्यथा पहुँचाने लगा उसका अनुमान लगाकर यह बूढ़ा उसकी अटूट वेदना सहकर भी कर्तव्य-पालनमें कमर कसे हुए है, यह बात वह अपने मनमें ठीक तौरसे महसूस नहीं कर सकी —बल्कि —यह मानो सिर्फ एक निरुपाय हतभाग्यपर प्रभावकी एकान्त हृदयहीन निष्ठुरताके समान ही उसे लग उठा। लेकिन जोर देकर अपनी इच्छाको प्रकट करनेका साहस भी उसमें नहीं था। साथ ही, यह भी उससे छिपा नहीं रहा कि बैंड-बाजेमें समारोहके साथ ब्राह्म-मन्दिर स्थापनाकी ख्याति पानेकी जैसी आकांक्षाएँ ही इस जिदके पीछे खड़ा होकर विलासबिहारी यह जिद और जबरदस्ती कर रहा है।

रासबिहारी और कुछ नहीं बोले। विजयाने भी कुछ देर चुप बैठे रहकर यद्यपि मौन सम्मति दे दी लेकिन भीतर उसका परदुःख-कातर, स्नेह-कोमल नारी-चित्त इस बूढ़ेके प्रति नफरत और उसके लड़केके प्रति घृणासे भर उठा।

रासबिहारी कारबारी आदमी ठहरे; यह बात उन्हें अविदित नहीं थी कि जो मालिक है उसे तर्कके समय सोलह आने वसूलकर भी अदायगीके समय उससे आठ आनेसे अधिक वसूल नहीं करना चाहिए; क्योंकि यह पावना अन्त तक पक्का नहीं होता। अतएव उदारता दिखानेके द्वारा लाभवान् होनेका यदि कोई समय है तो यह यही है। विजयाके मुँहकी ओर देखकर और थोड़ा-सा हँसकर उन्होंने कहा "बेटी तुम्हारी चीज है तुम दान करोगी तो मैं विरोध क्यों करूँगा? मैं सिर्फ यही कहना चाहता था कि विलासने जो कुछ करना चाहा था, वह न स्वार्थके कारण था और न नाराजीके कारण केवल कर्तव्य समझकर ही उसने वह करना चाहा था। एक दिन मेरी जायदाद और तुम्हारे पिताकी जायदाद—सब एक होकर तुम दोनोंके हाथमें जायगी; उस दिन सुई रखनेके लिए इस पृथ्वीमें भी नहीं खोज पाओगी। उस दिन तुम दोनोंके मनमें भय न हो उस दिन तुम अपने स्वामीके हरएक कामको ठीक मानकर श्रद्धापूर्वक कर सको—केवल यही मैंने चाहा है। नहीं तो दान करना दया करना यह भी जानता है, मैं भी जानता हूँ। लेकिन तुम्हारे सामने मुझे केवल यही प्रमाणित करना था कि यह दान अपात्रको दे देनेसे किसी प्रकार काम नहीं चलेगा। अब समझीं बेटी क्यों हम लोग जमींदारीके कामोंपर रत्तीभर भी दया नहीं करना चाहते और क्यों वह दया एकदम असम्भव है।"

यह कहकर वृद्ध स्नेहके साथ हँसते हुए विजयाके मुँहकी तरफ देखते रहे। इन परम सारगर्भित और युक्तियुक्त उपदेशोंके विरुद्ध तर्क नहीं चल सकता था इसलिए विजया चुपचाप बैठी रही। रासबिहारीने फिर कहा "अब समझीं बेटी विजया विलास उद्धत होनेपर भी कितनी दूरतक भविष्यत् सोचकर काम करता है? अभी मैंने तुमसे कहा था कि मैंने इस काममें ही बाल पकाये हैं, लेकिन जमींदारीके काममें उसकी चाल समझनेके लिए मुझे भी बीच बीचमें स्तम्भित होकर रह जाना पड़ता है।"

विजयाने केवल गर्दन हिलाकर अनुमोदन किया वह बोली नहीं।

"साढ़े चार बज गये।" कहकर रासबिहारी लाठी हाथमें लेकर उठ खड़े हुए, और बोले 'इस समाज-प्रतिष्ठाकी चिन्तासे विलास कितना तल्लीन हो रहा है इसे मुँहसे नहीं बताया जा सकता। उसका खाना-सोना सब इस समय नहीं हो गया है। अब ईश्वरके चरणोंमें मेरी यही प्रार्थना है कि यह शुभ दिन मैं आँखोंसे देखकर मर सकूँ।" कहकर उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर

प्रभुके उद्देश्यसे बार बार नमस्कार किया। दरवाजेके पास आकर वे सहसा खड़े होकर कह उठे 'नरेन्द्र एक बार मेरे पास आता तो कैसे भी होता कुछ विचार करता; लेकिन वह भी तो कभी—बड़ा हतभागा है, बड़ा हतभागा है! देख रहा हूँ कि बापका स्वभाव सोलहों कलाओंमें उसमें उतर आया है।' कहते कहते वे बाहर निकल गये।

वहीं एक मोढ़ेसे बैठी हुई विजया न जाने क्या सोचने लगी। अकस्मात् बाहरकी ओर नजर पड़ते ही उसने देखा कि दिन ढलता जा रहा है। तब नदी किनारेकी स्वास्थ्यकर हवाने उसे जोरसे खींचकर मानो आसनसे उठा दिया और आज भी वह वृद्ध दरबानजीको लेकर वायु-सेवनके बहाने बाहर निकल पड़ी।

ठीक उसी जगह बैठकर आज भी वह व्यक्ति मछली पकड़ रहा था। बहुत दूरसे यह देख लेनेपर भी नजदीक आकर मानो देख ही न सकी हो इस तरह विजया चली जा रही थी कि सहसा कन्हैयासिंह पीछेसे पुकार उठा — सलाम बाबूजी, शिकार मिला?"

बात विजयाके कानोंमें जाते ही उसकी देह तक लाल हो उठी। जो लोग समझते हैं, यथार्थ परिचित होनेके लिए अनेक दिन चाहिए और बहुत-सी बातचीत होनी चाहिए, उन्हें याद दिला देना जरूरी है, कि नहीं यह बहुत जरूरी नहीं है। विजयाके फिरकर खड़े होते ही व्यक्ति बंसी रखकर पास आकर नमस्कार करके खड़ा हो गया और हँसते हुए बोला — हाँ, देशके प्रति आपका सच्चा आकर्षण है। यहाँ तक कि मैं देखता हूँ, उसके मलेरिया तकको अपनाये बिना आपका काम नहीं चलेगा!

विजयाने हँसमुख होकर पूछा, "आप [illegible] हैं जान पड़ता है लेकिन देखनेसे तो ऐसा नहीं जान पड़ता।"

व्यक्तिने कहा 'डॉक्टरको बोझा बोरिया रखकर अपनाना होता है। देशी [illegible]—"

बात समाप्त होनेसे पहले ही विजयाने प्रश्न किया "आप डाक्टर हैं शायद?"

व्यक्ति अप्रतिभ हो जानेके कारण सहसा उत्तर नहीं दे सका। लेकिन दूसरे ही क्षण अपनेको सँभाल लेकर उसीने हँसी करनेकी भंगीसे कहा — यही समझना चाहिए। एक बड़े भारी डाक्टरके पड़ोसी हैं न हम लोग! उनके दे दे ऐसा सब तो हमारी बारी आयेगी—ठीक है न?"

विमलाने क्षण-भर चुप रहनेके बाद कहा, "मैंने अनुमान किया था कि केवल पड़ोसी नहीं, वे आपके एक मित्र भी हैं। मेरी बातें उनसे कह दी हैं क्या?"

उस व्यक्तिने हँसकर कहा, "यही न कि आप उन्हें एक अपदार्थ अभागा समझती हैं—लेकिन यह तो पुरानी बात है, सभी समझते हैं। इन बातोंको फिर नये रूपसे कहनेकी क्या जरूरत है? तो भी एक दिन वह आकर आपसे मिल जायगा।"

विमलाने मन ही मन अत्यन्त लज्जित होकर कहा, "मुझसे मिलनेसे उन्हें क्या लाभ होगा? लेकिन उनके सम्बन्धमें तो मैंने ऐसी बातें आपसे कहीं नहीं।"

"अवश्य नहीं कहीं, लेकिन कहना ही तो उचित था।"

"उचित क्यों था?"

"जिसका घर द्वार बिक जाता है, उसे सभी अभागा कहते हैं। हम भी कहते हैं। आपने चाहे न कह सकें, पीछे तो कह सकते हैं।"

विमला हँसने लगी। उसने कहा, "तब तो आप उनके अच्छे मित्र हैं।"

व्यक्तिने गर्दन हिलाकर कहा, "यह ठीक है। नहीं तब कि उसकी तरफसे मैं खुद ही आपसे आ झगड़ता यदि मैं न जानता कि आप अपने सोचनेसे ही उसका अपमान कर रही हैं।"

विमलाने केवल एक बार मुँह उठाकर देखा, किन्तु इस सम्बन्धमें कोई बात कही नहीं।

बात करते करते आज वे लोग कुछ और ज्यादा दूरतक बढ़ गये थे। देखा कि उस पार खेतोंमें एक दल कतार बाँधकर नरेन बाबूके मकानकी तरफ चला जा रहा है। उसमें पचाससे लेकर पन्द्रह तकके सब ही उमरके लोग थे। उसने दिखाकर कहा, "ये लोग कहाँ जा रहे हैं, जानती हैं? नरेन बाबूके स्कूलमें पढ़ने।"

विमलाने आश्चर्यमें पड़कर पूछा, "ये सब रोजगार भी करते हैं क्या? लेकिन जहाँ तक समझ रही हूँ, बिना पैसेके ही—क्यों, ठीक है न?"

व्यक्तिने हँसमुख होकर कहा, "इसे आपने ठीक पहचाना है। अपदार्थ व्यक्तिके मनकी बात कहीं नहीं छिपती।" फिर पहलेकी अपेक्षा अधिक गम्भीर होकर कहा, "नरेन कहता है कि हमारे देशमें सच्चे किसान नहीं हैं, किसानी करना पेशा है इसीलिए लोग समय-असमय दो बार हल चलाकर बीज छिड़क देते हैं और मुँह बाये आकाशकी तरफ ताकते बैठ रहते हैं। इसको खेती करना नहीं कहते, जुआरी बाजना कहते हैं। किस जमीनमें कब खाद दी जाती है, खाद कैसे बनती है, किसे सच्ची खेती कहते हैं—यह सब वे

नहीं जानते। विलायतमें रहकर डाक्टरी पढ़नेके साथ ही यह विद्या भी यह सीख आया है। अच्छा एक दिन उसका स्कूल देखने आइएगा! —वहीं मैदानके बीच पेड़ोंके नीचे बाप-बेटा-बाबा सब मिलकर एक साथ बैठते हैं।"

विजया इसी क्षण जानेके लिए उद्यत हो गई, लेकिन दूसरे ही क्षण कुतूहल दबाकर बोली, "नहीं, अभी रहने दीजिए।" फिर पूछा, "इतने बड़े मकानके रहते वे पेड़ोंके नीचे पाठशाला क्यों लगाते हैं?"

व्यक्तिने कहा, "यह सब शिक्षा तो केवल मुँहसे बताकर, पुस्तकें मुखाग्र कराके ही नहीं दी जा सकती। इस उनके हाथसे खेती करवाकर दिखाना पड़ता है कि यह काम ठीक रीतिसे करनेसे दुगुनी —यहाँ तक कि पाँच-सात गुनी भी फसल पैदा की जा सकती है। उसके लिए मैदानकी जरूरत है, खेतोंकी जरूरत है, सिर ठोककर बाबुओंकी तरह ताककर हाथपर हाथ रखके बैठे रहनेकी जरूरत नहीं। अब समझीं कि क्यों उसकी पाठशाला पेड़ोंके नीचे लगती है? यदि आप एक बार उसके स्कूलके मैदानकी खेती देखें तो मैं विश्वास दिलाकर कह सकता हूँ कि आपकी आँखें ठण्डी हो जायँ। इस समय भी तो कम है —आज ही चलिए न —वह तो दिखाई पड़ रही है।"

विजयाके मुँहका भाव क्रमशः गम्भीर और कठिन होता जा रहा था, उसने कहा, "आज रहने दीजिए।"

व्यक्तिने सहज ही कहा, "तो रहने दीजिए। चलिए, आपको थोड़ा आगे तक पहुँचा आऊँ।" यह कहकर वह साथ चलने लगा। पाँच-छः मिनट तक विजयाने एक भी बात नहीं कही। भीतर भीतर उसे न जाने कैसी शर्म-सी मालूम हो रही थी और इसका कारण भी वह खोज नहीं पाती थी। व्यक्तिने दुबारा बात की, कहा, "आप जमींके लिए ही जब उसका मकान ले रही हैं, तब यह थोड़ी-सी जमीन तो बड़े अच्छे काममें ही लग रही है, आप खुशखुशीसे छोड़ दे सकती हैं।" कहकर वह मृदु मृदु हँसने लगा।

लेकिन प्रत्युत्तरमें विजयाने गम्भीर होकर कहा, "यह अनुरोध करनेके लिए उनकी तरफसे आपको कोई अधिकार मिला है?" और कनखियोंसे ताककर देखा कि व्यक्तिके हँसीभरे मुँहमें कोई फर्क नहीं पड़ा है।

वह बोला, "यह अधिकार देनेपर निर्भर नहीं करता, लेनेपर निर्भर करता है। जो अच्छा काम है, उसका अधिकार मनुष्य भगवानसे ही पाता है, उसे किसीके सामने हाथ फैलाकर नहीं लेना होता। जिस अनुग्रहकी प्रार्थना करनेके

कारण आप मन ही मन विरक्त हो गईं, नहीं तो पानीपर कौन चलता, जानती हैं! देखने लायक है निशान। हमारे शास्त्रमें लिखा है कि दरिद्र भगवानकी एक विशेष मूर्ति हैं। उनकी सेवाका अधिकार सभीको है। यह अधिकार मैं मरनेतक भी छोड़ सकूँगा, बताइए?" कहकर वह हँसने लगा।

विजया चलते चलते बोली "किन्तु आपके मित्र तो केवल इसीलिए यहाँ बैठे नहीं रह सकेंगे।"

व्यक्तिने कहा "नहीं। लेकिन वह सम्भवतः मेरे ऊपर भार रखकर जा सकते हैं।"

विजयाके ओठोंमें एक दबी हुई हँसी खेल गई, परन्तु वह अत्यन्त गम्भीर स्वरसे बोली "यही अनुमान मैंने किया था।"

व्यक्तिने कहा "जरूरतकी ही बात है। ये सब काम पहले देशके जमींदारोंके ही थे। उन्हें महोत्तर जमीन * देनी पड़ती थी। अवश्य ही अब वह जिम्मेदारी नहीं रही है, लेकिन उसका असर मिटा नहीं है, इसीलिए यदि कोई दो-चार बीघा दान देनेका चलन चलता है तो वे पूर्व संस्कारके कारण मान लेते हैं।" कहकर वह फिर हँसने लगा। विजयाने चाह भी इस हँसीमें साथ देना चाहा लेकिन वह दे नहीं सकी। वह करुण हँसी उसके हृदयमें कहीं जाकर मानो बिंधी रह गई। उसने कुछ क्षण चुपचाप चलकर अकस्मात् पूछा "आप घर भी तो अपने मित्रको आश्रय दे सकते हैं!"

"पर मैं तो यहाँ रहता नहीं। जान पड़ता है, एक हफ्तेके बाद ही चला जाऊँगा।"

विजया हृदयमें चौंक-सी उठी; बोली, "परन्तु मकान जब यहीं है, तब बार बार आना-जाना तो अवश्य होगा?"

व्यक्तिने सिर हिलाकर कहा "नहीं, जान पड़ता है कि अब मुझे नहीं आना होगा।"

विजयाके हृदयमें उथल-पुथल होने लगी। उसने मन ही मन समझ लिया कि इस सम्बन्धमें कौतूहल प्रकट करना किसी प्रकार उचित नहीं होगा लेकिन फिर भी वह किसी तरह अपना कुतूहल नहीं दबा सकी। उसने धीरे धीरे कहा "यहाँ आपके घरके लोगोंका भार सँभालनेवाला कोई जरूर ही होगा लेकिन—"

व्यक्तिने हँसकर कहा "नहीं, इस प्रकारका कोई आदमी नहीं है।

---

* दानकी जमीन।

तो फिर आपके पिता-माता—"

मेरे पिता-माता भाई-बहन कोई नहीं हैं।—यह लीजिए, हम लोग आपके मकानके सामने आ पहुँचे। नमस्कार मैं चलूँ—" कहते हुए वह रुककर खड़ा हो गया।

विजया उसके मुँहकी तरफ नहीं देख सकी; किन्तु मृदु-कण्ठसे बोली, 'भीतर नहीं आइएगा?"

नहीं; लौटकर जानेमें मुझे अँधेरा हो जाएगा।"

विजयाने हाथ उठाकर नमस्कार करते हुए अत्यन्त संकोचके साथ धीरेसे कहा आप अपने मित्रसे एक बार रासबिहारी बाबूके पास जानेको नहीं कह सकेंगे?"

व्यक्ति विस्मित होकर बोला "उनके पास क्यों?"

"वे ही पिताजीकी सब जमीन-जायदाद देखते हैं न?"

' यह मैं जानता हूँ। लेकिन उनके पास जानेके लिए क्यों कह रही हैं?"

विजया इस प्रश्नका और कोई उत्तर नहीं दे सकी। व्यक्तिने क्षण-भर स्थिर भावसे खड़े रहकर, जान पड़ता है राह देखी। बादको कहा "मुझे लौटनेमें रात हो जायगी।—मैं जाऊँ," और वह तेजीसे पैर बढ़ाता हुआ चला गया।



८

विजयाके मकानसे लगे हुए बागानका इस तरफका अंश बहुत बड़ा है। बड़े बड़े आम कटहल आदिके पेड़ोंके नीचे उस समय अँधेरा घना होता आ रहा था। बूढ़े दरबानने कहा 'बिटिया कुछ घूमकर उधर रास्तेसे जाना ठीक होगा।'

विजयाके मनकी अवस्था इन सब बातोंकी तरफ ध्यान देने योग्य नहीं थी। वह केवल 'न' कहकर तुरन्त अँधेरे बगीचेके भीतरसे ही मकानकी तरफ बढ़ गई। जिन दो बातोंने उसके मनको सबसे ज्यादा घेर रक्खा था उनमेंसे एक यह थी कि इतनी बातचीत होने पर भी उस व्यक्तिका नाम तक नहीं जाना जा सका क्योंकि स्त्रियोंके लिए किसीका नाम पूछना मर्यादा या शिष्टाचारके विरुद्ध है। दूसरी यह कि, जो निजके बारेमें कहनेकी बात बहुत बार मुँहतक आ जाने पर भी हर बार केवल लज्जाके कारण बाहर न निकल सकी। उसके सम्बन्धमें एक बातने आरम्भसे ही विजयाकी दृष्टि आकर्षित की थी कि वे जो

भी हों, खूब पढ़े-लिखे हैं और शैली-गोष्ठीमें जन्म लेनेपर भी एक असाधारण भद्र महिलाके लिए उपयोग लायक अंग्रेजी शिक्षा और अभ्यास रखी हैं। ब्राह्मसमाजकी अनुयायी न होनेपर भी यह शिक्षा उन्होंने किस प्रकार पाई थी, यह सोचते हुए मकानमें पैर रखा ही था कि परेशकी माने आकर बताया बहुत देरसे विमल बाबू बाहरकी बैठकमें रास्ता देख रहे हैं। सुनते ही उसका मन अपमान और विरक्तिसे भर उठा। यह वही व्यक्ति है जो अभी उस दिन नाराज होकर चला गया था और फिर नहीं आया; लेकिन आज चाहे जिस कारणसे भी आया हो इस समय जिस व्यक्तिके विचारोंसे उसका हृदय परिपूर्ण हो रहा है उसके सम्बन्धमें अधिक कुछ न जानते हुए भी वह दोनोंके बीच अकस्मात् आकाश-पातालका भेद किये बिना न रह सकी। उसने चलते हुए नौकरसे पूछा "क्या उन्हें बता दिया है परेशकी अम्मा कि मैं घर आ गई हूँ।"

परेशकी माने कहा "नहीं बेटी मैं परेशको खबर देनेके लिए भेजे देती हूँ।"

"चाय पियेंगे कि नहीं पूछा था?"

"अरे, पूछा क्यों नहीं। उन्होंने कहा था कि तुम्हारे लौट आनेपर एक साथ पियेंगे।"

विमल बाबू ही इस घरके होनहार मालिक हैं, यह बात आत्मीय परिजनोंमें किसीसे छिपी न थी और उसी हिसाबसे उनके आदर-सत्कारमें भी त्रुटि नहीं होती थी। विजया और कुछ कहे बिना ही ऊपर अपने कमरेमें चली गई। कोई बीस मिनट बाद उसने नीचे आकर बड़े दरवाजेके बाहरसे देखा कि विलास बैठकमें चुपचाप बैठा हुआ कुछ कागज-पत्र देख रहा है। विजयाके पैरोंकी आहट सुनते ही वह मुँह उठाकर साधारण-सा नमस्कार करके एकदम गम्भीर हो उठा और बोला "तुमने सोचा होगा कि मैं नाराज होकर इतने दिन नहीं आया। नाराज यद्यपि मैं नहीं हुआ लेकिन यदि होता भी तो आज मैं तुम्हारे सामने प्रमाणित कर देता कि वह जरा भी अनुचित न होता।"

विलास अब तक विजयाको 'आप' कहकर पुकारता था। आजके इस आकस्मिक 'तुम' सम्बोधनका कोई कारण समझ न पानेपर भी विजयाका मुँह देखकर यह अनुमान करना कठिन नहीं था कि यह आनन्दसे उत्फुल्लित नहीं हो सकी और कोई बात कहे बिना ही धीरे धीरे कमरेमें आकर एक कुर्सी खींचकर बैठ गई। विलासने उस तरफ प्रणाम तक करनेमें बिना कहा "मैं

सब ठीक-ठाक करके अभी अभी कलकत्तेसे आ रहा हूँ। अभी तक मिठाईसे भी भेंट नहीं कर सका हूँ। तुम तो मजेसे चुप बैठी रह सकती हो लेकिन मैं तो नहीं रह सकता। मुझे अपनी जिम्मेदारीका ज्ञान है,—इतना भारी काम सिरपर लेकर मैं स्थिर नहीं बैठ सकता। अपने ब्राह्म-मन्दिरकी प्रतिष्ठा इन बड़े दिनोंकी छुट्टियोंमें ही होगी। सब तय कर आया। यहाँ तक कि न्यौता देना तक बाकी रखकर नहीं आया। आः—कल सवेरेसे अब तक मुझे कितने चक्कर काटने पड़े हैं। खैर उस तरफसे तो एक प्रकारसे निश्चिन्त हो गया। कौन कौन आयेंगे, यह भी इस कागजमें लिख लाया हूँ। एक बार पढ़ देखो।" कहकर विलास आत्म-सन्तोषकी भारी साँस छोड़ता हुआ सामनेका कागज विजयाकी तरफ सरका-कर कुर्सीसे टिककर बैठ गया।

फिर भी विजयाने कोई बात न की और न निमन्त्रितोंके सम्बन्धमें ही लेश-मात्र कुतूहल दिखाया। जैसी बैठी थी वैसी बैठी रही। इतनी देरके बाद विलासबिहारीने विजयाकी चुप्पीके सम्बन्धमें सचेत होकर कहा, "मामला क्या है? चुप क्यों हो?"

विजयाने धीरेसे कहा, "मैं सोच रही हूँ कि आप जिन सब लोगोंको निम-न्त्रण दे आये हैं अब उनसे क्या कहा जायगा?"

"इसका मतलब?"

"मन्दिर प्रतिष्ठाके सम्बन्धमें मैं अब तक कुछ तय नहीं कर पाई हूँ।"

विलास तनकर सीधा बैठ गया और कुछ क्षण तीव्र दृष्टिसे देखते रहकर बोला, "इसका मतलब क्या है? क्या तुमने सोचा है कि इन छुट्टियोंमें न कर सकनेपर प्रतिष्ठा फिर जल्दी हो सकेगी? वे लोग तुम्हारी रैयत नहीं हैं जो तुम्हें जब सुभीता होगा तभी आकर हाजिर हो जायँगे! आखिर अब तक कुछ तय न कर पानेका मतलब क्या है?"

क्रोधसे विलासकी दोनों आँखें जल उठीं। विजया नीचा मुँह किये बहुत देर चुप बैठी रही, फिर धीरेसे बोली, "मैंने सोचकर देख लिया, यहाँ यह सब धूमधाम करनेकी जरूरत नहीं है।"

विलास दोनों आँखें चढ़ाकर बोला, "धूमधाम? मैंने तो नहीं कहा कि धूम धाम करनी होगी! बल्कि, जो स्वभावतः ही शान्त-गम्भीर है, उसका काम निःशब्द ही पूरा किया जायगा, इतना ज्ञान मुझे है। तुम्हें उसके लिए चिन्ता न करनी होगी।

विजयाने उसी प्रकार मृदु कण्ठसे कहा, "यहाँ ब्राह्म मन्दिर स्थापित करनेकी कोई सार्थकता नहीं है। यह काम नहीं होगा।"

विलास पहले तो ऐसा स्तम्भित हो गया कि उसके मुँहसे सहसा कोई बात ही नहीं निकली। बादको बोला, "मैं पूछता हूँ कि तुम यथार्थ ब्राह्म महिला हो या नहीं?"

विजयाने मानो गहरी चोटसे चौंककर मुँह उठाकर देखा, किन्तु, उसी क्षण अपनेको संयत करके कहा, "आप घरसे शान्त होकर आइयेगा तब बातें हो सकेंगी। इस समय रहने दीजिए।" यह कहकर वह उठना ही चाहती थी कि देखा नौकर चायका सामान लिये कमरेमें आ रहा है। वह फिर बैठ गई। विलासने उस तरफ आँख उठाकर भी नहीं देखा। ब्राह्मसमाजी होकर भी उसने अपना व्यवहार सुसंस्कृत और शिष्ट रखना नहीं सीखा था। वह नौकरके सामने ही उद्दण्डतासे कह उठा, "हम लोग तुम्हारा सम्बन्ध एकदम छोड़ दे सकते हैं, जानती हो?"

विजया चुपचाप चाय बनाती रही। उसने कोई उत्तर नहीं दिया। नौकरके चले जानेपर धीरेसे बोली, "इसकी चर्चा मैं चाचाजीके साथ करूँगी, आपके साथ नहीं।" कहकर उसने एक कप चाय उसकी तरफ बढ़ा दी।

विलास उसे छुए बिना ही अपनी बातको दुहराकर बोला, "सम्बन्ध त्याग कर देनेसे क्या होगा, जानती हो?"

विजया बोली, "नहीं। लेकिन चाहे जो क्यों न हो, जब आपको अपनी जिम्मेदारीका ज्ञान इतना ज्यादा है, तब मेरी अतिथिरूपसे जिन लोगोंको आपने न्यौता देकर अपमानित करनेकी जिम्मेदारी ली है, उसको भी खुद ही सँभालिए, मुझसे हिस्सा बँटानेका अनुरोध मत कीजिए।"

विलासने दोनों आँखें चमकाकर जोरसे कहा, "मैं काम-काजी आदमी हूँ, कामसे ही प्रेम करता हूँ, खेलसे नहीं। यह याद रखना विजया।"

विजयाने स्वाभाविक शान्त स्वरसे जवाब दिया, "अच्छा, यह मैं नहीं भूलूँगी।"

इस बातमें जो व्यंग था उसने विलास-बिहारीको एकदम पागल कर दिया। वह करीब करीब चीखकर कह उठा, "अच्छा, जिससे भूल न सको वही मैं करूँगा।"

विजयाने इसका जवाब नहीं दिया। सिर नीचा करके वह चायके बर्तनमें चम्मच डुबाकर हिलाने लगी। उसे चुप देखकर विलासने खुद भी थोड़ी देर

चुप रहकर अपनेको कुछ संयत करके प्रश्न किया “ अच्छा, इतना बड़ा मकान सब किस काम आयगा बताओ ? यह यों ही तो खाली नहीं रक्खा जायगा ! ”

इस बार विजयाने मुँह उठाकर देखा और अविचलित स्वरतासे कहा “ नहीं । लेकिन, यह मकान आखिर कैसा ही होगा अब तो अभी तक तय नहीं हुआ है ! ”

जवाब सुनकर विलास क्रोधसे अपने आपको भूल गया । जमीनपर जोरसे पैर पटककर उसने दुबारा चिल्लाकर कहा “ तय हो चुका है सौ बार तय हो चुका है । मैं समाजके प्रतिष्ठित व्यक्तियोंको बुलाकर उनका अपमान नहीं कर सकता । वह मकान हमें चाहिए ही । तुम्हें आज मैं बताये जा रहा हूँ कि यह मैं करके ही छोड़ूँगा । ” यह कहकर उत्तरकी राह तक देखे बिना वह तेजीसे कमरेसे बाहर निकल गया ।

९

उस दिनसे विजयाके मनमें यह आशा हर क्षण तृष्णाके समान जागती रही कि वे अपरिचित व्यक्ति आखिर एक बार तो अपने मित्रको लेकर अनुरोध करने आयेंगे । उन दिनोंमें जितनी बातें हुई थीं वे सभी उस उसके हृदयमें अंकित हो गई थीं । उनका एक एक शब्द तक वह नहीं भूली थी । उन सबको उसने मन ही मन दिन-रात अनुशीलन करके देखा था कि वास्तवमें उसने ऐसा एक भी शब्द नहीं कहा जिससे यह विश्वास उनके मनमें पैदा हो सके कि मुझसे आग्रह करनेसे उनके मित्रके लिए अब कुछ भी बाकी नहीं है । बल्कि उसे अपनी ओरसे यह भावना अच्छी तरह याद आ रहा है कि नरेन्द्र मेरे पिताके मित्रके लड़के हैं और यह भी पूछा था कि मकान मिल जानेपर आप पुराने [illegible] उनमें हैं, या नहीं । तब फिर जिसका अनिष्ट किया जा रहा है उसके होनेपर भी क्या कोई प्रयत्न न करना चाहिए ? जहाँ कोई भरोसा ही नहीं रहता वहाँ भी तो आत्मीय बन्धुगण एक बार प्रयत्न करके देखनेको कहते हैं । तब क्या उनका यह मित्र एकदम इतना न्यारा है ?

नदी किनारे उससे फिर कभी भेंट नहीं हुई । वह सबेरेसे शाम तक प्रतिदिन यही आशा करती थी कि एक बार वे जरूर आयेंगे । लेकिन दिन बीतते चले, न वे आये न उनके अद्भुत डाक्टर आये ।

इधर रासबिहारीसे भेंट होनेपर उन्होंने इस बातका आभास तक न आने दिया कि इस बीच नरेनसे उनकी कोई बात भी हुई है । बल्कि, इशारेसे वे

वही भाव व्यक्त करने लगे कि संकल्प एक प्रकारसे निश्चित ही हो गया है और इस बातको लेकर अब और कुछ विचार या संकल्प उठ सकता है, इसकी मानो वे कल्पना भी नहीं कर सकते। विजया संकोचके कारण कुछ भी कह न सकी। अगहन बीत गया और पूसके ठीक पहले दिन पिता-पुत्रने एक साथ दर्शन दिये। रासबिहारीने कहा "बेटी अब तो अधिक दिन नहीं हैं, इतने ही दिनोंमें सब तैयारी कर लेनी होगी।"

विजयाने सचमुच कुछ विस्मित होकर कहा "उनके खुद अपनी इच्छासे चले गये बिना तो कुछ हो नहीं सकता।"

विलासबिहारी मुँह बनाकर थोड़ा-सा हँसा। उसके पिताने कहा "किसकी बात कहती हो बेटी, जगदीशके लड़केकी? उसने तो कल मकान छोड़ दिया है।"

इस संवादने सचमुच ही विजयाके अन्तस्तल तक पहुँचकर चोट पहुँचाई। वह उसी क्षण खिड़कीकी ओरसे मुड़कर इस प्रकार खड़ी हो गई जिससे वह किसी प्रकार उसका मुँह न देख सके। क्षणभर स्तब्ध रहकर, जोरसे सँभालकर धीरे धीरे उसने रासबिहारीसे पूछा "उनकी चीज-वस्तुएँ क्या हुईं? सब ले गये?"

विलास पीछेसे हँसीकी भंगिमासे बोला "चीज-वस्तुएँ एक टीन पेटी और खटिया भर थी। उसीपर जान पड़ता है उनका शयन होता था। मैंने उसे बाहर पेड़के नीचे खींचकर डाल दिया है। उनका मन हो तो ले जा सकते हैं, हमें कोई आपत्ति नहीं है।"

विजया चुप ही रही परन्तु उसके मुँहपर वेदनाका सुस्पष्ट चिह्न देखकर रासबिहारीने तिरस्कारके स्वरमें कहा "विलास यह तुम्हारा दोष है। मनुष्य कैसा भी अपराधी हो भगवान् उसे कितना ही दण्ड दें, उसके दुःखमें हमें दुःखित होना चाहिए, समवेदना प्रकाशित करना चाहिए। मैं यह नहीं कहता कि तुम हृदयके भीतर उसके लिए कष्ट नहीं पा रहे हो, लेकिन उसे बाहर भी प्रकाशित करना कर्तव्य है। जगदीशके लड़केसे तुम्हारी भेंट हुई थी क्या? उससे एक बार मुझसे मिल लेनेको क्यों नहीं कहा? देखता यदि कुछ—"

पिताकी बात पूरी भी न हो पाई थी कि सहसा उनके इशारेकी जरा भी परवा किये बिना मुँहसे एक प्रकारकी घृणासूचक आवाज करके बोल उठा "मानो मुझे उससे मिलकर निमन्त्रण देनेके सिवा और कोई काम ही नहीं था! बापू तुम क्या कहते हो इसका कोई ठिकाना ही नहीं। इसके सिवा

यह तो मेरे पहुँचनेके पहले ही अपने ट्रंक सन्दूक, अन्य आदि सँभालकर आ चुका था । विलायतका डाक्टर ! निकम्मा कमीना कहींका ! " कहकर वह और भी न जाने क्या कहने जा रहा था कि रासबिहारीने विजयाके मुँहकी तरफ आड़से देखकर कुछ क्रुद्ध कण्ठसे कहा "नहीं विलास, तुम्हारी इस तरहकी बातें मैं क्षमा नहीं कर सकता । अपने व्यवहारके लिए तुम्हें लज्जित होना चाहिए, पश्चात्ताप करना चाहिए ।"

परन्तु विलासने लेश-मात्र भी लज्जित या अनुतप्त हुए बिना जवाब दिया, "किसलिए, बताइए ! मुझे दूसरेके दुःखसे दुःखी होने—दूसरेका दुःख मिटानेकी शिक्षा काफी मिली है परन्तु जो हमारी घरपर आकर अपमान कर जाय उसे मैं क्षमा नहीं कर सकता । पाखण्डी मैं नहीं हूँ ।"

इसका जवाब सुनकर दोनों आश्चर्यमें पड़ गये । रासबिहारीने कहा, "आखिर कौन घरपर आकर तुम्हारा अपमान कर गया ? किसकी बात तुम कर रहे हो ?"

विलासने बनावटी गंभीरतासे कहा "जगदीश बाबूके सपूत नरेनकी ही बात कह रहा हूँ बापू । वह एक दिन ठीक इसी कमरेमें आकर मेरा अपमान कर गया है । उस समय उसको पहचानता नहीं था इसीसे । (विजयाकी ओर इशारा करके) उसने तो तुम्हारा भी अपमान कर जानेमें कसर नहीं रक्खी थी । मालूम है न तुम्हें ?"

विजयाने चकित होकर मुँह फिराकर देखा । विलास बोला "पूर्ण बाबूका भानजा बनकर जो तुम्हारा अपमान कर गया था वह कौन है जानती हो ? उस समय तो उसको बहुत प्रश्रय दिया था । वही नरेन्द्र है । यदि उस समय अपना असली परिचय देनेका साहस करता, तो मैं जानता कि मर्द है । बेहया पाखण्डी कहींका !"

दोनोंने विस्मयसे देखा कि विजयाका सारा मुँह क्षण-भरमें वेदनासे एकदम सूखकर मलिन हो गया है ।

१०

बड़े दिनोंकी छुट्टीमें अब विलम्ब नहीं है इसलिए जगदीशके मकानका बड़ा हाल मन्दिरके लिए और दूसरे सब कमरे कलकत्तेके माननीय अतिथियोंके लिए सजाए जा रहे हैं । खुद विलासबिहारी उनकी देख-भाल कर रहे हैं । साधारण निमन्त्रितोंकी संख्या कम नहीं है । जो लोग विलासके

मित्र हैं, स्थिर किया गया कि वे रासबिहारीके मकानमें और शेष विजयाके मकानमें ठहरेंगे। और जो महिलायें आयेंगी वे भी यहीं ठहरेंगी।

उस दिन सबेरे विजयाने महाजीके पास नीचेके बैठकके कमरेमें घुसते ही देखा परेश एक हाथसे ओठोंमेंसे मुर्कि* निकाल निकालकर खा रहा है और दूसरे हाथसे रस्सी-बँधी एक बकरीके गलेमें हाथ सहलाता हुआ अनिर्वचनीय तृप्तिका भोग कर रहा है। बकरी भी आरामसे आँखें मूंदे मानो दीना छिये लड़केकी सेवा ग्रहण कर रही है।

यह कहना कठिन है कि इन दो विजातीय जीवोंकी सहृदयताके साथ विजयाके मनकी पूर्वापूर्व वेदनाका क्या संयोग था परन्तु देखते देखते अकस्मात् ही उसकी आँखें आँसुओंसे भीग गईं। इस संसारमें यही लड़का उसका सबसे अधिक अनुरक्त था। उसने अपनी आँखें पोंछकर और उसे पास बुलाकर स्नेह और कौतुकके साथ कहा "हाँ रे परेश तेरी माँने क्या तुझे यही धोती दे दी है! छिः यह भी कोई किनारी है रे।"

परेशने गरदन टेढ़ी करके छिपी कनखियोंसे देखकर अपनी किनारीके साथ विजयाकी साड़ीकी बढ़िया चौड़ी किनारीका मन ही मन मिलान कर लिया और तब वह अत्यन्त क्षुब्ध हो उठा। उसका भाव समझकर विजयाने अपनी किनारी दिखाकर कहा "ऐसी न हुई तो क्या तुझे अच्छी लगेगी? क्या कहता है रे?"

परेशने उसी क्षण अनुमोदन करके कहा "अम्मा कुछ भी तो खरीदना नहीं जानती।"

विजयाने कहा "लेकिन मैं तुझे ऐसी ही एक धोती खरीद दे सकती हूँ, यदि तू—"

लेकिन 'यदि' से परेशको मतलब नहीं था। उसने लज्जायुक्त हँसीसे मुँहको कान तक फैलाकर प्रश्न किया "कब दोगी?"

"दूँगी यदि तू मेरी एक बात सुने।"

"कौन-सी बात?"

विजयाने कुछ सोचकर कहा "पर तेरी मा या और कोई छीन लेगा तो तुझे पहनने नहीं देगा।"

इस सम्बन्धमें परेशके मनकी हालत किसी प्रकारकी बाधा माननेको

---

* धान उबालकर जलती हुई रेतमें भूनकर बनाया हुआ चबैना मुरमुरा।

तैयार नहीं थी। उसने गरदन हिलाकर कहा "अम्मा जायेगी कैसे? तुम बोलो न मैं अभी सुनूँगा।"

विजयाने पूछा "दिघड़ा गाँव जानता है?"

परेश हाथ उठाकर बोला "दिघड़ा तो यह रहा। यहीं तो मैं कोरोंके तिनकियाँ बीनने कई बार गया हूँ।"

विजयाने प्रश्न किया "वहाँ सबसे बड़ा मकान किसका है, जानता है?"

परेश बोला "वनमालीका ही तो। अभी पर साल ही तो दारू पीकर वे छतसे कूद पड़े थे। यहीं तो गोविन्दकी गुड़की व बताशोंकी दूकान है, और वह उसका तालाब है। मालिक क्या कहता है, जानती हो माँजी? कहता है, सब चीजें महँगी हो गई हैं, एक पैसेमें अब चार गण्डे बताशे नहीं मिलेंगे, सिर्फ दो गण्डे मिल सकेंगे। पर तुम जो एक साथ एक पैसेके मँगाओ माँजी तो मैं साढ़े पाँच गण्डे ला दे सकता हूँ।"

विजयाने कहा "तू दो पैसेके बताशे खरीद के ला सकेगा?"

परेश बोला, "हूँ, एक हाथमें एक पैसेके साढ़े चार गण्डा गिन लूँगा और बोलूँगा दूकानदार इस हाथमें और साढ़े पाँच गण्डे गिन दे। गिन लेगा तब कहूँगा माँजीने कहा है दो रूमालमें दे। तब दोनों पैसे उसके हाथमें दूँगा। ठीक है न?"

विजयाने हँसकर कहा "हाँ, तब पैसे देना। और साथ ही दूकानदारसे पूछ लेना कि उस बड़े मकानमें जो नरेन्द्र बाबू रहते थे वे कहाँ गये? कहना कि जिस मकानमें वे रहते हैं, वह मुझे पहचनवा दे सकता हो? क्यों रे पूछ लेगा न?"

परेशने माथा हिलाते हिलाते कहा "अच्छा पैसा दो मैं दौड़कर अभी लिये आता हूँ।"

"और मैं जो पूछनेको बोली हूँ?"

परेश बोला "सो भी पूछ लूँगा।"

"बताशे हाथमें पाकर भूल तो नहीं जायगा?"

परेश हाथ बढ़ाकर बोला, "तुम पैसा पकड़ो तो न, मैं दौड़ जाऊँ।"

"और उधर मा यदि पूछे कि परेश कहाँ गया था? तो क्या बोलेगा?"

परेशने अत्यन्त बुद्धिमानके समान हँसकर कहा "सो मैं खूब बोल सकूँगा। बताशेका दोना इस प्रकार धोतीमें छुपाकर कहूँगा माँजीने भेजा था वहाँ बामनोंके यहाँ नरेन्द्र बाबूका पता लगाने। —तुम दो न जल्दी पैसा।"

विजया हँस पड़ी और बोली "तू कैसा पगला लड़का है रे परेश माके

कहीं झूठी बात कही जाती है! पूछने पर माँ ही कह देगा कि बताओ मोल लेने गया था। लेकिन देखा, दूकानदारसे यह बात पूछकर जानेकी बात न भूल जाना। नहीं तो छोड़ी नहीं जायगा सो कहे देती हूँ।"

अच्छा " कहकर परेशके पैसा लेकर तेजीसे चले जानेपर विजया उसी ओर एकटक दृष्टिसे देखती हुई चुप खड़ी रही। जिस संसारको जाननेके कुतूहलमें बिन्दु-भर भी असत्याभिरुचि नहीं है जिसे वह किसी आदमीको भेजकर बहुत दिन पहले ही मजेसे जान सकती थी, वही क्यों आज उसके निकट इतने बड़े संदेहका विषय बन गया है! एक बार नरेन्द्रसे छोकनेपर इस दुःख-चोटीकी कल्पनासे आज वह दूर ही भर जाती। परन्तु अथवा सम्भवतः उसकी जिज्ञासाकी धारामें बलवाने ही मिलकर एकाकार हो गई थी इसी लिए उसे अलग करके देखनेकी दृष्टि किसी भी समय उसकी आँखोंमें थी, यह आज उसे स्मरण ही नहीं हुआ।

विजयाको कई चिट्ठियाँ लिखनी थीं। समय काटनेके लिए वह डेस्कके पास ध्यान जमाकर कलम लेकर बैठ गई। परन्तु बातें ऐसी अस्त-व्यस्त असम्बद्ध होकर मनमें आने लगीं कि बहुतसे कागज फाड़ फाड़कर फेंक देने पड़े और आखिर उसे कलम रख देनी पड़ी। परेश भी दिखाई नहीं पड़ा। अपनी चंचलता और न रख सकनेके कारण विजया ऊपर जाकर उसकी राह देखने लगी। बहुत देरमें दिखाई पड़ा कि वह जल्दी जल्दी नदीके रास्तेसे आ रहा है। विजया काँपते पैरों और धड़कते भरे हृदयसे नीचे उतरकर ज्यों ही बाहरके कमरेमें पहुँची त्यों ही लड़का बताशेका दोना धोतीमें छिपाये चोरके समान दबे पैर रखता हुआ आया और बोला "दो पैसेके बारह पन्ने लाया हूँ माजी।"

विजयाने मनके साथ कहा, "और दूकानदार क्या बोला?"

परेश फुसफुस करके बोला — उसने पैसोंमें से पन्नेकी बात किसीको बतानेको मना कर दिया है। वह बोलता क्या था जानती हो माजी?"

विजयाने ऐंठकर कहा "और उन बागानोंके मालिक नरेन बाबूकी बात—

परेशने कहा "वह यहाँ नहीं हैं, कहीं चले गये हैं। लेकिन कहता क्या था जानती हो माजी? बारह पन्ने—"

विजयाने अत्यन्त विरक्त होकर रूखे स्वरमें कहा "ले जा अपने बारह पन्ने बताशे मेरी आँखोंके सामनेसे।" यह कहकर वह वहाँसे हट गई और खिड़कीके सीकचे पकड़कर बाहरकी ओर देखती हुई खड़ी हो गई।

इस अचिन्तनीय सम्मेलनके कारण लड़केका मुँह निकल आया। यह सोचकर उसके क्षोभकी सीमा नहीं रही कि वह इतनी जल्दी पता और आया ग्यारह मछलियोंकी जगह उसने कितने शौकसे बारह पकड़ेका सौदा किया तो भी माजीको प्रसन्न न कर सका उसने दोनों हाथोंमें दोने लिये हुए मलिन मुँहसे कहा, "इससे ज्यादा तो उसने दिये नहीं माजी।"

विजयाने इसका जवाब नहीं दिया परन्तु उस ओर देखे बिना भी वह लड़केकी अवस्थाका अनुभव कर रही थी। इसी लिए क्षण-भर बाद सदय कण्ठसे बोली "जा परेश ये सब तू जा ले।"

परेशने डरते हुए पूछा "सब!"

विजयाने मुँह फिराये बिना ही कहा "हाँ सब। मुझे इनकी जरूरत नहीं है।"

परेशने समझा यह क्रोधकी बात है। कुछ क्षण चुप खड़े रहनेपर चोटीकी बात याद आते ही और भी एक बात उसे स्मरण हो आई। उसने धीरे धीरे कहा "आचार्यजीसे पूछ आऊँ माजी?"

"कौन आचार्यजी? क्या पूछ आयगा?" अस्फुट कण्ठसे यह प्रश्न करते करते ही विजया मुँह फिराकर रुक गई। मुँहकी बात उसके मुँहमें ही रह गई, बाहर नहीं निकली। क्योंकि बरामदेके ठीक सामने ही नरेन्द्र दिखाई पड़ गया और दूसरे ही क्षण उसने कमरेमें पैर रखकर हाथ उठाकर विजयाको नमस्कार किया।

परेश बोला —कि कहाँ गये हैं नरेन्द्र बाबू?"

विजयाने प्रति नमस्कारका भी अवसर नहीं पाया विवाहके अपमानसे सारा मुँह लाल करके वह असमय व्यग्र होकर बोल उठी, "अच्छा जा, जा अब और पूछनेकी जरूरत नहीं है।"

परेशने समझा, यह भी नाराजीकी बात है इसलिए दुखी स्वरसे बोला "कभी आचार्यजी तो उनके बगलके ही मकानमें रहते हैं माजी। गोविन्द दुकानदारने कहा—"

विजयाने रूखी हँसी हँसकर कहा "आइए बैठिए। फिर परेशकी तरफ देखकर कहा तू अब जा न परेश। जरा-सी तो बात है, सो न हो और किसी दिन पूछ आना। इस समय जा।"

परेशके चले जाने पर नरेन्द्रने पूछा "आप नरेन्द्र बाबूकी खबर जानना चाहती हैं। वे कहाँ हैं, यही न?"

यदि अस्वीकार कर सकती तो विमला बच जाती, लेकिन उसे झूठ बोलनेका अभ्यास नहीं था। वह किसी प्रकार भीतरकी लज्जा दबाकर बोली "हाँ। -सो किसी और दिन जाननेसे भी चल जायगा।"

नरेन्द्रने पूछा "क्यों? कोई जरूरत है?"

प्रश्न उसके कानोंमें ठीक उपहास-सा सुनाई पड़ा। उसने कहा "जरूरतके बिना क्या कोई किसीकी खबर नहीं जानना चाहता?"

"कोई क्या चाहता है क्या नहीं, सो छोड़ दीजिए। परन्तु उससे तो आपका सारा सम्बन्ध खत्म हो गया; फिर क्यों उसका पता लगा रही हैं?—कर्ज क्या सब चुका नहीं?"

विमलाके मुखपर लज्जाका चिह्न दिखाई पड़ा, परन्तु उसने कोई उत्तर नहीं दिया। नरेन्द्र पर भी अपने भीतरका उद्वेग पूरी तरह छिपा नहीं सका-पुकारा बोला "यदि और भी कुछ कर्ज बाकी हो, तो मैं जहाँ तक जानता हूँ, उसके पास और कुछ ऐसी चीज नहीं है जिससे वह उसे चुका सके। इसलिए अब उसका पता लगाना—"

"किसने आपसे कहा कि मैं कर्जके लिए ही उसका पता लगा रही हूँ?"

"इसके अतिरिक्त और क्या मतलब हो सकता है, मैं तो नहीं सोच पाता। -वह भी आपको नहीं पहचानता और आप भी उसे नहीं पहचानतीं।"

"वे मुझको पहचानते हैं और मैं भी उनको पहचानती हूँ।"

नरेन्द्र हँसा। उसने कहा, "वह आपको पहचानता है, यह बात सच है, परन्तु आप उसे नहीं पहचानतीं। मान लीजिए, मैं ही यदि कहूँ कि मेरा नाम नरेन्द्र है, तो—"

विमलाने गर्दन हिलाकर कहा "तो मैं विश्वास करती हूँ और कहती हूँ, कि यह बात बहुत दिन पहले ही आपके मुखसे निकलनी चाहिए थी।"

फूँक मारकर रोशनी बुझाने पर कमरेकी सूरत जिस प्रकार बदल जाती है, विमलाके प्रत्युत्तरसे पलक मारते ही नरेन्द्रका मुँह उसी प्रकार मलिन हो गया। विमलाने उसे ही लक्ष्य करके कहा "अपना गलत परिचय देकर अपनी आलोचना सुनना और छुप-छिपकर कानोंसे सुनना दोनों ही काम क्या आपको इससे नहीं लगते? मुझे तो लगते हैं। क्योंकि हम लोग आदमी हैं।"

नरेन्द्रका मलिन मुँह इस बार एकदम लाल हो उठा। वह थोड़ी देर मौन रहकर बोला "आपके साथ अनेक प्रकारकी आलोचनाओंके साथ मेरी

भी आलोचना जरूर हुई थी, परन्तु उसमें मेरा कोई बुरा अभिप्राय नहीं था। मैंने सोचा था कि आखिरी दिन परिचय दे दूँगा, परन्तु दे नहीं सका, इससे आपका कोई नुकसान हुआ है क्या?"

पहले ही यह प्रश्न कर बैठनेपर इस ओरसे भी उत्तर देना अवश्य कठिन होता, परन्तु जो आलोचना एक बार शुरू हो जाती है वह अपनी झोंकमें अनेक कठिन स्थान अपने आप पार कर जाती है, इसलिए विजया सहज ही जवाब दे सकी। उसने कहा, "नुकसान तो कितने ही प्रकारका हो सकता है। परन्तु, यदि हुआ भी हो तो वह तो हो गया, अब आप उसका कुछ उपाय नहीं कर सकेंगे। इसलिए वह बात जाने दीजिए, पर आपके निजके सम्बन्धमें कोई बात जानना चाहूँ तो क्या—"

"नाराज होऊँगा?—नहीं।" कहते ही उसी क्षण प्रशान्त निर्मल हँसीसे उसका सारा मुँह उज्ज्वल हो उठा। इतने दिन इतनी बातचीत होनेपर भी इस व्यक्तिका जो परिचय विजयाने नहीं पाया, वह एक क्षणकी हँसी ही वह परिचय दे गई। मालूम हुआ कि इसका समस्त अन्तर-बाह्य एकदम स्फटिकके समान स्वच्छ है। जिस व्यक्तिने सर्वस्व ले लिया है, उसके सम्मुख भी उसकी 'नहीं' नहीं ही है; और ठीक इसीलिए जान पड़ता है कि वह उसके मुखकी तरफ आँख उठाकर और प्रश्न नहीं कर सकी; उसने गरदन नीची करके पूछा, "इस समय आप रहते कहाँ हैं?"

नरेन्द्र बोला, "यहाँके सम्बन्धकी एक बुआ इस समय भी जीवित हैं, उनके ही मकानमें रहता हूँ।"

"आपके सम्बन्धमें जो सामाजिक झगड़ा छिड़ा है, तो क्या उस गाँवके लोग नहीं जानते?"

"जानते क्यों नहीं हैं।"

"तब?"

नरेन्द्र थोड़ा-सा सोचकर बोला, "मैं जिस कमरेमें रहता हूँ, उसे ठीक मकानके-भीतर नहीं कहा जा सकता; और शायद मेरी अवस्था समझ-बूझकर भी कुछ दिनोंके लिए उनके लड़के आपत्ति नहीं करते। तो भी यह ठीक है कि ज्यादा दिन रहकर उन्हें परेशान करनेसे काम नहीं चलेगा।" कहकर वह थोड़ा-सा रुका, फिर बोला, "अच्छा अब तो बताइए, आप वह सब क्या क्यों बना रही थीं? पिताजीका और भी कुछ कर्ज निकल आया है? यही न?"

उत्तर देनेके लिए ही जान पड़ता है, विजयाने उसके मुँहकी तरफ देखा, परन्तु 'अच्छा हाँ'—या कोई भी बात उसके मुँहसे बाहर नहीं निकली।

नरेन्द्रने कहा "पिताका ऋण कौन नहीं चुका देना चाहता ! परन्तु आपसे सच कह रहा हूँ, अपने नामसे या पराये नामसे ऐसा कुछ भी मेरे पास नहीं है जिसे बेच दे सकूँ। केवल एक माइक्रोसकोप है। उसे भी अब बेचूँगा तब नहीं परन्तु चाहे कुछ सकेगा। बुआकी अवस्था भी खराब है,—यहाँ तक कि वहाँ खाना पीना तक—" कहकर वह सहसा रुक गया।

विजयाकी आँखोंमें आँसू आ गये; उसने चेहरा फिरा लिया।

नरेन्द्र बोला, "आप यदि दया करें तो मैं पिताजीका ऋण अपने नाम लिख दे सकता हूँ। भविष्यमें चुका देनेके लिए प्राणपणसे यत्न करूँगा। आप रासबिहारी बाबूसे ज़रा-सा कह देंगी तो फिर वे इस मामलेको लेकर इस समय मुझे ज्यादा तंग न करेंगे।"

पोलने आकर दरवाजेके बाहरसे कहा "माईजी, अम्मा बुलाती हैं, समय बहुत हो गया है, महाराजसे भात परोसनेको कह दें ?"

सामनेकी घड़ीकी तरफ देखकर नरेन्द्र चौंककर खड़ा हो गया और लज्जित होकर बोला "अरे बारह बज गये ! आपको बहुत कष्ट हुआ।"

विजयाने आँखोंके आँसू छिपा लिये थे, उसने कहा "आप किस लिए आये थे सो तो बताया ही नहीं !"

नरेन्द्र जल्दीसे बोला "उसे जाने दीजिए।" कहकर जानेका उपक्रम करते ही विजयाने पूछा "आपकी बुआका मकान यहाँसे कितनी दूर है ! इस समय वहीं तो जायँगे ?"

नरेन्द्रने कहा "हाँ। दूर तो थोड़ा है ही—लगभग दो कोस।"

विजया अवाक् होकर बोली "इस धूपमें आप दो कोस पैदल जाइएगा ! जाते जाते ही तीन बज जाएँगे—"

"सो बजने दीजिए, सो बजने दीजिए, नमस्कार।"

कहकर नरेन्द्रके पैर बढ़ाते ही विजया जल्दीसे दरवाजेके सामने जाकर खड़ी हो गई और बोली "आज मेरा एक अनुरोध आपको मानना होगा। इस समय बिना खाये आप किसी भी तरह नहीं जा सकते।"

नरेन्द्र अत्यन्त विस्मित होकर बोला "खाकर जाऊँगा ! यहीं !"

"क्यों, इससे क्या आपकी भी जात चली जायगी ?"

प्रत्युत्तरमें पुनः वैसी ही प्रशान्त हँसीसे उसका मुँह आलोकित हो उठा। उसने कहा, "नहीं दुनियामें अब यह डर मुझे नहीं रहा है। इसके अतिरिक्त भगवान मुझपर आज बहुत प्रसन्न हैं; नहीं तो इस समय आनेपर यहाँ खानेको क्या नसीब होता सो मैं ही जानता हूँ।"

११

भोजन प्रायः समाप्त होने आया। नरेन्द्रने कहा, "इतने समय तक स्वयं उपवास करके मुझे सामने बैठकर खिलानेकी तो कोई जरूरत नहीं थी। किसी देशमें यह चलन नहीं है।"

विजयाने हँसमुख होकर जवाब दिया, "पिताजी कहते थे उस देशका बड़ा दुर्भाग्य है जिस देशकी नारियाँ स्वयं बिना खाये पुरुषोंको नहीं खिला पातीं और जहाँ उन्हें साथ बैठकर खाना पड़ता है। मैं भी ठीक यही कहती हूँ।"

नरेन्द्रने कहा, "क्यों कहती हैं? दूसरे देशकी बात न हो, छोड़ ही दी जाय, परन्तु, अपने देशमें भी तो मैंने बहुतोंके घर खाया है, उनमें भी तो यह प्रथा चलते देखी है।"

विजयाने कहा, "विलायती चाल-चलन जिन्होंने सीखी है उनके मकानमें शायद यह चलती हो, परन्तु सबके यहाँ नहीं। आप तो परदेशमें बहुत दिन रहे हैं, इसीसे आप भूल करते हैं। नहीं तो हम पुरुषोंके सामने निकलती हैं, जरूरत पड़नेपर बातें भी करती हैं, फिर भी बिलकुल मेम साहब नहीं बन गई हैं, और उनकी चाल भी नहीं चलती हैं।"

नरेन्द्रने कहा, "न चलती हों, पर चलना तो उचित है। जिसमें जो अच्छी बात हो, उससे वह तो ले लेनी चाहिए।"

विजया बोली, "कौन-सी अच्छी बात है? एक साथ बैठकर खाना?" फिर उसने जरा-सा हँसकर कहा, "आप क्या जानें कि नारियोंका खिलाना और इस खिलानेमें रहता है! मैं तो अपनी नारी जातिके अनेक अधिकार छोड़नेको राजी हूँ, परन्तु यह नहीं,—अरे यह सारा दूध तो पड़ा ही रह गया!—ना सिर हिलानेसे काम नहीं चलेगा मैं बढ़ा देती हूँ। अभी आपका पेट नहीं भरा है।"

नरेन्द्र हँसकर बोला, "मेरा कितना पेट भरा है या नहीं यो भी आप बता देंगी! यह तो बड़ी अद्भुत बात है!" और उठ खड़ा हुआ। बात सुनकर

विमला इतर भी कुछ हँसी अवश्य परन्तु, उसके मुँहका भाव देखकर समझनेमें बाकी नहीं रहा कि यह इतना-सा दूध न पीनेके कारण क्षुब्ध हो गई है।

तीसरा पहर हो जानेपर विदा माँगते समय नरेन्द्र सहसा बोल उठा "एक बातसे आज मैं बड़े आश्चर्यमें पड़ गया हूँ। मुझे भूखमें आपने आगे नहीं दिया लिया खिलाये छोड़ा नहीं जरा-सा कम खाते देखकर भी आप दुखी हुईं—यह सब किस प्रकार सम्भव हुआ! सुनकर आप दुखी न होइएगा मैं व्यंग्य अथवा परिहास करनेके अभिप्रायसे नहीं कह रहा हूँ,—परन्तु, मैं तबसे केवल यही सोच रहा हूँ कि यह किस तरह सम्भव हुआ!"

विमला किसी उपायसे इस आपत्तिसे छुटकारा पानेके लिए तुरन्त बाधा डाल कर बोली "सभी घरोंमें ऐसा होता है। इस बातको जाने दीजिए, आप अब कितने दिनोंके भीतर वापस जाना चाहते हैं?"

नरेन्द्रने अन्यमनस्क भावसे कहा "परसों। परन्तु, मैं तो आपके लिए एकदम पराया हूँ मेरे दुःख-कष्टसे सचमुच ही तो आपका कुछ हानि-लाभ नहीं है, तो भी आपका आचरण देखकर बाहरका कोई नहीं कह सकता कि मैं आपका अपना व्यक्ति नहीं हूँ। कहीं मैं कम न खाऊँ, या खानेमें मामूली-सी भी त्रुटि न रह जाय इस डरसे आप दूर बिना खाये सामने बैठी रहीं। मेरे बहन नहीं है, माता भी बचपनमें मर गई हैं। ठीक नहीं जानता कि वे जीवित होतीं तो ऐसी ही व्याकुल होतीं या नहीं परन्तु आपकी यत्न-सेवा देखकर आश्चर्यमें अवश्य पड़ गया हूँ। तिसपर, यह यथार्थमें सच नहीं हो सकता यह भी मैं जानता हूँ, आप भी जानती हैं; बल्कि इसे सच कहनेमें आपका मजाक करना होगा—साथ ही झूठ कहना करनेकी भी इच्छा नहीं होती।"

विमला खिड़कीके बाहर ताक रही थी; उसने उसी ओर देखते हुए कहा "मक्खनसाहब नामकी एक वस्तु है, उसे क्या आपने और कहीं भी नहीं देखा?"

"मक्खनसाहब! नहीं होगी शायद।" कहकर सहसा उसके मुँहसे एक उसाँस निकल पड़ी। उसके बाद हाथ उठाकर और एक बार नमस्कार करके उसने कहा "जिस प्रकार भी हो पिपासीका सारा काम पूरा हुआ है, इससे मुझे बड़ी ही तृप्ति हुई है। आपके मन्दिरकी सिर्फ़ दिन और न हो। आपका दिन मुझे हमेशा याद रहेगा। मैं चला।" कहकर जब वह कमरेके बाहर निकल

नरेन्द्रके चाय खतम करके चले होनेपर, विजयाने मृदु वाणीसे पूछा " आपके माईक्रोस्कोपकी क्या कीमत है ?

नरेन्द्रने कहा 'खरीदनेमें पाँच सौ रुपयोंसे ज्यादा लगे थे पर इस समय दो ढाई सौ रुपये पानेपर भी मैं दे दूँगा। कोई ले सकता है ? आप जानती हैं ! एकदम नया है।"

लेनेका ऐसा आग्रह देखकर मन ही मन अत्यन्त व्यथित होकर विजयाने पूछा " इतने रुपयेमें दे दीजिएगा ? क्या आपका सब काम हो चुका है ? "

नरेन्द्र साँस छोड़कर बोला 'काम ? काम तो कुछ भी नहीं हुआ।"

यह साँस भी विजयाकी दृष्टिसे नहीं छिपी। वह क्षण-भर चुप रहकर बोली 'मेरी निजकी भी बहुत दिनोंसे खरीदनेकी साध है, परंतु खरीद नहीं सकी। आप क्या उसे एक बार दिखा सकते हैं ? '

" हाँ दिखा सकता हूँ। मैं उसे लाकर सब कुछ आपको दिखा जाऊँगा। "

फिर कुछ सोचकर बोला " सिखाई करनेका समय अवसर नहीं है, परन्तु मैं ठीक कह रहा हूँ, लेनेपर आप ठगी नहीं जायेंगी। '

फिर थोड़ी देर मौन रहकर कहा 'यह ऐसी चीज है कि इसका मूल्य रुपयोंसे नहीं आँका जा सकता। मेरे लिए और कोई उपाय ही नहीं है, नहीं तो—अपना देश छोड़नेके समय ले जाऊँगा।'

चले जानेपर वह जितनी देर तक दिखाई पड़ा विजया अपलक आँखोंसे देखती रही, उसके बाद लौटकर सामनेकी कुर्सीपर बैठ गई। कभी तो उसे ऐसा लगने लगा कि जितनी दूर दृष्टि जाती है—सब मानो खत्म हो गया है,—किसीसे भी मानो किसी दिन उसका प्रयोजन नहीं था कुछ भी मानो मरनेके समय तक उसके किसी काम नहीं आयगा। साथ ही उसके मनमें इनके लिए क्षोभ अथवा दुःख कुछ भी नहीं है। इस तरह शून्य दृष्टिसे बाहरके वृक्ष पौधोंकी ओर देखते और मूर्तिके समान स्तब्ध भावसे बैठे हुए, कैसे समय कट रहा है, इसका उसे ध्यान ही नहीं रहा। कब शाम बीत गई, कब नौकर दिया जला गया—उसे पता भी नहीं लगा। आखिर उसकी चेतना लौटी उसकी ही आँखोंके आँसुओंसे। तुरन्त उन्हें पोंछकर उसने हाथसे देखा अनजानेमें न जाने कबसे बूँद बूँद गिरते गिरते उसकी छातीका कपड़ा तक भीग गया है। छि छि ! नौकर-चाकर आये-गये हैं, शायद उन्होंने देख लिया हो—न जाने वे क्या सोचेंगे ! अनजानेके कारण प्रयोजन होनेपर भी वह किसीको अपने निकट नहीं बुला

गयी। वह रातको सिढ़ीपैपर बैठकर खिड़की खोलकर बाहरके अन्धकारमें वैसे ही देखती रही। वस्तु-रूपहीन धूम्र अन्धकारके समान अपना सारा भविष्यत् उसकी आँखोंके सामने नाचने लगा। उसके बाद वह कब सो गई पता नहीं परन्तु नींद जब टूटी तब प्रभातके स्निग्ध आलोकसे कमरा भर गया था। पहले ही उसे कभी रवण्टिका स्मरण आया जिसके साथ उसने जीवन भरमें तीन छः दिनसे अधिक बात नहीं की। और ख्याल आया कि जो अज्ञात देवता उसकी नींदमें भी विचरण करती फिरती थी उसके साथ न जाने कैसा उस व्यक्तिका गहिरा संयोग है।

दिन चढ़ने लगा। परन्तु, ज्यों ही ख्याल आता है कि सारे काम-काजोंमें न जाने कहाँ इसकी एक कौम और एक काम आज सारे दिनसे लगा है त्यों ही अपने प्रति उसे बड़ी घृणा मालूम होती है। परन्तु यह मामा कुछ भी नहीं है यह मानों केवल उस अवस्था देखनेके लिए ही मानस कुतूहल है, एक बार उसे देख लेनेपर सारे आग्रहकी निवृत्ति हो जायगी आज नहीं तो कल हो जायगी —इस प्रकार उसने अपने आपको अनेक बार समझाया परन्तु कोई नतीजा नहीं निकला; बल्कि समय व्यतीत होते साथ साथ उत्कण्ठा मानो रह रहकर आवेगके साथ आराम प्रकाश करने लगी। इसके दसवरका सूर्य धीरे धीरे एक ओर झुक गया आलोककी सूरतमें दिन ढलनेकी सूचना पाकर विच-लता हृदय विरत हो गया। जब जो व्यक्ति फिर मिलनेके लिए बार वादाकर चला जा रहा है आज वह यदि इतनी दूर न आ सके,—इतना समय नष्ट न कर सके तो इसमें आश्चर्य करनेकी कोई बात नहीं। वह यदि अपना अन्तिम सम्मान और किसीसे भी अधिक मूल्यमें बेचकर चला गया हो तो इसमें दोष आखिर उसे कौन देगा? अपनी आखिरी बातें वह बार बार उलट पलट कर आत्मन्त अनुतापके साथ याद करने लगी किसनमें मेरे भले ही हो पर मुँहसे तो मने इस सम्बन्धमें आग्रहकी अधिकता बिलकुल नहीं दिखाई। इससे ऐसी यदि

धृष्टता ने ही यदि उसने इशारा समझ दिया हो तो इस परिस्थितिमें

— लता मनके भीतरमें जो कठिन तिरस्कार बार

बार देकर भी नहीं रोक

सेके । आज

और भीतर-बाहर आ-जाकर जब किसी प्रकार भी उसका समय न कट रहा था तब परेशने कमरेमें आकर खबर दी, "भाभी नीचे आओ बाबू आये हैं।"

विभाका मुँह पीला पड़ गया। उसने कहा 'कौन-बाबू रे?'

परेशने कहा "कल जो आये थे। उनके हाथमें एक बड़ा भारी कमरेका बॉक्स है भाभी।"

"अच्छा तू बाबूको बैठनेको कह आ मैं आती हूँ।"

दो-तीन मिनटके बाद विभाने कमरेमें पहुँचकर नमस्कार किया। आज उसके पहिनावेमें माथेके कुछ रूखे बिखरे बालोंमें ऐसी एक विशेषता और सुन्दरता थी जो किसीकी भी दृष्टि नहीं बचा सकती थी। उसके साथ आजके इस भेदके कारण नरेन्द्रके मुँहसे बात ही नहीं निकल सकी। उसकी विस्मित दृष्टिका अनुसरण करके विभाकी भिन्नकी दृष्टि जब अपनी ओर फिर आई तब स्वयं शर्मके मारे वह मानो एकदम मिट्टीमें गड़ गई। माईक्रोस्कोपका कैमरा अभी तक उसके हाथमें था; उसे टेबुलपर रखकर उसने धीरेसे कहा 'नमस्कार। मैं जब विलायतमें था तब मैंने चित्र बनाना भी सीखा था। आपको तो मैंने कई बार देखा है, परन्तु आज आपके इस कमरेमें आते ही मेरी आँख खुल गई है। मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि कोई भी चित्र बनानेवाला हो आपको देखकर उसे आज लोभ हुए बिना न रहेगा। वाह क्या सौन्दर्य है!

विभाने मन ही मन समझ लिया कि यह सौन्दर्यके पद-मूलमें अकस्मात् मनकी यथार्थ-स्वाभाविक निर्दोष स्तुति अनजानमें ही उच्छ्वसित हो पड़ी है और ऐसी बात बस इनके ही मुँहसे निकल सकती है। परन्तु फिर भी वह यह न सोच सकी कि अपना आरक्त मुँह आखिर कहाँ छिपाए, अपनी देहकी सारी लाजलज्जाके साथ आखिर उसे किस प्रकार लुप्त कर दे। परन्तु क्षण-भर बाद ही अपनेको संवरण करके मुँह उठाकर गम्भीर स्वरसे उसने कहा "मुझे इस प्रकार अप्रतिभ करना क्या आपके लिए उचित है? इसके सिवा आपसे एक वस्तु खरीदूँगी भर कहकर ही तो आपको बुला भेजा था किस कीर्तिको कमानेके लिए तो बुलाया नहीं।" जवाब सुनकर नरेन्द्रका मुँह सूख गया। वह लज्जासे अत्यन्त संकुचित और दुःखित होकर अस्फुट कण्ठसे यह कहकर क्षमा माँगने लगा कि "मैंने कुछ भी सोचकर नहीं कहा मुझसे बड़ी भूल हो गई है। और कभी मैं—" इत्यादि इत्यादि। उसके अनुतापका परिणाम देखकर विभा हँस पड़ी। उसने किंचित् हँसीसे अपना मुँह उज्ज्वल करके कहा "कहाँ है देखूँ आपका यन्त्र?

गयी। वह रातको बिछौनेपर बैठकर खिड़की खोलकर बाहरके अन्धकारमें पैठे ही देखती रही। वस्तु-प्रभाहीन धूम्र अन्धकारके समान अपना सारा भविष्यत् उसकी आँखोंके सामने आने लगा। उसके बाद वह कब सो गई पता नहीं परन्तु नींद जब टूटी तब प्रभातके स्निग्ध आलोकसे कमरा भर गया था। जगते ही पहले उसी व्यक्तिका स्मरण आया जिसके साथ उसके जीवन भरमें पाँच छः दिनसे अधिक बात नहीं की। और स्मरण आया कि जो अज्ञात वेदना उसकी नींदमें भी विचरण करती फिरती थी उसके साथ न जाने कैसा उस व्यक्तिका घनिष्ठ संयोग है।

दिन चढ़ने लगा। परन्तु, ज्यों ही ख्याल आता है कि सारे काम-काजोंमें न जान कहाँ उसकी एक आँख और एक कान आज सारे दिनसे लगा है त्यों ही अपने प्रति बड़ी भारी शर्म मालूम होती है। परन्तु यह मानो कुछ भी नहीं है यह मानो केवल उस कन्याके देखनेके लिए ही मनका कुतूहल है एक बार उसे देख लेनेपर सारे आग्रहकी निवृत्ति हो जायगी आज नहीं तो कल हो जायगी—इस प्रकार उसने अपने आपको अनेक बार समझाया परन्तु कोई नतीजा नहीं निकला; बल्कि समय बढ़नेके साथ साथ उत्कण्ठा मानो रह रहकर आशंकाके साथ आपस प्रकाश करने लगी। दूसरे दोपहरका सूर्य धीरे धीरे एक ओर झुक गया आसमानकी सूरतमें दिन ढलनेकी सूचना पाकर विजयाका हृदय निराश हो गया। जब जो व्यक्ति चिर दिनके लिए यह छोड़कर चला जा रहा है आज वह यदि इतनी दूर न आ सके—इतना श्रम वह न कर सके तो इसमें आश्चर्य करनेकी कोई बात नहीं। वह यदि अपना अन्तिम सम्मान और किसीसे भी अधिक मूल्यसे बेचकर चला गया हो तो इसमें दोष आखिर उसे कौन देगा? अपनी आखिरी बातें वह बार बार उलट पलट कर अत्यन्त अनुतापके साथ याद करने लगी कि मनमें मेरे चाहे जो हो पर मुँहसे तो मैंने इस सम्बन्धमें आग्रहकी अधिकता बिलकुल नहीं दिखाई। इससे मेरी अनिच्छाकी कल्पना करके ही यदि उसने इरादा बदल दिया हो तो इस दाम्भिकाको उचित दण्ड ही मिला, कहकर उसके हृदयके भीतरसे जो कठिन तिरस्कार बार बार ध्वनित होने लगा उसका उत्तर विजया किसी ओर देखकर भी नहीं खोज सकी। परन्तु, परेशको या और किसीको भी किसी बहानेसे उनके पास भेजा जाय या नहीं और भेजनेपर भी वह उन्हें ढूँढ सकेगा या नहीं? आना भी स्वीकार करेंगे या नहीं,—ऐसे ही अनेक तर्क-वितर्क करके, छटपटाकर घड़ीकी तरफ देखकर

और भीतर-बाहर आ जाकर जब किसी प्रकार भी उसका समय न कट रहा था तब परेशने कमरेमें आकर खबर दी "माजी नीचे आओ बाबू आये हैं।"

विजयाका मुँह पीला पड़ गया। उसने कहा "कौन बाबू रे?"

परेशने कहा "कल जो आये थे। उनके हाथमें एक बड़ा भारी बक्सेका बॉक्स है माजी।"

"अच्छा तू बाबूको बैठनेको कह जा मैं आती हूँ।"

दो-तीन मिनट बाद विजयाने कमरेमें पहुँचकर नमस्कार किया। आज उसके पहिनावेमें मांगके कुछ बचे बिखरे बालोंमें ऐसी एक विशेषता और सुन्दरता थी जो किसीकी भी दृष्टि नहीं बचा सकती थी। कमरेके साथ बातके इस भेदके कारण नरेन्द्रके मुँहसे बात ही नहीं निकल सकी। उसकी विस्मित दृष्टिका अनुसरण करके विजयाकी लज्जित दृष्टि जब अपनी ओर फिर आई तब लज्जा-शर्मके मारे वह मानो एकदम मिट्टीमें गड़ गई। माईक्रोस्कोपका बेग अभी तक उसके हाथमें था; उसे टेबुलपर रखकर उसने धीरेसे कहा 'नमस्कार। मैं जब विलायतमें था तब मैंने चित्र बनाना भी सीखा था। आपको तो मैंने कई बार देखा है, परन्तु आज अचानक इस कमरेमें आते ही मेरी आँखें खुल गई हैं। मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि कोई भी चित्र बनानेवाला हो आपको देखकर उसे आज भ्रम हुए बिना न रहेगा। वाह क्या सौन्दर्य है!

विजयाने मन ही मन समझ लिया कि वह सौन्दर्यके पद-मूलमें अकस्मात् भक्तकी स्वार्थगन्धहीन निर्दोष स्तुति अनजानमें ही उपस्थापित हो पड़ी है और ऐसी बात केवल इनके ही मुँहसे निकल सकती है। परन्तु फिर भी वह यह न सोच सकी कि अपना आरक्त मुँह आखिर कहाँ छिपाए, अपनी इतनी सारी लाज-लज्जाके साथ आखिर उसे किस प्रकार छुप कर ले। परन्तु क्षण-भर बाद ही अपनेको संयत करके मुँह उठाकर गम्भीर स्वरसे उसने कहा "मुझे इस प्रकार अप्रतिभ करना क्या आपके लिए उचित है? इसके सिवा आपसे एक बात पूछूँगी, यह कहकर ही तो आपको बुला भेजा था चित्र अंकित करनेके लिए तो बुलाया नहीं!" प्रकार सुनकर नरेन्द्रका मुँह सूख गया। वह लज्जासे अत्यन्त संकुचित और कुण्ठित होकर अस्फुट कण्ठसे यह कहकर क्षमा माँगने लगा कि "मैंने कुछ भी सोचकर नहीं कहा मुझसे बड़ी भूल हो गई है। और कभी भी—" इत्यादि इत्यादि। उसके अनुतापका परिणाम देखकर विजया हँस पड़ी। उसने स्निग्ध हँसीसे अपना मुँह उज्ज्वल करके कहा "कहाँ हैं देखूँ आपका यन्त्र!"

नरेन्द्र भी गया । " अभी लीजिए, दिखाता हूँ " कहकर वह तुरन्त आगे बढ़कर अपना बॉक्स खोलने लगा । बैठनेके इस कमरेमें प्रकाश कम होता जा रहा था । यह देखकर विमलाने बगलका कमरा दिखाकर कहा " उस कमरेमें इस समय भी प्रकाश है चलिए, वहीं चलें । "

अच्छी बात है, चलिए " कहकर बॉक्स हाथमें लेकर गृहस्वामिनीके पीछे पीछे बगलके कमरेमें आ उपस्थित हुआ । एक छोटी-सी तिपाईपर यन्त्रको रखकर दोनों व्यक्ति दो तरफ दो कुर्सियाँ लेकर बैठ गये । नरेन्द्रने कहा " लीजिए अब देखिए । उपयोग किस प्रकार किया जाता है, यह मैं बादमें सिखा दूँगा ।

इस अनुवीक्षण यन्त्रको जिन्होंने अपनी आँखोंसे नहीं देखा वे कल्पना भी नहीं कर सकते कि कितना बड़ा विस्मय इस छोटी-सी वस्तुके भीतरसे देखा जा सकता है । बाहरके असीम ब्रह्माण्डके ही समान एक सीमाहीन ब्रह्माण्ड मनुष्य अपनी तुच्छ मुट्ठीके भीतर पकड़कर रख सकता है, इसका आभास केवल इस यन्त्रकी सहायतासे मिल सकता है । केवल इसकी भूमिका बाँधकर ही उसने विमलाका मनोयोग आकृष्ट किया । विलायतमें डाक्टरी सीख चुकनेके बाद उसकी ज्ञान-पिपासा इसी जीवाणु-तत्त्वकी ओर बढ़ी थी । इसीसे एक ओर जिस प्रकार इस तत्त्वसे उसका परिचय अत्यन्त घनिष्ठ हो गया था उसी प्रकार उसका संग्रह भी अस्वाभाविक हो गया था । उस समय भी वह अपने [illegible] प्रामाणिक यन्त्रके साथ विमलाको दिखानेके लिए साथ ले आया था । उसने सोचा था यह सब न देखनेसे केवल यन्त्र लेकर ही भला किसीको क्या काम होगा ? पहले तो विमलाने कुछ भी नहीं देख पाया —उसे केवल धुँधला और अस्पष्ट-सा कुछ दिखा । नरेन्द्र जितने ही आग्रहसे पूछता था कि क्या देख रही हो उसे उतनी ही हँसी आती थी । उस ओर उसकी चेष्टा भी नहीं थी, मनोयोग भी नहीं था । नरेन्द्र प्राणपणसे समझानेकी चेष्टा कर रहा था कि इसे इस तरह देखना चाहिए । देखना सहज कर देनेके लिए वह प्रत्येक कल-पुरजेको अनेक प्रकारसे घुमा फिरा कर यथाविधि यत्न कर रहा था, परन्तु देखे कौन ! जो समझा रहा था उसके कण्ठस्वरसे दूसरे व्यक्तिका अभ्यन्तर खोल खोल उठता था, प्रबल निःश्वाससे उसके बिखरे बाल उड़ उड़कर उसके सर्वांगको कम्पित कर रहे थे, हाथ हाथोंसे टकराकर उसकी देहको अवश किये दे रहे थे — अमल यह देखनेसे उसका मना आता-जाता था कि जीवाणुकी तरफ देखके

भीतर क्या है और क्या नहीं है !—कौन मलेरियाके जीव उत्पात रहा है और कौन तपेदिकके घर पूरे कर रहा है, इसकी जानकारीसे भी उसको क्या काम ?—जान लेनेपर भी तो वह उनका निवारण कर नहीं सकेगी वह तो कोई डाक्टर नहीं है। कोई दस मिनट तक बकवास और माथापच्ची करके आखिर नरेन्द्र अत्यन्त विरक्त होकर उठ बैठा। उसने कहा "जाइए, यह आपका काम नहीं है। ऐसी मोटी बुद्धि मैंने तो अपनी जिन्दगीमें देखी नहीं।"

विजयाने प्राणपणसे हँसी दबाकर कहा "मोटी बुद्धि मेरी है या आप समझा नहीं सकते हैं ?"

अपनी कड़ी बातसे नरेन्द्रने मन ही मन लज्जित होकर कहा "और कैसे समझाऊँ बोलिए ! सचमुचमें आपकी बुद्धि मोटी नहीं है, परन्तु, मुझे निश्चित रूपसे जान पड़ रहा है कि आप मन नहीं लगा रही हैं। मैं तो बकवास कर करके मर रहा हूँ, और आप खुर्दबीनमें आँख लगाये मुँह नीचा किये सिर्फ हँस रही हैं।"

"किसने कहा, मैं हँसती हूँ ?'

मैं कहता हूँ।"

"आपकी भूल है।"

मेरी भूल ? अच्छा मान लिया, लेकिन यन्त्र तो आखिर भूल नहीं है उसमेंसे फिर क्यों नहीं देख पाती ?"

'आपका यन्त्र खराब है, इससे।"

नरेन्द्र बिलकुल नाराज़ होकर बोला "खराब ! आप जानती हैं, इस प्रकारका पावरफुल माइक्रोस्कोप इस देशमें ज्यादा आदमियोंके पास नहीं है। इसमें इतना साफ दिखता—"

यह कहकर और फिर अपनी आँखसे एक बार जाँच लेनेको अत्यन्त व्यग्रतासे ज्यों ही वह नीचेको झुका त्यों ही उसका सिर विजयाके सिरसे टकरा गया।

उफ् करके विजया सिर दबाकर हाथसे सहलाने लगी। नरेन्द्र अप्रतिभ होकर कुछ बोलना ही चाहता था कि उसने खिलखिलाकर कहा "सिर टकरा देनेसे क्या होता है, जानते हैं ? सींग निकलते हैं।"

नरेन्द्र भी हँस पड़ा। उसने कहा "निकलते हों तो आपके सिरमें ही उनका निकलना उचित है।"

"और नहीं तो क्या ! आपके इस पुराने टूटे यन्त्रको मैंने अच्छा नहीं कहा इसलिए मेरा सिर सींग निकलने योग्य हो गया !"

नरेन्द्र हँसा अवश्य पर उसका मुँह सूख गया। उसने गरदन हिलाकर कहा, "आपसे सच कहता हूँ, मगर टूटा नहीं है। मेरे पास कुछ है नहीं इसलिए आपको सन्देह हो रहा है कि मैं उधार रुपये लेनेका यत्न कर रहा हूँ, परन्तु [illegible] बार बादको देखियेगा।"

विमलाने कहा, "बादको देखकर क्या करूँगी बोलिए। उस समय मैं आपको कहाँ पाऊँगी?"

नरेन्द्रने खिन्न स्वरसे कहा, "तो आपने क्यों कहा कि आप देंगी? मुझे क्यों व्यर्थ शर्मिन्दा किया?"

विमला गम्भीर भावसे बोली, "उस समय आप ही आखिर क्यों नहीं बोले कि वह टूटा है?"

नरेन्द्र अत्यन्त विरक्त होकर बोल उठा, "मैं सौ सौ बार कह चुका, टूटा नहीं है, तो भी आप कहे जा रही हैं टूटा है।"

परन्तु दूसरे ही क्षण क्रोध संवरण करके वह खड़ा हो गया और बोला, "अच्छा, यही ठीक है। मैं और तर्क नहीं करना चाहता—वह टूटा ही सही। आपने मेरा केवल इतना ही नुकसान किया कि अब कल मेरा जाना नहीं हो सकेगा। परन्तु सब आपके ही समान अन्धे नहीं हैं। आप समझ रखिए कि कलकत्तेमें मैं इसे लाख ही बेच सकता हूँ। अच्छा, चल दिया—" कहकर वह यन्त्रको बाक्समें रखनेका उद्योग करने लगा।

विमला गम्भीर भावसे बोली, "इस समय कैसे जाइएगा? अब तो खाकर ही जाना हो सकेगा।"

"नहीं, उसकी जरूरत नहीं है।"

"जरूरत क्यों नहीं है?"

नरेन्द्रने मुँह उठाकर कहा, "आप तो मन ही मन हँस रही हैं। क्या मेरा परिहास कर रही हैं?"

"कल जब खानेको कहा था, तब क्या मैंने परिहास किया था? सो नहीं होगा, आपको खाकर ही जाना होगा। जरा-सा बैठिए, मैं अभी आती हूँ।" कहकर विमला हँसी दबाये सारे कमरेमें अपने रूपकी तरङ्ग प्रवाहित करती [illegible] बाहर निकल गई। लगभग पाँच मिनटके बाद ही वह अपने हाथमें मोहनभोग थाल और [illegible] खाना खानेका सामान लिये वापस आ गई। मिठाई वाली [illegible] आपने इसे मेज पर रख दिया

नरेन्द्रने उदास कण्ठसे जवाब दिया "आप नहीं कीजियेगा, इसमें भारामी किस बातकी? परन्तु भोजनकर तो चलिए, इतनी बड़ी भारी चीज अभी दूर लादकर लाने और ले जानेमें कितना कष्ट है।"

थालीको टेबुलपर रखकर विजयाने कहा "सो हो सकता है, परन्तु कष्ट मेरे लिए तो आपने किया नहीं किया है अपने लिये। अच्छा, बैठिए, मैं चाय तैयार कर दूँ।"

नरेन्द्रको मौन देखकर उसने दुबारा कहा "अच्छा न हो मैं ही ले लूँगी आपको लादकर नहीं ले जाना पड़ेगा। आप खाना आरम्भ कीजिए।"

नरेन्द्र अपनेको अपमानित समझकर बोला, "आपसे दया करनेका अनुरोध तो मैंने किया नहीं।"

विजयाने कहा, "परन्तु उस दिन तो किया था जिस दिन आप मामाकी ओरसे बात करने आये थे।"

"वह दूसरेके लिए था अपने लिए नहीं। यह अभ्यास मुझे नहीं है।"

बात यहाँ तक सच है, विजयासे अज्ञात नहीं। इसी कारण उसका मन कचोट उठा। उसने कहा "जो भी हो, उसे आपको वापस नहीं ले जाना होगा। यह यहीं रहेगा। अच्छा खाने बैठिए।"

नरेन्द्रने मलिन स्वरसे पूछा "इसका मतलब?"

विजया बोली, "मतलब कुछ तो है ही।"

जवाब सुनकर नरेन्द्र क्षण भर स्तब्ध हो रहा। जान पड़ता है उसने मन ही मन इसके कारणका पता लगा लिया और दूसरे ही क्षण सहसा अत्यन्त क्रुद्ध होकर कह दिया, "यह क्या है सो मैं आपसे साफ साफ सुनना चाहता हूँ। आप क्या इस खुर्दबीनके बहाने मुझको अपने पास ही रख रखना चाहती हैं? इसे भी क्या पिताजी आपके पास बन्धक रख गये थे? तब तो मैं देखता हूँ कि आप मुझे भी रोककर रख सकती हैं। शायद ही कह सकती हैं कि पिताजी मुझे भी आपके निकट बन्धक रख गये हैं।"

विजयाका मुँह लाल हो उठा। उसने गरदन फिराकर कहा, "कालीपद, तू यहाँ खड़ा खड़ा क्या कर रहा है? यह सब रखकर जा और पान ले आ।"

नौकर थाली आदि टेबुलके एक किनारे रखकर चला गया। विजया चुपचाप नीचा मुँह किये चाय बनाने लगी और नरेन्द्र निकट ही कुर्सीपर क्रोधके मारे रुँआसा मुँह बनाये बैठा रहा।

नरेन्द्र हँसा अवश्य पर उसका मुँह सूख गया। उसने गरदन हिलाकर कहा "आपको सच कहता हूँ, वह टूटा नहीं है। मेरे पास कुछ है नहीं इसलिए आपको सन्देह हो रहा है कि मैं ठगकर उसे फैंसेल कर रहा हूँ, परन्तु इसे आप बादको देखिएगा!'

विमलाने कहा "आपको देखकर क्या करूँगी बोलिए? उस समय मैं आपको कहाँ पाऊँगी?

नरेन्द्रने स्थिर स्वरसे कहा तो आपने क्यों कहा कि आप लेंगी? मुझे क्यों व्यर्थ कष्ट दिया?'

विमला गम्भीर भावसे बोली उस समय आप ही आखिर क्यों नहीं बोले कि वह टूटा है?"

नरेन्द्र अत्यन्त विरक्त होकर बोल उठा मैं सौ सौ बार कह चुका टूटा नहीं है, तो भी आप कहे जा रही हैं टूटा है।

परन्तु दूसरे ही क्षण क्रोध संवरण करके वह शान्त हो गया और बोला, अच्छा यही ठीक है। मैं और तर्क नहीं करना चाहता—वह टूटा ही सही। आपने मेरा केवल इतना ही नुकसान किया कि अब कल मेरा जाना नहीं हो सकेगा। परन्तु सब आपके ही समान अन्धे नहीं हैं। आप समझ रखिए कि कलकत्तेमें मैं इसे सहज ही बेच सकता हूँ। अच्छा चल दिया—" कहकर वह बन्दूकको बाक्समें रखनेका उद्योग करने लगा।

विमला गम्भीर भावसे बोली, इस समय कैसे जाइएगा? अब तो खाकर ही जाना हो सकेगा।'

नहीं उसकी जरूरत नहीं है।'

जरूरत क्यों नहीं है?"

नरेन्द्रने मुँह उठाकर कहा आप तो मन ही मन हँस रही हैं। क्या मेरा परिहास कर रही हैं?"

कल जब जानेको कहा था तब क्या मैंने परिहास किया था? सो नहीं होगा आपको खाकर ही जाना होगा। जरा-सा बैठिए, मैं अभी आती हूँ। कहकर विमला हँसी दबाये सारे कमरेमें अपने रूपकी तरङ्ग प्रवाहित करती हुई बाहर निकल गई। लगभग पाँच मिनटके बाद ही वह अपने हाथमें मोहनभोग थाल और नौकरके हाथ आचमनका सामान लिये वापस आ गई। तिपाई खाली देखकर उसने कहा इतनी ही देरमें आपने इसे बन्द करके रख दिया

नरेन्द्रने उदास कण्ठसे जवाब दिया, "आप नहीं लीजिएगा, इसमें नाराजी किस बातकी! परन्तु सोचकर तो देखिए, इतनी बड़ी भारी चीज इतनी दूर लादकर लाने और ले जानेमें कितना कष्ट है!"

थालीको ढँककर रखकर विजयाने कहा, "सो हो सकता है, परन्तु वह मेरे लिए तो आपने किया नहीं, किया है अपने लिये। अच्छा खाने बैठिए, मैं चाय तैयार कर दूँ।"

नरेन्द्रको अवाक् देखकर उसने पुकारा कहा, "अच्छा, न हो मैं ही ले लूँगी आपको कष्ट कर नहीं ले जाना पड़ेगा। आप खाना आरम्भ कीजिए।"

नरेन्द्र अपनेको अपमानित समझकर बोला, "आपसे दया करनेका अनुरोध तो मैंने किया नहीं!"

विजयाने कहा, "परन्तु उस दिन तो किया था जिस दिन आप मामाकी ओरसे बात करने आये थे।"

"वह दूसरेके लिए था अपने लिए नहीं। यह अभ्यास मुझे नहीं है।"

बात कहाँ तक सच है विजयासे अज्ञात नहीं। इसी कारण उसका मन कठोर उठा। उसने कहा, "जो भी हो, उसे आपको वापस नहीं ले जाना होगा। यह यहीं रहेगा। अच्छा खाने बैठिए।"

नरेन्द्रने सन्दिग्ध स्वरसे पूछा, "इसका मतलब?"

विजया बोली, "मतलब कुछ तो है ही।"

जवाब सुनकर नरेन्द्र क्षण-भर स्तब्ध हो रहा। जान पड़ता है उसका मन ही मन इसके अन्दरका अर्थ लगा लिया और दूसरे ही क्षण सहसा अत्यन्त क्रुद्ध होकर कह दिया, "यह क्या है सो मैं आपसे साफ साफ सुनना चाहता हूँ। आप क्या इसे गरीबीके बहाने मँगाकर अपने पास ही रोक रखना चाहती हैं? इसे भी क्या पिताजी आपके पास बन्धक रख गये थे? तब तो मैं देखता हूँ कि आप मुझे भी रोककर रख सकती हैं। शायद ही कह सकती हैं कि पिताजी मुझे भी आपके निकट बन्धक रख गये हैं।"

विजयाका मुँह लाल हो उठा; उसने गरदन फिराकर कहा, "कालीपद तू यहाँ खड़ा खड़ा क्या कर रहा है? यह सब रखकर जा और चाय ले आ।"

नौकर थाली आदि टेबुलके एक किनारे रखकर चला गया। विजया चुपचाप नीचा मुँह किये चाय बनाने लगी और नरेन्द्र निकट ही कुर्सीके ऊपर बोलके

१२

सृष्टि-रचना जो अनोखा व्यापार है, उसके सम्बन्धमें विजयाने बड़े बड़े पण्डितोंके मुँहसे अनेक चर्चाएँ और अनेक व्याख्याएँ सुनी हैं; परन्तु उसका जो गूढ़ भेद है वह कहाँ आरम्भ हुआ है उसका क्या अर्थ है क्या आदमी प्रकृति है, क्या इतिहास है, या ऐसी ही और सुन्दर भाषामें कहते सुनने और कभी सुना है यह उसे याद नहीं आता। जिस जगहसे वह अभी दूध लेकर उपहास कर रही थी उसकी ही सहायतासे कैसे कैसे अपूर्व और अद्भुत व्यापार सबके दृष्टिगोचर हुए। इस पुस्तक और पत्रोंकी किसमके व्यक्तिने डाक्टरी पास की होगी यह भी तो विश्वास नहीं होता। परन्तु सिर्फ यही नहीं औरतोंके सम्बन्धमें उसके ज्ञानकी गहराई, विचारकी दृढ़ता और स्मरण रखनेकी असाधारण शक्तिके परिचयसे भी वह चमत्कृत हो गई। साथ ही उसने देखा कि मामूली आदमियोंकी तरह उसे नाराज कर देना भी कितना सहज है। वह कितनी ही बातें सुन रही थी और कितनी ही उसके कानोंमें प्रवेश भी नहीं कर रही थीं। वह केवल मुँहकी ओर ताकती चुपचाप बैठी थी। जिस समय वक्ता अपनी धुनमें बकता जा रहा था श्रोता सम्भवतः उस समय उसके त्याग उसकी साधना उसकी सरलताकी बात मन ही मन सोच कर स्नेह श्रद्धा और भक्तिसे विभोर हो रहा था।

सहसा नरेन्द्रकी दृष्टिमें पड़ गया कि वह व्यर्थ ही बक रहा है। उसने कहा, "आप कुछ भी नहीं सुन रही हैं!"

विजया लज्जित होकर बोली "सुन तो रही हूँ।"

"क्या सुन रही हैं? बोलिए।"

"वाह! एक दिनमें ही आप क्या है सब कुछ सीख लिया जाता है!"

नरेन्द्रने हताश भावसे कहा "नहीं आप कुछ नहीं सीख सकेंगी। आपके समान अन्यमनस्क व्यक्ति मैंने इस जन्ममें नहीं देखा।"

विजया—क्षण-भर भी अप्रतिभ हुए बिना बोली "एक दिनमें ही शायद आदमी सब कुछ सीख सकता है! आपने भी क्या एक दिनमें सीख लिया था?"

नरेन्द्र हो हो करके हँस उठा और बोला "आप तो यह दो वर्षमें भी नहीं सीख सकेंगी। इसके अतिरिक्त यह सब सिखाएगा ही आखिर कौन?"

विजयाने होंठ दबाकर हँसते हुए कहा "आप। नहीं तो फिर यह टूटा हुआ यन्त्र देगा कौन?"

नरेन्द्रने गम्भीर होकर कहा, " आपको न इसे सीखनेकी ज़रूरत है, और न मैं सिखा ही सकूँगा।"

" तो फिर चित्र अंकित करना सिखा दीजिए। वह तो सीख सकूँगी ?"

नरेन्द्र उत्तेजित होकर बोला, " सो भी नहीं सीख सकेंगी। जिसे देखते देखते मनुष्यको खाने-पीनेकी भी सुध नहीं रहती, उसीमें जब आप मन नहीं लगा सकीं, तब मन लगाकर चित्र अंकित करनेमें ? नहीं, किसी तरह नहीं लगा सकतीं।"

" तो फिर चित्र खींचना भी न सीख सकूँगी ?"

" नहीं।"

विजयाने बनावटी गम्भीरताके साथ कहा, " कुछ भी न सीख सकनेपर तो सिरमें सींग निकल आयेंगे !"

उसके मुँहके भाव और उसकी बातसे नरेन्द्र फिर ठहाका मारकर हँस पड़ा। उसने कहा, " वही आपके लिए उचित दण्ड होगा।"

विजयाने मुँह फिराकर हँसी छिपाकर कहा, " ज़रूर। यही क्यों नहीं कहते कि आपमें सिखानेकी क्षमता ही नहीं है ?—परन्तु, नौकर चाकर क्या कर रहे हैं, उन लोगोंने रोशनी क्यों नहीं की ?—आप ज़रा बैठिए, मैं दिया जलानेको कह आऊँ।" यह कहकर और कुर्सीसे उठकर उसने द्वारका पर्दा हटाया ही था कि वह एकाएक इस तरह थम रही जैसे कोई भूत दिख गया हो। देखा कि सामने ही बैठकके कमरेमें दो कुर्सियोंपर दखल जमाये पिता और पुत्र रासबिहारी और विलासबिहारी बैठे हैं। देखा कि विलासके मुँहपर किसीने मानो स्याही पोत दी है। विजयाने अपनेको सँभाल करके आगे बढ़कर पूछा, " आप कब आये काकाजी ? मुझे आपने बुलाया क्यों नहीं ?"

रासबिहारीने सूखी हँसी हँसकर कहा, " लगभग आधा घण्टा हुआ बेटी, तुम बातचीतमें मशगूल थीं, इसलिए नहीं बुलाया। यह शायद जगदीशका लड़का है ? क्या चाहता है ?"

विजया इस तरह धीरेसे बोली कि बगलके कमरेतक आवाज़ न पहुँचे, " एक माइक्रोस्कोप बेचकर बरमा जाना चाहते हैं। उसे ही दिखा रहे थे।"

विलास मानो गरज उठा, " माइक्रोस्कोप ! ठगनेके लिए उसे और कोई जगह नहीं मिली ?"

रासबिहारी भर्त्सनाके भावसे बोले, " ऐसी बात क्यों कहते हो विलास, हम लोग उसका उद्देश्य नहीं जानते—यह अच्छा भी तो हो सकता है।"

उन्होंने विजयाके मुँहकी तरफ ताककर ज़रा-सी हँसीके साथ गरदन हिलाकर फिर कहा, "जो ज्ञान नहीं, उसके सम्बन्धमें मतामत प्रकट करना मैं उचित नहीं समझता। उसका कोरस बुरा नहीं भी हो, क्या कहती हो बेटी?" ज़रा ठहरकर फिर कहा, "यह भी ठीक है कि ज़ोर देकर कुछ भी नहीं कहा जा सकता। पर वह चाहे जो हो, उसकी हमें ज़रूरत क्या है? दूरबीन होता तो वह शायद चन्द्र-नक्षत्र दूरी-करी देखनेके काममें आ भी सकता था।—अरे कौन है, कालीपद? इस कमरेमें रोशनी करने आ रहा है? तो वहीं खड़े हुए बाबूसे कह आना कि हम लोग नहीं खरीदेंगे—वे जा सकते हैं।"

विजया डरते डरते बोली, "मैंने तो उनसे कह दिया है कि लूँगी।"

रासबिहारीने कुछ आश्चर्यमें पड़कर कहा, "क्यों लोगी? उसकी क्या आवश्यकता है?"

विजया मौन रही।

रासबिहारीने पूछा, "कितनी कीमत माँगता है?"

"दो सौ रुपये।"

रासबिहारीने दोनों आँखें फैलाकर कहा, "दो सौ? दो सौ रुपये चाहता है? तब तो फिर विलासने ठीक कहा—क्या कहते हो विलास, कालेजमें तुम लोगोंने तो एफ० ए० क्लासमें पढ़ते समय इन सब चीज़ोंको काफी देखा-सुना, उलटा-पलटा है—दो सौ रुपए एक माइक्रोस्कोपकी कीमत?—कालीपद, जा उनसे जानेको कह दे—यह सब चालबाजी यहाँ नहीं चलेगी।"

परन्तु जिससे कहना था, वह तो अपने कानोंसे सब कुछ सुन रहा था, इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं। कालीपदको जानेके लिए तैयार देखकर विजयाने उससे शान्त, स्थिर स्वरसे कह दिया, "तुम सिर्फ रोशनी करके चले जाओ, जो कुछ कहना है मैं खुद कह दूँगी।"

विलासने अपने पितासे व्यंग करके कहा, "बाबूजी, तुम व्यर्थ ही क्यों अपना अपमान कराते हो? उन्हें शायद अभी कुछ और देख लेना बाकी है।"

रासबिहारी तो कुछ नहीं बोले, परन्तु क्रोधसे विजयाका मुँह लाल हो उठा। विलास उसपर लक्ष्य करके भी कह बैठा, "मैंने भी अनेक तरहके माइक्रोस्कोप देखे हैं बाबूजी, मगर किसीमें भी दो सौ रुपयेकी कोई बात नहीं पाई।"

इनके खाना खानेकी बात भी वह जान गया था और आसन उठाकर देखना भी उसने अपने कानोंसे सुना था। विजयाकी आजकी वेष-भूषाकी

सवालात भी उसकी दृष्टिसे छिपी न थी। ईर्ष्याके विषसे वह इस तरह भर रहा था कि अब उसे शिष्टाशिष्टका ज्ञान नहीं रहा। विजयाने उसकी तरफ बिलकुल पीठ फिरा ली और रासबिहारीसे कहा — "मुझसे आपको क्या कोई खास बात करनी है काकाजी?"

कोई देख न ले इस तरह लड़केके प्रति एक क्रुद्ध कटाक्ष फेंककर रासबिहारीने सस्मित कण्ठसे कहा — बात तो अवश्य करनी है बेटी, लेकिन उसके लिए जल्दी क्या है?

फिर कुछ ठहरकर कहा "और, मैंने सोचकर देखा कि उसे बात जब दे दी है तब चाहे जो हो उसे देना ही होगा। दो सौ रुपये ज्यादा हैं या बातकी कीमत ज्यादा है? न हो तो उसे कल आकर रुपये ले जानेको कह दो बेटी।

विजयाने इस प्रश्नका उत्तर दिये बिना ही पूछा — आपसे क्या कल बातें नहीं हो सकतीं काकाजी?

रासबिहारीने कुछ विस्मित होकर कहा — क्यों बेटी?"

विजयाने क्षण भर स्थिर रहनेके बाद हृदय-क्षोभको बलपूर्वक रोककर कहा — रात हुई जा रही है, उन्हें बहुत दूर जाना है। उनसे मुझे कुछ बातें भी करनी हैं।

उसकी इस गुस्ताखीसे भरी हुई स्पर्धासे उनका मन ही मन लज्जित हो जानेपर भी बाहर अणुमात्र भी कुछ प्रकट नहीं होने दिया। दृष्टि उठाकर देखा कि लड़केकी छोटी छोटी दोनों आँखें अन्धकारमें हिंस्र पशुके समान चमचमा रही हैं और वह कुछ कह बैठनेकी चेष्टाके साथ मानो युद्ध कर रहा है। धूर्त रासबिहारीने अवस्थाको पलक मारते ही समझ लिया और उसे इशारेसे रोककर प्रफुल्ल हँसमुख होकर कहा — अच्छा तो है बेटी, मैं कल सबेरे ही फिर आ जाऊँगा।—विलास, अँधेरा हुआ जा रहा है बेटा, चलो हम अब चलें।" कहकर वे उठ खड़े हुए और लड़केकी बाँह हाथसे खींचकर उसके अवरुद्ध दुर्दमनीय क्रोधके फटकर बाहर निकलनेके पहले ही उसे साथ लेकर बाहर निकल गये।

विजयाने अब तक विलासकी ओर बिलकुल नजर नहीं डाली थी। इसलिए उसके मुँहका भाव और आँखोंकी दृष्टि उसके अगोचर रही; फिर भी मन ही मन सब कुछ अनुमान करके वह बहुत देर तक काठवत् खड़ी रही।

इस कमरेमें दिया जलानेके लिए आनेपर कालीपदने कहा — "इस कमरेमें बत्ती जला जाता हूँ मामी।"

"अच्छा!" कहकर विजया अपनेको संयत करके दूसरे ही क्षण दरवाजेका परदा हटाकर धीरेसे कमरेमें आ पहुँची। नरेन्द्र मरहम लोशी लिये हुए कुछ सोच रहा था, वह उठ खड़ा हुआ। उसकी निःश्वास दबानेकी व्यर्थ चेष्टा भी विजयाके निकट पकड़ाई दे गई। थोड़ी देर चुप रहकर नरेन्द्रने हाथके साथ कहा — "इसे मैं साथ ही लिये जाता हूँ। आपका आजका दिन बहुत खराब बीता। क्या जाने आप किसका मुँह देखकर सवेरे उठी थीं। आपसे मैंने भी अनेक अप्रिय कहीं और वे लोग भी कह गये।"

विजयाके मनके भीतर उस समय भी आग जल रही थी, मुँह ऊँचा करके देखते ही उसके अन्तरकी ज्वाला दोनों आँखोंमें दीप्त हो उठी; उसने अविचलित कण्ठसे कहा — "मैं चाहती हूँ कि उसका मुँह देखकर ही रोज मेरी नींद टूटे! आपने सारी बातें अपने कानोंसे सुन ली हैं, इसलिए ही कहती हूँ कि आपके सम्बन्धमें उन लोगोंने जो असम्मानकी बातें कही हैं, वह सब उनकी अनधिकार चेष्टा है। मैं कल उन्हें यह समझा दूँगी।"

अतिथिके असम्मानसे उसे कैसी चोट लगी नरेन्द्रने यह समझ लिया। उसने शान्त सहज भावसे कहा — "आवश्यकता क्या है? इन सब वस्तुओंके संबंधमें वे लोग कुछ जानते नहीं इसीलिए उन्हें सन्देह हुआ है नहीं तो मेरा अपमान करनेमें उनको कोई लाभ नहीं है। आपको स्वयं भी तो पहले अनेक कारणोंसे सन्देह हुआ था सो क्या असम्मान करनेके लिए? वे लोग आपके आत्मीय हैं, शुभाकांक्षी हैं, मेरे कारण उन्हें दुखी मत कीजियेगा! लेकिन अब रात हुई जा रही है,—मैं चलता हूँ।"

"कल या परसों एक बार आ सकियेगा?"

"कल या परसों? परन्तु, अब तो समय नहीं मिलेगा। कल मैं जा रहा हूँ। यद्यपि कल ही बरमा जाना न हो सकेगा, कलकत्तेमें भी कुछ दिनों ठहरना पड़ेगा लेकिन दुबारा मिलनेका—"

विजयाकी दोनों आँखें आँसुओंसे डबडबा आईं, वह मुँह न उठा सकी, न बात ही कर सकी। नरेन्द्र खुद ही कुछ हँस पड़ा और बोला — "आप खुद इतना हँसा सकती हैं और आप ही इतनी मामूली बातसे इतना नाराज हो गईं! मैं ही बल्कि एक बार बिगड़कर आपको थोड़ी दुर्बुद्धि और न जाने क्या क्या कह

कहा । परन्तु, उससे तो नाराज हुई नहीं बल्कि होंठ दबाकर हँसती रहीं जिससे मुझे और भी क्रोध हो आया था। परन्तु आप हमेशा याद आएँगी आप खूब हँसा सकती हैं।"

शान्त वर्षाकी बूँदें जोरकी हवासे जिस प्रकार पत्तोंसे झर पड़ती हैं, उसी प्रकार इस अंतिम बातसे कई बूँद आँसू विजयाकी आँखोंसे टप टप करके मिट्टीपर झर पड़े परन्तु इस भयसे कि हाथोंसे पोंछनेपर कहीं दूसरेकी दृष्टि न पड़ जाय वह निस्पन्द नीचा मुँह किये खड़ी रही।

नरेन्द्र कहने लगा "इसे ले नहीं सकीं इसलिए आप दुखी हैं—' यह कह सहसा वह व्यवहार ज्ञान-वर्जित वैज्ञानिक फक्क मारते ही एक अजीब हरकत कर बैठा। अकस्मात् वह हाथ बढ़ाकर और विजयाकी ठोडी पकड़कर विस्मयके साथ कह उठा 'यह क्या आप रो रही हैं!"

बिजलीकी गतिसे विजयाने दोनों पैर पीछे हटाकर आँसू पोंछ डाले। नरेन्द्रने हतबुद्धि होकर सिर्फ पूछा "क्या हुआ!"

यह सब व्यापार उस बेचारेकी बुद्धिसे परे था। वह जीवाणुओंको पहचानता था उन सबके नाम-धाम जाति-गोत्र आदिकी कोई बात उससे अज्ञात नहीं थी। उनके कार्य-कलाप, उनकी रीति नीतिके सम्बन्धमें कभी उससे रत्ती-भर भी भूल नहीं हुई, उनके आचार-व्यवहारका सारा हिसाब उसके नाखूनोंपर था। लेकिन यह क्या! जो निर्जीव कहकर गाली देनेसे खिलकर हँसती है और जो श्रद्धा और कृतज्ञतासे नम्र होकर प्रशंसा करनेसे रो रोकर नदी बहा देती है, ऐसे अद्भुत प्रकृतिके जीवके साथ संसारमें कोई आदमी सहज बारबार किस तरह चल सकता है! वह कुछ क्षण स्तब्ध भावसे खड़ा रहा इसके बाद ज्यों ही उसने हाथसे अपना बैग हाथमें उठाया, त्यों ही विजया धीमे गलेसे बोल उठी 'यह मेरा है। आप रख दीजिए। और फिर रुलाई अधिक रोक न सकनेके कारण तेजीके साथ उस कमरेसे चली गई।

उसे नीचे रखकर नरेन्द्र हतबुद्धि-सा होकर दो-तीन मिनट खड़ा रहा। इसके बाद उसने बाहर आकर देखा कि कहीं कोई नहीं है। और भी कुछ मिनटों तक चुपचाप राह देखकर अन्तमें वह खाली हाथ धीरे रास्तेसे चला गया।

विजयाने लौटकर देखा, बैग रक्खा है पर उसका मालिक नहीं है। वह सबसे बचनेके अपने कमरेमें गई थी, परन्तु खिड़कीमें मुँह छिपाकर रुलाई रोकनेमें

इस कमरेमें दिया जलानेके लिए आनेपर कालीचरणने कहा — उस कमरेमें बत्ती जला आता हूँ मामी।

अच्छा!" कहकर निरुपमा अपनेको संयत करके दूसरे ही क्षण दरवाजेका परदा हटाकर धीरेसे कमरेमें आ पहुँची। नरेन्द्र गरदन नीची किये हुए कुछ सोच रहा था, वह उठ खड़ा हुआ। उसकी निःश्वास दबानेकी व्यर्थ चेष्टा भी निरुपमाके निकट पकड़ाई दे गयी। थोड़ी देर चुप रहकर नरेन्द्रने कुण्ठाके साथ कहा — "इसे मैं साथ ही लिये जाता हूँ। आपका आजका दिन बहुत खराब बीता। क्या जानें आप किसका मुँह देखकर सबेरे उठी थीं। आपसे मैंने भी अनेक अप्रिय बातें कहीं और वे लोग भी कह गये।"

निरुपमाके मनके भीतर उस समय भी आग जल रही थी, मुँह ऊँचा करके देखते ही उसके अन्तरकी ज्वाला दोनों आँखोंमें दीप्त हो उठी; उसने अविचलित कण्ठसे कहा — मैं चाहती हूँ कि उसका मुँह देखकर ही रोज मेरी नींद टूटे। आपने सारी बातें अपने कानोंसे सुन ली हैं, इसलिए ही कहती हूँ कि, आपके सम्बन्धमें उन लोगोंने जो असम्भावकी बातें कही हैं, वह सब उनकी अनधिकार चेष्टा है। मैं कल उन्हें यह समझा दूँगी।"

अतिथिके असम्मानसे उसे कैसी चोट लगी नरेन्द्रने यह समझ लिया। उसने शान्त सहज भावसे कहा — 'आवश्यकता क्या है? इन सब वस्तुओंके संबंधमें वे लोग कुछ जानते नहीं इसीलिए उन्हें सन्देह हुआ है, नहीं तो मेरा अपमान करनेमें उनको कोई काम नहीं है। आपको स्वतः भी तो पहले अनेक कारणोंसे सन्देह हुआ था तो क्या अपमान करनेके लिए? वे लोग आपके आत्मीय हैं; हमारोंकी हैं, मेरे कारण उन्हें दुखी मत कीजिएगा। लेकिन अब रात हुई जा रही है,—मैं जाता हूँ।"

"कल या परसों एक बार आ सकिएगा?"

कल या परसों? परन्तु, अब तो समय नहीं मिलेगा। कल मैं जा रहा हूँ। यद्यपि कल ही बरमा जाना न हो सकेगा कलकत्तेमें भी कुछ दिनों ठहरना पड़ेगा लेकिन दुबारा मिलनेका—"

निरुपमाकी दोनों आँखें आँसुओंसे डबडबा आईं, वह मुँह न उठा सकी, न बात ही कर सकी। नरेन्द्र जरा ही कुछ हँस पड़ा और बोला — "आप खूब हँसा सकती हैं, और आप ही इतनी मामूली बातसे इतना नाराज हो गईं! मैं ही शायद एक बार मिलकर आपको मोटी बुद्धिकी और न जाने क्या क्या कह

गया था। परन्तु, उससे तो नाराज हुई नहीं बल्कि होंठ दबाकर हँसती रही जिससे मुझे और भी क्रोध हो आया था। परन्तु आप हमेशा याद आयेंगी आप खूब हँस सकती हैं।

शान्त वर्षाकी बूँदें जोरकी हवासे जिस प्रकार पत्तोंसे झर पड़ती हैं उसी प्रकार इस अंतिम वाक्यसे बड़े बूँद आँसू विजयाकी आँखोंसे टप टप करके मिट्टीपर झर पड़े परन्तु इस भयसे कि हाथोंसे पोंछनेपर कहीं दूसरेकी दृष्टि न पड़ जाय वह निःशब्द नीचा मुँह किये खड़ी रही।

नरेन्द्र कहने लगा "इसे मैं नहीं सह सकता इसलिए आप दुःखी हैं—" यह कह सहसा वह व्यवहार-ज्ञान-वर्जित वैज्ञानिक पण्डित मारते ही एक अजीब हरकत कर बैठा। अकस्मात् वह हाथ बढ़ाकर और विजयाकी ठोड़ी पकड़कर विस्मयके साथ कह उठा "यह क्या आप रो रही हैं!"

बिजलीकी गतिसे विजयाने दोनों पैर पीछे हटाकर आँसू पोंछ डाले। नरेन्द्रने हतबुद्धि होकर सिर्फ पूछा "क्या हुआ?"

यह सब व्यापार उस बेचारेकी बुद्धिसे परे था। वह जीवाणुओंको पहचानता था उन सबके नाम-धाम जाति-गोत्र आदिकी कोई बात उससे अज्ञात नहीं थी। उनके कार्य-व्यापार, उनकी रीति-नीतिके सम्बन्धमें कभी उससे रत्ती-भर भी भूल नहीं हुई, उनके आचार-व्यवहारका सारा हिसाब उसके नाखूनोंपर था। लेकिन यह क्या? जो निर्जीव कहकर गालीके वेगसे खिलखिलाकर हँसती है और जो श्रद्धा और कृतज्ञतासे नम्र होकर प्रशंसा करनेसे रो रोकर नदी बहा देती है, ऐसे अद्भुत प्रकृतिके जीवके साथ संसारमें ज्ञानी आदमीका सहज व्यवहार किस तरह चल सकता है? वह कुछ क्षण स्तब्ध भावसे खड़ा रहा इसके बाद ज्यों ही उसने हाथसे अपना बैग हाथमें उठाया, त्यों ही विजया दूसरे गलेसे बोल उठी "यह मेरा है। आप रख दीजिए।" और फिर कहीं अधिक रोक न सकनेसे अत्यन्त तेजीके साथ उस कमरेसे चली गई।

उसे नीचे रखकर नरेन्द्र हतबुद्धि-सा होकर दो-तीन मिनट खड़ा रहा। इसके बाद उसने बाहर जाकर देखा कि कहीं कोई नहीं है। और भी कुछ मिनटों तक चुपचाप राह देखकर अन्तमें वह खाली हाथ अँधेरे रास्तेसे चला गया।

विजयाने लौटकर देखा, बैग रक्खा है, पर उसका मालिक नहीं है। वह उसे लानेके अपने कमरेमें गई थी, परन्तु तकियेमें मुँह लपेटकर चुपचाप रोनेमें

कितनी देर हो गई, इसका उसे होश नहीं रहा, पुकार होनेपर कमरेसे बाहर आया। प्रश्न सुनकर उसने सांसारिक कामोंकी लम्बी जमाती फर्द दाखिल करके कहा, 'मैं भीतर था, जानता नहीं बाबू कब चले गये।' दरबान कन्हैयासिंह आकर बोला, 'मैं अखाड़ेकी खाक चूल्हेसे उतारकर रोटियाँ बना रहा था, मौका पाकर बाबू कब चुपकेसे बाहर निकल गये मुझे मालूम ही न हुआ।"

१३

विलासविहारीकी प्रधान कीर्ति—पैतृक-गाँवमें ब्राह्म-मन्दिरकी स्थापना—का शुभ दिन समीप आ पहुँचा। एक एक करके अतिथि आने लगे। सिर्फ कलकत्तेसे ही नहीं, आसपाससे भी दो-चार व्यक्ति उपस्थित आ पहुँचे। कल वही शुभ दिन है। आज शामको रासविहारीने अपने विलास-भवनमें एक प्रीति-भोजका आयोजन किया है।

संसारमें स्वार्थ-हानिकी आशंका किसी किसी कारबारी व्यक्तिको कितना कुशाग्रबुद्धि और दूरदर्शी बना देती है, सो निम्नलिखित घटनासे ज्ञात हो जायगा।

आये हुए निमन्त्रित व्यक्तियोंके बीचमें बैठकर रासविहारी अपनी पकी दाढ़ीपर हाथ फेरकर अधमुँदी आँखोंसे अपने बाल्यबन्धु परलोकगत जगमोहनका उल्लेख करते हुए गम्भीर कण्ठसे कहने लगे, 'भगवानने उन्हें असमयमें बुला लिया। उनकी मंगल-इच्छाके विरुद्ध हमारी रत्ती-भर भी शिकायत नहीं है। किन्तु बाहरसे देखकर इसका आप अनुमान भी नहीं कर सकेंगे कि वे मुझे कैसी हालतमें छोड़ गये हैं। यद्यपि हम लोगोंके मिलनका दिन प्रति दिन निकटतर होता जा रहा है और इस बातका आभास मैं प्रतिमुहूर्त पा रहा हूँ तथापि उन एक मात्र अद्वितीय निराकार ब्रह्मके श्री चरणोंमें यह प्रार्थना करता हूँ कि वे अपनी असीम करुणासे उस दिनको और भी समीपतर कर दें।' यह कहकर उन्होंने कुर्तेकी बाँहसे अपनी आँखोंकी कोरें पोंछ लीं। उसके पश्चात् वे कुछ क्षण ब्रह्म-समाधि-मग्न भावसे मौन रहकर, अपेक्षाकृत प्रकृतिस्थ कहने लगे, अपने बचपनके खेलना-कूदना, किशोर-वयके पढ़ने-गुनने और उसके बाद यौवनमें ब्रह्मधर्म ग्रहण करनेका इतिहास बताकर उन्होंने कहा, 'परन्तु जगमोहनका कोमल हृदय गाँवका असदाचार सहन नहीं कर सका। वे कलकत्ते चले गये। लेकिन मैंने सारी तकलीफें सहकर गाँवमें रहनेकी ही प्रतिज्ञा की। उफ वह कैसा भयानक निर्वासन था! तथापि मैंने मन ही मन कहा, सत्यकी जय होगी

ही। उनकी महिमासे एक दिन विजयी होऊँगा ही। वही शुभ दिन आज सामने है। इसीसे यहाँ इतने समय बाद आप लोगोंकी पद-धूलि पड़ी है। आज वनमाली हम लोगोंके बीच नहीं हैं—दो दिन पहले ही वे चले गये हैं, परन्तु मैं आँख मूँदते ही देख पाता हूँ, वह देखिए, वे ऊपर आनन्दसे मृदु मृदु हँस रहे हैं।” यह कहकर वे फिर आँखें मूँदकर स्थिर हो गये।

सारे ही उपस्थित व्यक्तियोंके मन उच्छ्वसित हो उठे, विजयाकी दोनों आँखोंमें आँसू डबडबा आये। रासबिहारी आँखें पोंछकर सहसा दाहिना हाथ फैलाते हुए बोल उठे, उनकी एकमात्र कन्या ये विजया हैं। पिताके सब गुणोंकी अधिकारिणी किन्तु धर्म-पालनमें कठोर और सत्य कहनेमें निर्भीक स्थिर। और यह मेरा लड़का विलासबिहारी है, जैसा ही लड़का वैसा ही दृढ़चित्त। ये दोनों बाहरसे इस समय तक अलग हैं फिर भी भीतर—हाँ, और वह शुभ दिन निकट आ रहा है जिस दिन फिर आप लोगोंकी पद-धूलिके प्रतापसे इनका सम्मिलित नवीन जीवन धन्य होगा।

एक अस्फुट मधुर कलरवसे सारी सभा मुखरित हो उठी। जो महिला निकट खड़ी थी उसने विजयाका हाथ अपने हाथमें लेकर जरा-सा दबा दिया। रासबिहारी एक गहरी लम्बी उसाँस छोड़कर बोले, यह उनकी एकमात्र सन्तान है। यह शुभ प्रसंग अपनी आँखोंसे देख जानेकी उनकी बड़ी साध थी परन्तु, सारा अपराध मेरा है, आज आप सबके सामने इसे मुक्त कण्ठसे स्वीकार करता हूँ। इसके लिए मैं अकेला ही जिम्मेदार हूँ। कमलके पत्तेपर ओसकी बूँदके समान मानव-जीवन है, हम लोग सिर्फ मुँहसे ही यह कहते हैं, परन्तु काम पड़नेपर करके नहीं दिखाते। जीवन इतनी जल्दी जा सकता है यह ख्याल ही मैंने नहीं किया।’

यह कहकर वे क्षण-भरके लिए चुप हो गये। उनके अनुतापसे खिंचे हृदयका चित्र उज्ज्वल दीपालोकमें मुँहपर फूट उठा। फिर एक लम्बी उसाँस छोड़कर शान्त-गम्भीर स्वरसे बोले, परन्तु अब मुझे होश आ गया है। इसीलिए अपने शरीरकी ओर देखकर इस अपने फागुनसे अधिक अब और देर करनेकी हिम्मत मुझे नहीं होती। कौन जानता है कहीं मैं भी बिना देखे ही न चला जाऊँ।”

फिर एक कलरव ध्वनि उठी। रासबिहारी दाहिने और बाँये देखकर सिर नीचा करके कहने लगे, जिस प्रकार वनमालीने अपने यथासर्वस्व

साथ कन्याके भी मेरे हाथ सौंप गये हैं, उसी प्रकार मैं भी धर्मकी ओर दृष्टि रखकर अपना कर्तव्य पूरा कर जाऊँगा। ये दोनों भी उसी प्रकार आप लोगोंके आशीर्वादसे दीर्घ जीवन पाकर सत्यके सहारे अपना कर्तव्य-पालन करें। जिस स्थानसे इनके पिताको निर्वासित किया गया था उसी स्थानमें यह प्रतिमाके साथ ये सत्यधर्मका प्रचार करें, यही मेरी एकमात्र प्रार्थना है।"

वृद्ध आचार्य दयालचन्द्र बाबूने आशीर्वाद-वर्षा की।

रासबिहारीने तब विमलाको पुकारकर कहा — "बेटी, तुम्हारे पिता नहीं हैं, तुम्हारी सती-साध्वी मा भी बहुत पहले स्वर्गधाम सिधार गई है, नहीं तो आज यह बात मुझे तुमसे न पूछनी पड़ती। शर्माओ मत बेटी, कह दो जिससे आज हम पूजनीय अतिथियोंसे आगामी फागुनके महीनेमें ही यहींपर फिर एक बार पद-धूलि देनेके लिए निमन्त्रण दे रखें।"

विमला क्या कहे! लोगोंके विस्मित नजरसे उसका लज्जावरोध हो गया। वह नीचा मुँह किये निःशब्द बैठी रही। रासबिहारीने क्षण-भर प्रतीक्षा करके ही मृदु हँसकर कहा — "दीर्घजीवी होओ बेटी, अब तुम्हें कुछ नहीं कहना होगा — हम लोग सब समझ गये हैं।"

इसके बाद वे खड़े होकर दोनों हाथ जोड़कर बोले, "मैं आगामी फागुनमें ही फिर एक बार आप लोगोंकी पद-धूलिकी भीख माँगता हूँ।" सभी लोग बार बार अपनी अपनी सम्मति प्रकट करने लगे। विमला और अधिक न सह सकनेके कारण अकस्मात् जल्दीसे बोल उठी, "बापूकी मृत्युके एक वर्षके ही भीतर—" लज्जा भर जानेके कारण वह अपनी बात पूरी न कर सकी।

रासबिहारी पलक मारते ही मामला समझकर अनुतापके साथ जल्दी बोल उठे — "ठीक तो कहती हो बेटी, ठीक तो कहती हो। यह मुझे स्मरण ही नहीं था। मगर तुम तो मेरी मा हो न बेटी, इसीसे इस बूढ़े लड़केकी गलती तुमने पकड़ ली।"

विलासने चुपचाप रूमालसे आँखें पोंछ लीं। रासबिहारीने यह देख लिया। वे उसाँस लेकर आर्द्र स्वरसे बोले "सब कुछ भगवान्‌की इच्छा है।" फिर कुछ देर बाद बोले "सो ही होगा। परन्तु, उसके लिए भी तो अधिक विलम्ब नहीं है।"

सबकी तरफ देखकर उन्होंने कहा, "अच्छी बात है, अगले वैशाखमें ही यह शुभ कार्य सम्पन्न होगा। आप लोगोंसे हमारी यही बात पक्की रही।"

विलासबिहारी, बेटा रात हुई जा रही है, कल सबेरेसे तो कामोंकी कुछ हद नहीं रहेगी—इन लोगोंके भोजनका आयोजन—नहीं नहीं नौकरोंके भरोसे छोड़ना ठीक नहीं है तुम खुद जाओ। चलो मैं भी चलूँ। तो फिर आप लोगोंकी अनुमति यदि हो तो मैं एक बार—" कहते कहते ही वे लड़केके पीछे पीछे भीतरकी ओर चले गये।

यथासमय प्रीति-भोजनका कार्य सम्पन्न हो गया। आयोजन काफी था कहीं भी किसी अंशमें कोई त्रुटि नहीं रहने पाई। रातके लगभग बारह बज रहे होंगे कि एक कमरेके कोनेमें अँधेरेमें विजया अकेली खड़ी पालकीकी प्रतीक्षा कर रही थी। रासबिहारी उसे सहसा देख निकलकर मानो चौंक पड़े "यहाँ अकेली क्यों खड़ी हो बेटी! चलो चलो! कमरेमें बैठो चलो!"

विजया मस्तक हिलाकर बोली "नहीं चाचाजी मैं ठीक खड़ी हूँ।"

"लेकिन सरदी लग जायगी बेटी!"

नहीं नहीं लगेगी।"

रासबिहारी तब नजदीक खड़े होकर 'बरसों जियो' आदि कहकर और एक बार आशीर्वाद देने लगे और विजया पत्थरकी मूर्तिकी तरह निर्वाक् होकर स्नेहका यह सारा नाटक सहन करने लगी।

अकस्मात् उन्हें एक बात याद आ गई और बोल उठे "तुम्हें यह बात बताना तो एकदम भूल ही गया था बेटी, उस माइक्रोस्कोपकी कीमत मैंने दे दी है।"

आठ-दस दिन हो गये, नरेन्द्र उस दिन उसे रख गया और उसके बाद फिर आया ही नहीं। विजयाके ये कई दिन किस प्रकार कटे हैं, सो सिर्फ वही जानती है। उसने उसकी बुआके घरकी बात तो जान ली थी, लेकिन वह कहाँ है, किस गाँवमें है सो पूछ ही नहीं पाई थी। यह भूल उसे प्रति क्षण तपे काँटेकी तरह बेधती रही है; परन्तु वह कोई उपाय नहीं खोज सकी। इस समय रासबिहारीकी बातसे चकित होकर बोली "कब दी!"

रासबिहारी जरा सोचकर बोले "कौन जाने सम्भवतः उसके दूसरे दिन ही दी होगी। सुना कि तुमने उसे खरीदनेकी इच्छासे रख लिया है। बात तो बात ही है। बात कम ही या ज्यादा तय ठहरी हो, या कुछ भी हो रुपये भी दे दिये गये। बेटी, उस बेचारेको बड़ी जरूरत है, रुपये हाथमें आते ही चला जायगा जाकर जीविकाका कुछ न कुछ यत्न करेगा। हजार हो फिर भी पराया तो नहीं है

बेटी, यह भी तो एक अनुचित लगता है। देखो वहाँ जानेके लिए बहुत विलम्ब हो रहा है, रुपये पाते ही चला जाएगा। और तुम्हारा देना भी देना है मेरा देना भी देना है, इसीसे मैंने उसी वक्त दे दिया। उसका धर्म उसके साथ है,— तुम इससे ज्यादा भी ले गया हो तो ले जाय।"

विजयाकी जीभ मुँहमें ही मानों अकड़ गई। उसे ऐसा लगा कि मानो अब किसी प्रकार वाणी फूटेगी ही नहीं। कुछ क्षण प्रबल प्रयत्न करनेके बाद वह पूछ बैठी, "उन्हें क्यों रुपये दिये?"

रासबिहारी पता नहीं कैसे प्रश्नको बिलकुल और ही समझकर चौंक उठे और बोले, "नहीं नहीं, कहती क्या हो, रुपये दो बार ले गया क्या? लेकिन कैसे, ऐसा तो उसका मुँह देखकर लगा नहीं। और किसे आखिर दोष दूँ? इसी तरह लोगोंकी बातोंपर विश्वास करके ठगाते ठगाते ही तो मैंने अपनी सम्पत्ति नष्ट कर दी है। न हो, और दो सौ गये। सो वे रुपये मैं ही दे दूँगा—हमेशा इसी प्रकार ठग खाते खाते उमर बीत गयी है बेटी, अब उसमें लगता नहीं। जाने दो—वह मैं—"

विजया और अधिक किसी तरह न सह सकनेके कारण क्रोध दबाते बोल उठी, "क्यों आप व्यर्थ डर रहे हैं चाचाजी! दो बार रुपये ले जानेवाले आदमी वे नहीं हैं, बिना खाये-पीये मर जाना पड़े तो भी नहीं। मेरा किन्तु क्या हुआ? रुपये क्या दिये?"

रासबिहारीने अत्यन्त आश्वस्त होकर दाढ़ीमें छोड़कर कहा, "उसके जाने बचो। रुपया भी तो कम नहीं था—दो सौ। वह जानेके लिए बहुत व्यग्र था।" फिर अकस्मात् कुछ रुककर बोले, "कौन गया है? विलास? अरे पाखण्डीका क्या हुआ? मरती जा रही है। जो काम मैं दूर नहीं देख पाया वह क्या होगा ही नहीं?" यह कहकर वे बहुत नाराज होकर दूसरी तरफके खम्भोंके विलास समझकर अकस्मात् चीखकर उसी ओर बढ़ गये।

१४

एक दिन था जब विलासके हाथ आत्म-समर्पण करना विजयाके लिए कुछ कठिन नहीं था। परन्तु आज केवल विलास ही क्यों—इतनी बड़ी पृथ्वीके इतने करोड़ लोगोंमेंसे सिर्फ एक व्यक्तिको छोड़कर और किसीके हाथ देनेकी बात तक सोचनेमें उसका सर्वांग घृणा और लज्जासे तथा सारा अन्तःकरण किसी एक गहरे पापके भयसे शंका संकुचित हो उठता है। इस विषयमें ही

यह रासबिहारीके निमन्त्रणसे मिलकर पालकीमें बैठे बैठे अनेक पहलुओंसे बहुत ही बारीकीसे आलोचना करती हुई घर आ रही थी।

उसके सम्बन्धमें उसके पिताका मनोभाव वास्तवमें क्या था यह जान लेनेका यथेष्ट सुयोग उसे नहीं मिला। परन्तु, उनकी मृत्युके बाद उसके भविष्यत् जीवनकी धारा विलासबिहारीके साथ मिलकर ही बहेगी सो स्थिर हो गया था। इस सम्भावनाकी कल्पना भी किसी दिन उसके मनमें उदय नहीं हुआ कि इसमें किसी प्रकारकी बाधा पड़ सकती है।

यह जो एक अनासक्त उदासीन व्यक्ति आकाशके न जाने कौनसे एक अरण्य प्रान्तसे सहसा धूमकेतुके समान निकल पड़ा और पलक मारते ही अपनी विशाल पूँछकी प्रचण्ड ताड़नासे गत कुछ बार-बार करके सब कुछ उलट-पुलटकर उसके सुनिर्दिष्ट मार्गकी रेखा तक मिटाकर दूर ही कहीं भटक गया—अपना चिह्न तक नहीं छोड़ गया—सो सच था अथवा कल्पित सपना!—विजया अपनी समस्त आत्माको लगाकर आज यही सोच रही थी। यदि यह सपना था तो उसका मोह किस प्रकार कितने दिनोंमें कटेगा और यदि सच था तो वह जीवनमें किस प्रकार सार्थक होगा?

घर आकर वह चारपाईपर लेट गई लेकिन नींद उसके थके हुए मस्तकके पास भी न फटकी। आज जो आशंका उसके मनमें बार बार उठने लगी वह यह कि जो चिन्ता कुछ दिनोंसे उसके चित्तको दिन-रात आन्दोलित कर रही है उसमें सत्य वस्तु भी कुछ है अथवा वह केवल उसके आकाश-कुसुमोंकी माला है इस निदारुण समस्याकी गाँठ कौन खोल देगा?

उसके माँ नहीं है पिता भी परलोकमें हैं भाई बहन तो किसी दिन थे ही नहीं—अपना कहनेको एक रासबिहारीके अतिरिक्त और कोई नहीं है। वे ही उसके बन्धु, वे ही मित्र और वे ही अभिभावक हैं। आज विजयाके निकट यह बात पानीके समान स्वच्छ हो गई कि उन्होंने कौन-सा शुभ उद्देश्य सिद्ध करनेके लिए इतनी जल्दी करके उसे उसके आजन्म परिचित कलकत्तेके समाजसे दूर इस देशमें लाकर डाल दिया है। पानीकी इस स्वच्छताके भीतर जितनी दूर तक उसकी दृष्टि गई उसकी आँखोंके सामने सब कुछ बिलकुल स्पष्ट होकर दिख गया। विदेश जानेके लिए नरेन्द्रको बिना माँगी सहायता देना अपने घर खिलाने-पिलानेका यह आयोजन सम्मानित अतिथियोंके सामने विवाहका प्रस्ताव उसकी सलज्ज नीरवताका अर्थ मौन सम्मति मानकर

निर्भीकतम रूपका प्रचार —इस तरह उसे उन वरणोंसे भीख देनेके बदले इस सेवा-परम्पराकी कोई भी बात अब छिपाये छिपी नहीं रही ।

परन्तु रहस्यकी बात यह है कि अत्याचार-उपद्रवका लेश-मात्र चिह्न भी राजबिहारीके किसी अवयवमें कहीं मौजूद नहीं है । फिर भी इसकी विषम स्नेह सरल माधुर्यमयी आकृतिमें खड़े होकर कितना बड़ा दुर्निवार शासन उसे प्रतिपल ठेल ठेलकर सामने मृत्युकी ओर बढ़ाये ले रहा है !—यह प्रत्यक्ष अनुभव करनेके साथ ही साथ अपनी उपायविहीनताका चित्र भी उसे ऐसा स्पष्ट दिखाई पड़ा कि अपने उस एकान्त कमरेमें भी विजया आतंकसे सिहर उठी । सारी रात वह क्षणभरके लिए भी सो नहीं सकी । वह अपने परलोकगत पिताको बार-बार पुकारकर और रो रोकर कहने लगी "बापू, तुम तो इन लोगोंको पहचान गये थे, तब क्यों मुझे इस प्रकार इनके हाथमें सौंपकर चले गये ?"

एक समय अपने मुख ही विलासको पसन्द किया था और उसके ही साथ मिलकर पिताकी इच्छाके विरुद्ध भी नरेन्द्रके सर्वनाशकी कामना की थी । वह कामना ही आज उसकी उन्नत हुई इच्छाओंको पराजित करके जयजयकार कर रही है, इसका ख्याल करके उसका हृदय कांपने लगा । वह बार-बार कहने लगी कि स्नेहसे अन्धे होकर बापू इस सर्वनाशकी जड़को अपने हाथोंसे ही क्यों न उखाड़कर फेंक गये और क्यों मेरी ही बुद्धि-विवेचनापर सब छोड़ गये ! और ऐसा यदि करना था तो क्यों मेरी स्वाधीनताका मार्ग इस प्रकार सब ओरसे बन्द कर गये ! सारा तकिया भिगोकर वह केवल यही सोचने लगी कि इस क्षुद्र अभिमानकी निष्फल शिकायत क्या आज उन सर्वदर्शी पिताके कानोंमें पहुँच नहीं रही है ? क्या आज प्रतिकारका उपाय मेरे हाथमें रत्तीभर भी नहीं है ?

दूसरे दिन परेशकी माकी पुकारसे जिस समय विजयाकी नींद खुली, उस समय दिन चढ़ आया था । उसने उठते ही सुना कि उसका बाहरी कमरा भिन्नभिन्न व्यक्तियोंसे भर गया है—सिर्फ वही मौजूद नहीं है । अब इस त्रुटिको सुधारनेके लिए असाध्य चेष्टा तो क्या करती—आज सारे दिनके उत्सवका ईश्वरका स्मरण करते ही मानो उसे एक तरहकी शक्ति पैदा हो गई । पौषमासका प्रभातकालीन सूर्यालोक नदीके आमके पेड़ोंसे छिपा छिपाकर एकरूप फैल गया था । उनके पत्तोंकी चोटियोंसे सामनेके मैदानसे होकर खेलते-कूदते और मोड़ चराने जाते हुए ग्वाल-बाल दिखाई पड़ रहे थे । उनके

वह देख आई है उससे यह दृश्य देखते देखते किसी दिन भी उसके मनमें ध्यान नहीं आई थी। अनेक दिन अनेक जरूरी काम काज रहकर भी वह बहुत देर तक इस दृश्यपर टकटकी लगाए बैठी रही है। आज वह सोच ही नहीं सकी कि इतने दिनों तक इसमें कौन-सा माधुर्य था। बल्कि यह मानों एक बहुत पुरानी बासी चीजके समान उसे शुरूसे आखिर तक बेस्वाद प्रतीत हुआ। इस दृश्यके बाद उसने अपनी थकी हुई आँखें धीरे-धीरे फिरा लीं तब देखा कि कालीपद एक दममें तीन-तीन सीढ़ियाँ पार करता हुआ ऊपर आ रहा है। आँखें चार होते ही वह बीचमें ही रुक गया और अत्यन्त व्यस्ततापूर्ण इशारा करके हाथ उठाकर बोल उठा — "माँजी जल्दी चलिए, जल्दी। छोटे बाबू बुरी तरहसे नाराज हो रहे हैं। आज कहीं इतनी देरी करनी चाहिए!"

किन्तु आगकी चिनगारी बारूदके किसी ढेरमें पड़कर जैसा विप्लव पैदा कर देती है नौकरके इस संवादने चित्राके देह-मनमें भी ठीक वैसा ही भीषण विप्लव उत्पन्न कर दिया। उसे ऐसा मालूम हुआ मानों उसके पैरोंके तलवेसे लेकर बालोंके छोर तक एक ही क्षणमें एक प्रचण्ड अग्नि जल उठी है। लेकिन सहसा वह कोई बात कह न सकी। स्फटिकमय हुआ दोपहरकी सूर्य-किरणोंसे जिस प्रकार अत्यन्त तेज फेंकता है, उसी प्रकार उसकी दोनों बड़ी आँखोंसे भी असह्य ज्वाला निकलने लगी। कालीपद उन आँखोंकी ओर देखकर मनसे सूख गया। वह फिर कुछ कहना चाहता था कि चित्राने अपनेको सँभाल लिया और "तुम नीचे जाओ कालीपद।" कहकर उँगलीसे इशारा कर दिया।

चित्रा जानती थी कि इस मकानमें छोटे बाबू कहनेसे विलासबिहारी और बड़े बाबू कहनेसे रासबिहारीका बोध होता है। लेकिन ये दोनों पिता-पुत्र यहाँ इतने बड़े बन बैठे हैं कि उनके पुत्रकी पुकार आज नौकर-चाकरोंके निकट मकानके मालिक तकको पार कर पाई है, यह बात चित्राको आज ही पहले पहल मालूम हुई। आज उसने साफ-साफ देखा कि इतने ही समयमें विलास यहाँका असली मालिक बन गया है और वह उसकी आश्रिता और सिर्फ अनुग्रहपर जीनेवाली है। यह कहना व्यर्थ है कि इस तथ्यने उसके मनकी आगमें जलधारा नहीं सींची।

आधे घण्टेके बाद जब वह हाथ-मुँह धोकर कपड़े बदलकर तैयार हो गई और नीचे उतर आई तब लोग चाय पी रहे थे। उपस्थित सभी व्यक्तियोंने प्राय उठकर और खड़े होकर अभिवादन किया और उसके मुँह तथा आँखोंकी

मुस्कराता देखकर उनके मातृतुल्य कंठोंसे सहानुभूति प्रश्न ध्वनित हो उठे। किन्तु मानो विजयबिहारीके तीव्र कटु कंठोंसे वे सब डूब गये। वह अपना चायका प्याला टेबुलपर पटककर बोल उठा — 'इस समय भी नींद न खुलती तो भी चल जाता! यह कहे बिना नहीं रहा जाता कि तुम्हारे व्यवहारसे मैं क्रमशः हैरान-परेशान (तंग) हो उठा हूँ।'

यह ठीक है कि उसे नाराजी प्रकट करनेका अधिकार था। लेकिन बाहरके इतने लोगोंके सामने भावी पत्नीकी इस असभ्यतापूर्णताने अत्यन्त अधिक असभ्यताके रूपमें सबको विस्मित और व्यथित कर दिया। लेकिन विजयाने उसकी तरफ लौटकर उत्तरतक भी न देखा। मानो कुछ भी न हुआ हो ऐसे भावसे वह सबको ही प्रात-नमस्कार करके जहाँ बूढ़े आचार्य दयाल बाबू बैठे थे उस तरफ बढ़ गई। वृद्ध अत्यन्त संकुचित हो उठे। विजयाने उनके पास जाकर मौन हँसते कहा — 'आपको चाय पीनेमें कोई तकलीफ तो न हुई? मुझसे अपराध हो गया। आज मैं जल्दी न उठ सकी।'

वृद्ध दयाल स्नेहार्द्र होकर प्रसन्न 'बेटी' कहके मनोचित कण्ठसे बोल उठे, "नहीं बेटी, हमलोगोंके किसीको कोई असुविधा नहीं हुई। विलास बाबू और रास बिहारी बाबूने कहीं कोई त्रुटि नहीं होने दी। लेकिन तुम तो उतनी अच्छी नहीं दिखाई पड़ रही हो बेटी, तबीयत तो कुछ खराब नहीं हो गई है?

वे हमेशा कलकत्तेमें नहीं रहते इसलिए विजया पहले इन्हें नहीं पहचानती थी। कल भी उसने इन्हें अच्छी तरह लक्ष्य करके नहीं देखा था। लेकिन आज कमरेमें पैर रखते ही इस वृद्धकी शान्त-सौम्य मूर्तिने मानो बिलकुल अपने आत्मीयकी तरह उसे आकर्षित कर लिया। इसीलिए सबको छोड़कर वह उनके निकट आ खड़ी हुई। इस समय उनके ही स्निग्ध कोमल कण्ठस्वरसे हृदयका दाह मानो आधा शान्त हो गया और सहसा उसे प्रतीत हुआ न जाने कैसे उनके इस कण्ठ स्वरमें उसके पिताके कण्ठ-स्वरका आभास मौजूद है।

दयाल एक कोचपर बैठे थे, बगलमें और थोड़ी-सी जगह थी। उन्होंने उसी स्थानकी ओर निर्देश करके, "यहीं क्यों हो बेटी, बैठो न। तबीयत तो कुछ खराब नहीं हो गई?"

विजया बगलमें बैठ अवश्य गई, लेकिन उत्तर न दे सकी। गरदन घुमाकर दूसरी तरफ देखने लगी। आँसुओंको रोकना उसके लिए उत्तरोत्तर कठिन होता जा रहा था। उन्होंने फिर वही प्रश्न किया। प्रत्युत्तरमें इस बार विजयाने सिर हिलाकर किसी प्रकार केवल 'ना' कह दिया।

इसे अपेक्षा यह संक्षिप्त उत्तर सुनकर छिपा नहीं रहा। वे मुहूर्त मात्रके लिए चुप रहकर मामला समझकर मन ही मन कुछ हँसे। जो इस मध्ययुगके भाविकवर्गकी जगहपर कुछ पढ़नेसे ही एकाएक जमा बैठा है वह यदि अपनी प्रणयिनी गृहस्वामिनीसे कुछ मधुर बातें करता है तो आश्रमवासियोंको यह बात भली नहीं प्रतीत हो परन्तु जो ज्ञानवृद्ध लोग यौवनका इतिहास पढ़कर खतम कर चुके हैं वे यदि मन ही मन हँसे तो उन्हें दोष नहीं दिया जा सकता।

उस समय वृद्ध अपने समीप बैठी इस नवीना और अभिमानिनीको सुस्थिर होनेका समय देनेके लिए खुद ही धीरे धीरे बातें करने लगे। इतनी थोड़ी उम्रमें इस सत्य-धर्मके प्रति उन लोगोंकी अविचलित निष्ठा और प्रतिष्ठाकी अनेकशः प्रशंसा करके अन्तमें वे बोले — भगवानके आशीर्वादसे तुम दम्पतिके सद्धर्मकी दिन दिन श्री वृद्धि हो। लेकिन बेटी जिस मन्दिरकी तुमने अपने गाँवमें प्रतिष्ठा की है उसे बनाये रखनेके लिए तुम लोगोंको बहुत परिश्रम और बहुत स्वार्थत्याग करना पड़ेगा। मैं खुद भी गँवई गाँवमें रहता हूँ, मैंने अच्छी तरह देख लिया है कि यह धर्म इस समय भी गँवई गाँवमें दम घोंटकर मानो जीवित नहीं रह सकता। इसी लिए मुझे प्रतीत होता है कि यदि उस गाँवमें जीवित रख सको बेटी तो इस देशमें सचमुच एक बड़ी समस्याकी मीमांसा हो जाय। मैं भला ही नहीं सकता कि तुम लोगोंको इस अवस्थामें क्या कहकर आशीर्वाद दूँ।”

विजयाके मुँह तक आ जाता था कह दे कि इस मन्दिर प्रतिष्ठामें मुझे कोई उत्साह नहीं है मैं इसकी लेशमात्र सार्थकता नहीं समझती। लेकिन इसे दबाकर उसने मृदु स्वरसे पूछा — आप यह क्यों कह रहे हैं कि एक कठिन समस्याका समाधान हो जायगा?

दयालने कहा — और नहीं तो क्या बेटी! मेरा आन्तरिक विश्वास है कि बंगालके गाँवोंके करोड़ों कुसंस्कारोंसे सिर्फ हमारा यह धर्म ही मुक्ति दिला सकता है। लेकिन साथ ही यह भी जानता हूँ कि जिसका जहाँ स्थान नहीं है, जिसका जहाँ प्रयोजन नहीं है वहाँ वह बचता नहीं। परन्तु बेटा और तुम दोनों यदि एकको भी बचाया जा सके, तो वह क्या एक भारी आशा-भरोसाका आधार नहीं होगा? अपने देशकी करोड़ दोष-गुणोंकी बात तुम मुझसे भी तो कम नहीं जानती बेटी उन सबके विषयमें अपने हृदयमें अच्छी तरह थोड़ी गहराईसे तो सोचकर देखो।

विजया और प्रश्न न करके मौन होकर सोचने लगी। दयालबाबूकी मंगल-कामना उसमें सचमुच स्वभावसे ही थी; आचार्यकी अन्तिम बातसे वह बातसे

मित हो उठी। मंदिर-प्रतिष्ठाके सिलसिलेमें आगे नाना कामोंमें भावमें ही विमलस अपने हृदयके अत्यन्त व्यथाके स्थानपर बार बार आघात कर रहा था। वह मैत्रमासे छटपटा रही थी फिर भी प्रतिघात करनेका कोई उपाय नहीं था इसलिए उसका पूरा मन इस सारे मामलेके विरुद्ध विद्रोहसे प्रायः अन्धा हो उठा था। लेकिन हवासने जब अपनी प्रशान्तमूर्ति और स्नेहयुक्त वाणीके आश्वासनसे विमलकी चेष्टाकी इस विशेष दिशाकी ओर आँख खोलकर देखनेके लिए अनुरोध किया तब विजयाने सचमुच ही अपना भ्रम देख पाया। उसे प्रतीत होने लगा, विमलस वास्तवमें हृदयहीन और क्रूर नहीं है, उसकी कठोरता शायद धर्मके प्रति प्रबल अनुरक्तिसे ही प्रकट करती है। मनुष्यके इतिहासमें इस प्रकारके दृष्टान्तोंका अभाव नहीं है। उसे स्मरण हो आया उसने कहीं पढ़ा है कि संसारके सारे बड़े कार्य किसी न किसीके लिए हानिकारक होते हैं। जो लोग यह कार्य-भार अपनी इच्छासे ग्रहण करते हैं वे अनेकोंके संपत्तिकी दृष्टिसे साधारण हानिकी ओर आँख उठाकर देखनेका अवसर नहीं पाते। इसीलिए अनेक स्वार्थोंपर संसार उन्हें निर्दय-निष्ठुर आदि कहता है। पितृकालकी शिक्षा और संस्कारके कारण विजयाके मनमें शास्त्र-धर्मोंके प्रति किसीकी भी अपेक्षा कम अनुराग नहीं था। उस धर्मके विस्तारपर देखका इतना अधिक मंगल निर्भर करता है यह जानकर उसका उस शिक्षित सम्पादित अन्तःकरण उसी क्षण विमलसको मन ही मन क्षमा किये बिना नहीं रह सका। यहाँ तक कि वह अपने आप ही कहने लगी "संसारमें जो लोग बड़े काम करनेको आते हैं उनका व्यवहार हमारे समान साधारण आदमियोंके साथ यदि अक्षर अक्षर न मिले तो उन्हें दोष देना असम्भव है, यहाँ तक कि, अन्याय है, और अन्यायको अन्याय समझकर मैं किसी भी तरह आश्रय न दे सकूँगी।"

समय अधिक हो जानेसे सब लोग एक एक करके उठने लगे। विजया भी उठकर खड़ी हो गई। रासबिहारीने अपनेको अलग बुलाकर कुछ कहा और तब मानो इस सुयोगकी प्रतीक्षा ही कर रहा हो इस तरह विजयाके पास आकर बोला तुम्हारी तबीयत क्या आज सवेरेसे अच्छी नहीं है विजया?"

आज पहले पहले शायद इस प्रश्नकी एकदम उपेक्षा करके कुछ भी कह देनेसे काम चल जाता; लेकिन इस समय विजयाने मुँह उठाकर देखा और सहज भावसे कहा 'नहीं अच्छी ही हूँ। कल रातको नींद नहीं आई इसीलिए जान पड़ता है, कुछ अलसाय दिखाई पड़ी रही हूँ।"

विभासका मुँह आनन्दसे उज्ज्वल हो उठा। ऐसे मनुष्य लोग हैं जो आघातके बदले प्रतिघात किये बिना नहीं रह सकते। अपनी भारी हानि समझकर भी नहीं रह सकते। विभास उन्हींमेंसे एक था। उसके प्रति विजयाका आचरण जितना ही अप्रीतिकर होता था उसका विजयाका आचरण भी उतना ही अधिक-निष्ठुर होता जा रहा था।

इस प्रकार जब पत्र-प्रतिपत्रकी आग प्रतिक्षण भयंकर बन रही थी; और पक्के धार्मिक ज्ञानी पिताका पुनः पुनः अत्यन्त आग्रहयुक्त अनुरोध सहिष्णुताके परम लाभ और परम सिद्धिके सम्बन्धमें गुरु-गम्भीर उपदेश अज्ञानी-उद्धत लड़केके किसी भी काम नहीं आ रहे थे तब विजयाके मुँहके इस एक कोमल वाक्यने विभासके स्वभावको मानो बदल दिया। उसने अपना स्वाभाविक कर्कश कण्ठ जहाँतक सम्भव हो सका करुण करके कहा "तो फिर अब तुम इस वक्त धूपमें बाहर न निकलना। जल्दी ही स्नान भोजनसे निपटकर थोड़ा सो लेनेका प्रयत्न करना। जीवन-यौवनका समय अच्छा नहीं होता—कहीं तबीयत खराब न हो जाय।" यह कहकर और चेहरेसे उत्कण्ठा व्यक्त करके जान पड़ा कि शायद अपने व्यवहारके लिए वह क्षमा माँगनेको भी उद्यत हो रहा है; लेकिन यह बात उसके स्वभावमें शायद बिलकुल ही नहीं थी इसलिए और कुछ न कह कर वह तेजीके साथ आगत सज्जनोंका अनुसरण करके बाहर निकल गया।

जितनी दूर दिखाई पड़ा विजया उसकी ओर देखती रही। उसके बाद एक उसाँस लेकर धीरे धीरे अपने ऊपरके कमरेमें चली गई। कुछ समयसे जो अस्पष्ट पीड़ा काँटेके समान उसके मनमें प्रतिक्षण चुभ रही थी आज उसे अकस्मात् जान पड़ा कि उसका मानो अब कहीं पता ही नहीं है।

सन्ध्या उत्तीर्ण होनेपर मन्दिरकी प्रतिष्ठा यथारीति सम्पन्न हो गई। भीतरके एक विशेष स्थानमें दो अच्छी कुर्सियाँ पास पास रक्खी गई थीं उनमेंसे एकपर जब विजयाको असंख्य समारोहके साथ बैठाया गया तब बगलका दूसरा आसन किसके द्वारा पूर्ण होनेकी प्रतीक्षा कर रहा है, यह समझनेमें किसीको देर न लगी। क्षणभरके लिए विजयाके मनके भीतर आग-सी अवश्य जल उठी किन्तु उसके बाद ही जब विलासने आकर अपना निर्दिष्ट स्थान ग्रहण कर लिया तब उसके शान्त होनेमें भी अधिक समय नहीं लगा।

१५

जले हुए अनारदानाके खोल जैसी तुच्छ वस्तुके समान इस ब्रह्म-मन्दिरके

समारोहका अन्त होनेपर कहीं साथियोंकी दृष्टि अवज्ञापूर्वक हट न जाय इस आशङ्काके कारण विलासबिहारी उत्सवका सिलसिला किसी तरह समाप्त ही न करना चाहता था। लेकिन जो लोग निमन्त्रण पाकर आये थे उनके घर-द्वार में काम काज था दूसरेके खर्चपर केवल आनन्द मनाते रहनेसे काम नहीं चल सकता था, इसलिए एक दिन उत्सवको समाप्त करना ही पड़ा। उस दिन बूढ़े रासबिहारी छोटी-सी एक वक्तृता देकर अन्तमें बोले — जिनकी असीम कृपासे हम लोग पौत्तलिकताके घोर अन्धकारसे आलोकमें आ गये हैं उन्हीं एकमेवाद्वितीय निराकार परमब्रह्मके पाद पद्ममें यह मन्दिर जिन लोगोंने उत्सर्ग किया है उनका कल्याण हो। मैं सर्वान्तःकरणसे प्रार्थना करता हूँ कि निकट भविष्यमें ये दोनों निर्मल नवीन जीवन चिरकालके लिए सम्मिलित हों और वह शुभ मुहूर्त देखनेके लिए भगवान् हम सबको जीवित रक्खें। यह कहकर उन्होंने उन दोनों नवीन जीवनोंके प्रति इशारा करके कहा — बेटी विजया विलास तुम इन सबको प्रणाम करो। आप लोग भी हमारी सन्तानोंको आशीर्वाद दें।

विजया और विलासने पृथ्वीपर पास ही पास सिर टेक कर बड़े आदरसे प्रणाम किया उन लोगोंने भी अस्फुट कण्ठसे स्नेह आशीर्वाद दिये। इसके बाद सभा भङ्ग हो गई।

शामके बाद विजया जब घर जा पहुँची तब उसके मनमें कोई विरोध या व्याकुलता नहीं थी। उसके आनन्द और उत्साहसे उसका हृदय ऐसा परिपूर्ण हो उठा था कि वह अपने आप ही कहने लगी — पार्थिव सुख ही एकमात्र सुख नहीं है — बल्कि अपने लिए, दूसरोंके लिए सब सुखको उत्सर्ग कर देना ही श्रेय है।

यह बात उसने अपने मनको बार बार समझाई कि भले ही विलासके साथ मेरे मनका और कहीं मेल न हो पर उसके सम्बन्धमें हमारे बीच किसी दिन विरोध न होगा। बिछौनेपर लेटकर वह बार बार यही सोचने लगी — यह अच्छा ही हुआ कि विलासके समान एक निरहङ्कार धर्मपरायण कर्मनिष्ठ व्यक्तिके साथ मेरा जीवन चिरदिनके लिए मिलने जा रहा है। भगवानने मेरे द्वारा अपने अनेक काम पूरा करा लेने हैं इसीलिए उन्होंने मेरे मनकी गति बदल दी है।"

दूसरे दिन विलासने उससे हाथ जोड़ कर कहा — आप लोग यदि महीनेमें कमसे कम एक बार भी आकर मन्दिरकी मर्यादा बढ़ा जाया करें तो हम लोग

* बुतपरस्ती मूर्तिपूजा।

आजीवन कृतज्ञ रहेंगे। अनेक व्यक्ति इस अनुरोधको स्वीकार करके ही भर जाते।

रासबिहारी बाबू बोले— बेटी विजया तुम लोग यदि अपने मन्दिरका स्थायित्व चाहती हो तो दयाल बाबूको यहीं रख लेनेका यत्न करो।

विजयाने विस्मित और पुलकित होकर पूछा— यह क्या सम्भव है चाचाजी?

रासबिहारीने हँसकर कहा— सम्भव नहीं होता तो कहता क्यों बेटी! इन्हें मैं लड़कपनसे जानता हूँ,—एक प्रकारसे मेरे बाल्य-बन्धु हैं। गरीब होने पर भी दयाल धार्मिक आदमी हैं। तुम अपनी जमींदारीमें कोई एक काम दे दो तो उन्हें सहज ही रक्खा जा सकता है। मन्दिरके मकानमें भी कमरोंकी कमी नहीं है दो-चार कमरे लेकर वे मजेसे सपरिवार रह सकते हैं।"

इन वृद्ध सज्जनके प्रति विजयाकी सच्ची श्रद्धा हो गई थी। उनकी सांसारिक हीन अवस्थाकी बात सुनकर उस श्रद्धामें करुणाने योग दिया। वह उसी क्षण रासबिहारीके प्रस्तावका सानन्द अनुमोदन करके बोली— उन्हें यहीं रखिए। मैं सचमुच ही बहुत खुश हूँगी चाचाजी।

यही हुआ। दयालने आकर सपरिवार आश्रय ग्रहण कर लिया।

दिन कटने लगे। पूस समाप्त होकर आधा माघ भी बीत गया। जमींदारी और मन्दिरका काम सिलसिलेसे चलने लगा। कहीं कोई विरोध या अशान्ति है यह किसीकी कल्पनामें भी उदय नहीं हुआ।

नरेन्द्रकी कोई खबर नहीं मिली। मिलती भी क्या? सिर्फ दो दिनके लिए वह आया था सो दो दिनके बाद चला गया। तो भी ज्यों ही उस माइक्रोस्कोपकी ओर विजयाकी दृष्टि जाती थी त्यों ही एक व्यथा उसके मनमें जाग उठती थी। वह सोचती थी यदि उसके उस नितान्त दुःसमयमें इस चीजका मूल्य कुछ अधिक दे दिया जाता तो अच्छा होता। और एक बात स्मरण आनेसे उसे जितना आश्चर्य होता उतना ही वह कुण्ठित भी हो उठती थी। दो दिनकी जान-पहचानसे ही न जाने कैसे इस व्यक्तिके प्रति उसे इतना स्नेह उत्पन्न हो गया है! भाग्यवश वह प्रकाशित नहीं हुआ नहीं तो मिथ्या मोह एक दिन मिथ्यामें तो मिल ही जाता लेकिन उसकी लज्जाके छुपानेके लिए जीवन-भर कहीं जगह न मिलती। इसीलिए उन दो दिनोंके स्नेह-ममताके पात्रकी ज्यों ही उसे याद आती त्यों ही वह प्राणपणसे उसे दूर ठेल देती। इस तरह सारा महीना भी बीत गया।

ऋतुके आरम्भमें ही सहसा अत्यन्त गरमी पड़ने लगी और चारों तरफ बुखार फैलने लगा। जो पिछले पचास बाबू बुखारमें पड़े थे आज सवेरे उन्हें देखने जानेके लिए विमला कपड़े पहनकर बिलकुल तैयार होकर नीचे उतरी थी। बूढ़ा दरवान कन्हैयासिंह लाठी लानेके लिए अपने कमरेमें गया था और इसी बीच बाहरके कमरेमें बैठकर वह एक प्याला चाय पी रही थी।

"नमस्कार!"

विमला चौंक पड़ी। मुँह उठाकर देखा कि नरेन्द्र कमरेमें आ रहा है।

उसके हाथका प्याला हाथमें ही रह गया, वह अभिभूतके समान निःस्तब्ध आँखों उसे देखती रही। न उसने प्रति-नमस्कार किया और न बैठनेको कहा।

एक कुर्सीके पीछेसे नरेन्द्रने अपना डण्डा टिका दिया और वह एक कुर्सी खींचकर बैठ गया। उसने कहा "इस रास्तेसे तो मैं भी कहीं निकल रहा हूँ। और एक प्याला चाय लानेका हुक्म दे दीजिए।"

"देती हूँ" कहकर विमला हाथका प्याला रखकर बाहर चली गई। लेकिन खानसामेसे कहकर उसी क्षण लौटकर नहीं आ सकी। वह ऊपर जानेकी सीढ़ीकी रेलिंग पकड़कर चुपचाप खड़ी रह गई। उसका अन्तस्तल भीषण तूफानसे समुद्रके समान पागल हो उठा। वह नहीं जानती थी कि किसी भी कारणसे मनुष्यका हृदय इस प्रकार हिल उठ सकता है।

फिर भी वह साफ समझ रही थी कि जब तक यह आन्दोलन शान्त नहीं हो जाता, तब तक किसीके साथ सहज भावसे बातचीत करना असम्भव है। पाँच-छः मिनिट चुपचाप खड़ी रहकर जब उसने देखा कि खानसामा चाय लेकर आ रहा है, तब उसके पीछे पीछे कमरेमें प्रवेश किया।

खानसामेके चले जानेपर नरेन्द्रने विमलाके मुँहकी ओर देखकर कहा "आप मन ही मन बहुत विरक्त हो रही होंगी कि आप कहीं बाहर जा रही थीं, और मैंने बीचमें आकर बाधा डाल दी। लेकिन मैं आपको पाँच मिनटसे अधिक न रोकूँगा।"

विमलाने कहा "अच्छा पहले आप चाय पीजिए।" सहसा पश्चिम दिशाकी खिड़कीकी ओर दृष्टि जाते ही उसने आश्चर्यके साथ पूछा "खिड़कीको कौन खोल गया?"

नरेन्द्र बोला "कोई नहीं, मैंने ही खोला है।"

"किस तरह खोला?"

"जिस तरह सब लोग खोलते हैं—खींचकर। क्या कोई अपराध हो गया?"

विजयाने सिर हिलाकर कहा "नहीं, और फिर कुछ क्षणों तक उसकी लम्बी पतली उंगलियोंकी ओर देखते हुए कहा, "आपकी उँगलियाँ क्या कोमल हैं! इस खिड़कीके बन्द होनेपर पीछेसे जोरसे धक्का मारे बिना सिर्फ खींचकर खोल सके, ऐसा आदमी मैंने तो नहीं देखा।

यह सुनकर नरेन्द्रने हो हो करके अट्टहाससे घर भर दिया। यह वही हँसी है, स्मरण आनेपर विजयाका सर्वांग कण्टकित हो उठा। हँसी रुकनेपर नरेन्द्रने सरल भावसे कहा "सचमुच मेरी उँगलियाँ बड़ी कड़ी हैं। यदि जोरसे धक्का मार सकता हूँ तो मैं समझता हूँ कि किसी भी व्यक्तिका हाथ टूट जा सकता है।"

विजयाने हँसी दबाकर मुँहसे कहा 'और आपका सिर इससे भी कड़ा है। टक्कर लगनेसे—"

बात समाप्त होनेसे पहले ही नरेन्द्र फिर उसी प्रकार उच्च हास्य कर उठा। इस व्यक्तिकी हँसी प्रभातके आलोकके समान ऐसी मधुर ऐसी उपभोग्य वस्तु है कि उसके सुननेका लोभ किसी तरह संवरण नहीं किया जा सकता।

नरेन्द्रने पाकेटसे दो सौ रुपयोंके नोट निकालकर टेबुलपर रख दिये और कहा "इसीके लिए आया हूँ। मैं जालसाज हूँ, ठग हूँ, इस तरहकी और भी न जाने कितनी गालियाँ इन नोटोंके रुपयोंके लिए आपने खबर भेजी थीं। लीजिए अपने रुपये और दीजिए मेरी चीज।"

विजयाका मुँह पलक-भरमें लाल हो उठा; किन्तु उसी समय अपनेको सँभालकर वह बोली "और क्या क्या खबर भेजा था बताइए तो?"

नरेन्द्रने कहा "इतना मुझे याद नहीं है। उसे लानेके लिए कह दीजिए, मैं साढ़े नौकी गाड़ीसे ही कलकत्ते लौट जाऊँगा। अच्छा हुआ कि मैं कलकत्तेमें ही एक अच्छी नौकरी पा गया हूँ, मुझे उतनी दूर नहीं जाना पड़ा।"

विजयाका मुँह उज्ज्वल हो उठा। उसने कहा, "आपका भाग्य अच्छा है।"

नरेन्द्र बोला "हाँ। लेकिन मेरे पास अधिक समय नहीं है, नौ बज रहे हैं।" निमेष-भरमें ही विजयाके मुँहकी दीप्ति बुझ गई, लेकिन नरेन्द्रने उस ओर ध्यान ही नहीं दिया; और कहा "मुझे अभी जाना होगा—उसे लानेको कह दीजिए।"

विजया उसके मुँहकी तरफ आँखें उठाकर बोली 'क्या आपसे यही शर्त हुई थी कि आप दयापूर्वक रुपये लाये हैं, इसलिए तुरन्त ही मुझे उसे लौटा देना होगा?"

नरेन्द्रने कुण्ठित होकर कहा "नहीं, ऐसा तो नहीं है; लेकिन आपको तो उसकी कोई आवश्यकता नहीं है!"

"यह आपसे किसने कहा कि इस वक्त नहीं है इसलिए और किसी दिन भी न होगी!"

नरेन्द्रने सिर हिलाकर कहा "मैं जानता हूँ, यह वस्तु आपके किसी भी काम नहीं आयगी। पर मेरे—"

विजयाने उत्तर दिया "परन्तु बेचकर जानेके समय तो आपने कहा था कि इससे मेरा बड़ा उपकार होगा। और मेरे यह कहला भेजनेसे कि आप मुझे ठगा ले गये हैं आप नाराज हो रहे हैं! उस समय एक तरहकी बात और अब दूसरी तरहकी बात!"

नरेन्द्र लज्जासे एकदम मलिन हो गया। जरा देर चुप रहकर बोला "देखिए, तब मैंने सोचा था कि इस बढ़िया चीजको आप अपने व्यवहारमें कभी भी इस प्रकार न डाल रक्खेंगी। अच्छा, आप तो चीज गिरो रखकर भी रुपये उधार देती हैं, तब इसे भी क्यों न ऐसा ही समझ लीजिए। मैं इन रुपयोंका सूद देता हूँ।"

विजयाने कहा "कितना सूद दीजिएगा?"

नरेन्द्र बोला "जो कुछ वाजिब सूद हो मैं देनेको राजी हूँ।"

विजयाने गरदन हिलाकर कहा "पर मैं राजी नहीं हूँ। रुपयोंकेमें बेचना कर देता है, इसे मैं चार ही रुपयोंमें सहज ही बेच सकती हूँ।"

नरेन्द्रने धीमे स्वरमें होकर कहा "तो वही कीजिए, जाइए। मुझे आवश्यकता नहीं है। जो दो ही रुपयोंमें चार सौ रुपए चाहता है उससे मैं कुछ भी नहीं कहना चाहता।"

विजयाने मुँह नीचा करके आपसे-आप हँसी दबाकर जिस समय मुँह उठाया उस समय केवल इस व्यक्तिको छोड़कर संसारमें और किसीके भी सामने, जान पड़ता है, वह अपने मनका भाव न छिपा सकती। लेकिन उस ओर नरेन्द्रकी दृष्टि ही न थी, इसलिए उसने तीक्ष्ण भावसे कहा "यदि पहले जानता कि आप ऐसी लालची हैं, तो मैं कभी न आता।"

विजयाने भले आदमीकी तरह कहा "रुपयेकी भलाईमें जब मैंने आपका सब कुछ दूर कर लिया तब भी नहीं जाना?"

नरेन्द्रने कहा "क्योंकि, उसमें आपका हाथ नहीं था। वह काम

आपके पिता और मेरे पिता दोनों कर गये थे। उसके लिए हम कोई अपराधी नहीं हैं। अच्छा अब मैं चला।"

विजयाने कहा 'खाकर नहीं जाइएगा?'

नरेन्द्रने रूखे भावसे कहा "नहीं खानेके लिए नहीं आया।"

विजयाने शान्त भावसे पूछा "अच्छा आप तो डाक्टर हैं,—आप हाथ देखना जानते हैं?"

इस बार उसके ओठोंमें हँसीकी रेखा फूट आई थी या नहीं। नरेन्द्र गुस्सेसे जल कर बोला, क्या मैं आपके उपहासका पात्र हूँ? रुपये आपके पास ढेरों हो सकते हैं लेकिन उनके बदले यह अधिकार किसीको नहीं मिल जाता सो समझ रखिए। आप जरा हिसाबसे बात कीजिए।" यह कह उसने छाता उठा लिया।

विजयाने कहा "नहीं तो आपके शरीरमें बल है और हाथमें डंडा है, यही न?"

नरेन्द्र छाता फेंककर हताश भावसे कुर्सीपर बैठ गया और बोला छि! छि! आप जो मुँहमें आता है वही कह देती हैं। आपसे मैं नहीं जीत सकता।"

'लेकिन देखिए, इस बातको याद रखिएगा।" यह कहकर वह अपनेको और न सँभाल सकनेके कारण हँसी दबाती हुई फुर्तीसे चल दी।

सूने कमरेमें नरेन्द्र हतबुद्धिके समान चुप चाप बैठे रहनेके बाद अन्तमें अपना छाता हाथमें ले ज्यों ही उठकर खड़ा हुआ त्यों ही विजयाने कमरेमें आकर कहा आपके ही कारण मुझे इतनी देर हो गई इसलिए अब आप भी नहीं जा सकेंगे। आप हाथ देखना जानते हैं, चलिए मेरे साथ।'

नरेन्द्रने जानेकी बातपर विवाद नहीं किया। तथापि पूछा हाथ देखने कहाँ जाना होगा?"

उसके मुँहकी ओर कुछ देर देखकर विजया इस बार गम्भीर हो गई। उसने कहा यहाँ अच्छे डाक्टर नहीं हैं। हम लोगोंके जो नये आचार्य हैं,—उन पर मेरी असाधारण श्रद्धा है—आज दो दिन हुए, उन्हें बहुत बुखार आ रहा है चलिए, एक बार देख आइए।"

अच्छा चलिए।"

विजयाने कहा, तो जरा ठहरे रहिए। उस परेश लड़केको तो आप पहचानते हैं—परसोंसे उसे भी बुखार है। मैंने उसे उसकी माँसे यहाँ ले आनेको कह दिया है।"

इतनेमें ही परेशकी माँ बच्चेको आगे करके दरवाजेके पास आकर खड़ी हो गई। नरेन्द्रने उसकी ओर थोड़ी देर दृष्टिपात करके कहा "अपने बच्चेको ले जाओ माई, मैंने उसे देख लिया।"

बच्चेकी माँ और विजया दोनों चकित हो रहीं। माँने विनतीके स्वरमें कहा "इसके सारे शरीरमें भयानक दर्द है बाबू, जरा देखकर कोई दवाई बता दें —"

"दर्द मैं समझता हूँ माई, अपने बच्चेको घर ले जाओ हवा-जवा मत लगने देना। दवाई मैं भेजे देता हूँ।"

माँ कुछ दुखी होकर बच्चेको लेकर चली गई। तब नरेन्द्रने विजयाके विस्मित मुँहकी ओर देखकर कहा "इस ओर चेचक बहुत फैली है और इस बच्चेके मुँहपर भी चेचकके चिह्न उभरे हैं। जरा सावधानीसे रहनेकी कृपा कीजियेगा।"

विजयाका मुँह फक पड़ गया —"चेचक! चेचक क्यों होगी!"

नरेन्द्रने कहा "क्यों होगी सो कहना कठिन है। लेकिन हुई है। आज ही यद्यपि अच्छी तरह दिखाई नहीं पड़ेगी लेकिन कल उसकी ओर देखते ही जान लीजियेगा। मुझे जान पड़ता है, आपके आचार्य महाराजको देखनेकी भी अब विशेष आवश्यकता नहीं है। उनकी बीमारीका भी सम्भवतः कल तक ठीक पता लग जायगा।"

डरके मारे विजयाका सारा शरीर सनसना उठा। वह अवश निर्जीवके समान कुर्सीपर टिककर बैठ गई और अस्फुट स्वरसे बोली "मुझे भी निश्चय चेचक निकलेगी नरेन्द्र बाबू, मुझे भी कल रातको बुखार आया था मेरी देहमें भी भयानक पीड़ा है।"

नरेन्द्र हँसा, उसने कहा "पीड़ा भयानक नहीं है, भयानक है आपका डर। यदि बुखार कुछ आ ही गया हो तो उससे क्या होता है! आसपास चेचक दिखाई पड़ रही है इसलिए गाँव-भरके सब लोगोंको चेचक निकल आयगी, इसका तो कोई मतलब नहीं।"

विजयाकी दोनों आँखें छलछला उठीं "निकलेगी, तो मेरी देख-भाल कौन करेगा! मेरा कौन है!"

नरेन्द्रने फिर हँसकर कहा, "देख-भाल करनेवाले लोग बहुत मिल जायँगे उसकी चिन्ता नहीं है। लेकिन आपको कुछ भी न होगा।"

विभवा हताश भावसे सिर हिलाकर बोली — "न हो सो ही अच्छा है। लेकिन कल रातको मुझे सचमुच ही बहुत बुखार हो गया था। तो भी सवेरे जबर्दस्ती उठे हाथ-मुँह धोकर आपको देखने आ रही थी। इस समय भी मुझे थोड़ा थोड़ा बुखार है, यह देखिए।" कहकर उसने दाहिना हाथ बढ़ा दिया। नरेन्द्रने निकट जाकर उसका कोमल शिथिल हाथ अपने दाहिने हाथमें लेकर और कुछ देर बाद छोड़ देकर कहा — "आज अब कुछ खाइएगा नहीं, चुपचाप पड़ी रहिए। कोई डर नहीं है, कल-परसों मैं फिर आऊँगा।"

"आपकी दवा?" कहकर विभवा आँखें मूँदकर मौन हो गई। लेकिन बात तीरके समान नरेन्द्रके मर्म-स्थलमें जाकर बिंध गई। अवश्य प्रत्युत्तरमें और कोई बात उससे नहीं कही, लेकिन चुपचाप बक्सा उठाकर जब वह कमरेसे बाहर निकल गया तब इस यथार्थ रमणीके असहाय मुखकी दया-भिक्षा उसके व्यथित हृदय-चित्तको एक किनारेसे दूसरे किनारे तक मथ डालने लगी।

दूसरे दिन कामकी भीड़में किसी प्रकार भी वह अवकाश नहीं ढूँढ सका। लेकिन तीसरे दिन सवेरे नौ बजेके भीतर ही वह गाँवमें आ पहुँचा। मकानमें पैर रखते ही प्राणकृष्णने तुरन्त आकर कहा — "भाभीको बहुत बुखार है बाबू, आप एक बार ऊपर चलिए।"

नरेन्द्र जिस समय विभवाके कमरेमें पहुँचा उस समय वह तेज बुखारके मारे शय्यापर छटपटा रही थी। एक प्रौढ़ा नारी घूँघटसे मुँह ढँके सिरहानेके निकट बैठी पंखेसे हवा कर रही थी और समीप ही कुर्सियोंपर पिता-पुत्र रामविहारी और विलासविहारी असाधारण रूपसे गम्भीर मुँह किये बैठे थे। यह बतलानेकी जरूरत नहीं कि दोनोंमेंसे किसीने भी शिष्ट डाक्टरके आगमनसे आदर और आग्रहसे भाव नहीं उठा। विलासविहारीने भूमिका बिना बात बढ़ाये बिना सीधे ही पूछा — "आप ही तो परसों आकर देखभाल कर दिया गये थे?"

बात इतनी छोटी ही थी कि सहसा उसका कोई जवाब ही नहीं दिया जा सकता था। लेकिन प्रश्न सुनकर विभवाने अपनी लाल आँखें खोलकर देखा। पहले तो वह मानो कुछ समझ ही नहीं सकी, उसके बाद दोनों हाथ बढ़ाकर उसने कहा — "आइए।"

निकट और कोई आसन न होनेके कारण नरेन्द्र उसकी शय्याके ही एक छोरपर जाकर बैठ गया। निमेष-मात्रमें ही विभवाने दोनों हाथोंसे जोरके साथ

उसका हाथ दबाकर कहा "आप कल आ जाते तो आज मुझे इतना बुखार न होता। मैं सारे दिन राह ताकती रही।"

नरेन्द्र डाक्टर ठहरा, उसे समझनेमें देर नहीं लगी कि तेज बुखार बम फटनेके नशेके समान अनेक आश्चर्यमय बातें मनुष्यके भीतरसे खींच लाता है; लेकिन स्वस्थ अवस्थामें उनका अस्तित्व न मुँहमें न हृदयमें कहीं भी शायद नहीं रहता। लेकिन उन्हें सुनकर समीप ही बैठे कुर्सीपर पिता-पुत्रके सिरसे पाँव तक क्रोधसे कम्पित हो उठे। नरेन्द्रने सहज सान्त्वनाके स्वरमें प्रसन्न मुखसे कहा "डर क्या है, बुखार दो दिनमें ही अच्छा हो जायगा।"

विजयाने उसका हाथ धुकधुक हृदयके ऊपर खींचकर अत्यन्त करुण स्वरमें कहा, "लेकिन मैं जब तक अच्छी न हो जाऊँ, बोलो कि तुम तब तक कहीं न जाओगे। तुम चले गये तो मैं शायद बचूँगी नहीं।"

जवाब देनेके वक्त नरेन्द्रके मुँह खोलते ही दो जोड़ी भीषण आँखोंसे उसकी आँखें जा लगीं। उसने देखा कि जिस प्रकार भूखा बाघ अत्यन्त निकटवर्ती निःसहाय शिकारको चीर फाड़नेके पहले देखता है रासबिहारी भी ठीक उसी प्रकार दो प्रदीप्त आँखें खोले उसकी तरफ देख रहा है।

१६

नरेन्द्र अवाक् होकर देखता रहा। विजयाके प्रश्नका उत्तर नहीं दिया जा सका। आँखोंकी हिंस्र दृष्टि केवल मनुष्य ही नहीं पशुसे जानवर तक समझ जाते हैं इसलिए वह चाहे जितना सीधा व्यक्ति हो और संसारकी जानकारी उसे चाहे जितनी कम हो क्षणमें वह पलक मारते ही जान गया कि इन कुर्सियोंपर बैठे पिता-पुत्रकी दृष्टि और चाहे जो भाव व्यक्त करती हो हृदय-की प्रीति व्यक्त नहीं करती। वह जानता था कि ये लोग मुझपर प्रसन्न नहीं हैं। विजयाको जब वह माइक्रोस्कोप दिखाने आया था तब अपने कानोंसे भी उनकी अनेक बातें सुन गया था और जिस दिन रासबिहारी अपने हाथसे चौसठ देने उसके मस्तकपर मले थे; उस दिन भी हितोपदेशके छलसे वे कम कड़ी बातें सुना कर नहीं छोड़े थे। लेकिन वह यह नहीं सोच सका कि जब विजया ठगी नहीं गई और जीत जब दो चीजोंकी जगहपर चार चीजें मिल सकती है, जीत हो चुकी है, तब उसके कारण क्यों अब भी उनका रोष बना हुआ है। अब रहा केवल डर दिखा जाना। सो वह डर दिखाकर तो गया नहीं,—बल्कि बात इसके

वृत्ता

एकदम गन्दी है। यह सुन और मिसीने कयामा या विजयाके निजके मुँहसे ही ऐसा यह निश्चित करके पहले ही विलासबिहारी और एक बार चीत्कार कर उठा। कालीपदन भाग पाता है, केवल पुरुषत्वमय ही थोड़ा-सा पर्दा हटाकर मुँह बनाया था कि विजयाकी दृष्टि उसपर पड़ गई और वह एकाएक हिन्दीमें गरज उठा। बहुत सम्भव है हिन्दी भाषा अधिक क्रोध व्यक्त कर सकती हो। उसने कहा [illegible] अरे सुनारके बच्चे एक कुर्सी ले आ।"

कमरेके सभी लोग चौंक उठे। कालीपद [illegible] सुनारके बच्चे और [illegible] ले आ' समझ भय तो समझ गया लेकिन कुर्सी आखिर क्या चीज है, यो अंदाज न कर पानेके कारण कमरेमें कभी इस ओर और कभी उस ओर मुँह घुमाकर देखने लगा। वृद्ध रासबिहारीने अपनेको संयत कर लिया था; उन्होंने गम्भीर स्वरसे कहा "उस कमरेमेंसे एक चेयर ले आओ कालीपद, और बाबूके बैठनेके लिए दो।" कालीपदके शीघ्रतासे चले जानेपर, वे लड़कीकी तरफ मुखातिब होकर अपने शान्त-उदार कण्ठसे बोले [illegible] यह रोमीका कमरा है। ऐसे हेरटी * मत बनो बिटिया। * हेम्पर हट करना किसी भी भले आदमीको शोभा नहीं देता।

लड़केने उद्धत भावसे जवाब दिया [illegible] ऐसी हालतमें 'हेम्पर हट' न होगा तो और क्या होगा? बताइए। हरामजादे नौकरके बजाय पढ़े-लिखे ऐसे एक असभ्य बार नीचे लाकर बिठा दिया जो भद्र महिलाका सम्मान रखना तक नहीं जानता।'

अकस्मात् भारी धक्का लगनेपर जिस प्रकार गधेसे पर व्यक्तिका मस्तक ऊपर आता है, ठीक उसी प्रकार विजयाकी ज्वरकी बेहोशी दूर हो गई। उसने चुपचाप नरेन्द्रका हाथ छोड़ दिया और दीवालकी तरफ मुँह करके करवट बदल ली।

कालीपदने तुरन्त एक कुर्सी लाकर रख दी। उसके आते ही नरेन्द्र बिछौनेसे उठकर उसपर बैठ गया। रासबिहारीने विजयाके हृदयका भाव लक्ष्य करनेमें भूल नहीं की। वे प्रसन्नतासे कुछ हँसकर लड़केकी ओर ही लक्ष्य करके बोले [illegible] मैं सब कुछ समझता हूँ विलास। यह भी मानता हूँ कि इस सम्बन्धमें तुम्हारा नाराज होना अस्वाभाविक नहीं वरन् अत्यन्त स्वाभाविक है, लेकिन तुम्हें यह सोचना उचित था कि सब कोई जान बूझकर अपराध नहीं करते। सब ही यदि सब प्रकारकी रीति-नीति आचार-व्यवहार जानते होते तो फिर चिन्ता ही क्या थी? इसी-लिए क्रोध न करके शान्त भावसे ही मनुष्यकी भूल-चूक सुधार देनी पड़ती है।"

* उतावले। × 'हेम्पर हट' करना = मिजाज खो देना।

यह किसीको भी समझनेमें देर नहीं लगी कि भूल-चूक किसकी थी। विलासने कहा, "नहीं बाबूजी, इस प्रकारका इम्पर्टिनेंस * सहन नहीं होता। इसके अतिरिक्त हमारे इस घरके नौकर-चाकर जैसे अभागे हैं, वैसे ही बदजात भी हो गये हैं। कल ही मैं सबको निकाल बाहर करूँगा तब दम लूँगा।"

रासबिहारीने फिर थोड़ा हँसकर स्नेहपूर्वक तिरस्कारकी भंगीसे इस बार, जान पड़ता है, कमरेकी दीवालोंको सुनाकर कहा, "जब इसका मन खराब होता है तब यह क्या क्या कह बैठता है, कुछ ठिकाना ही नहीं। और सिर्फ इसका ही आखिर दोष क्या है, मैं बूढ़ा आदमी हूँ, फिर भी बीमारीकी बात सुनकर कितना घबरा गया था। एक तो मकानमें ही एक व्यक्तिको पेचिश निकली है, और फिर ये सब बिगड़ गये।"

इतनी देर तक नरेन्द्रने कोई बात नहीं की थी, इस बार उसने बाधा देकर कहा, "नहीं, मैं किसी प्रकारका भय दिखाकर नहीं गया।"

विलासने जमीनपर पैर पटककर तेजीके साथ कहा, "निःसन्देह भय दिखला गये थे। कालीपद गवाह है।"

नरेन्द्रने कहा, "कालीपदने गलत सुना है।" प्रत्युत्तरमें विलास और न जाने कौन-सी बेहूदगी करने जा रहा था कि उसके पिताने रोककर कहा, "अरे यह क्या करते हो विलास! जब ये अस्वीकार कर रहे हैं, तब क्या कालीपदका विश्वास किया जा सकता है? निश्चय ही इनकी बात सच है।—"

विलासके कुछ कहनेकी चेष्टा करते ही दूरसे इशारेसे मना करके कहा, "इस मामूली बीमारीसे ही बुद्धि मत खो बैठो विलास, स्थिर होओ। मंगलमय जगदीश्वर केवल हमारी परीक्षा करनेके लिए ही विपत्ति भेज देते हैं। मैं तो सोच ही नहीं सकता कि विपत्तिमें पड़नेपर तुम लोग सबसे पहले यह बात क्यों भूल जाते हो?"

थोड़ा ठहरकर उन्होंने फिर कहा, "और यदि इन्होंने सचमुच बीमारीकी बात कह ही दी तो उससे भी क्या होता है? बहुतसे पास-शुदा अच्छे अच्छे बुद्धिमान् डाक्टरोंसे भी भूल हो जाती है, फिर ये तो बच्चे हैं।" इसके बाद नरेन्द्रकी तरफ मुँह करके बोले, "और बुखार तो तब बहुत मामूली ही बता रहे हैं? चिन्ता करनेका कोई कारण नहीं है, यही न आपका मत है?"

* ढिठाई। गुस्ताखी।

नरेन्द्रने आनेके समयसे अब तक अनेक अपमान चुपचाप सह लिये थे लेकिन इस बार वह एक ऐसा जवाब दिये बिना न रह सका। उसने कहा "मेरे मन में क्या आता-जाता है, बताइए! मुझपर तो आप निर्भर हैं नहीं। बल्कि इससे अच्छा तो यह है कि आप किसी अच्छे पासशुदा विलायती डाक्टरको दिखाकर इसकी सम्मति-असम्मति ले लीजिए।"

जवाबमें बदतमीजी भले ही हो पर यह जवाब देनेका उसे अधिकार था। लेकिन विमल एकदम उछल पड़ा और मारनेको उद्यत होकर चिल्ला उठा "मैं कहे देता हूँ कि किसके साथ बात कर रहे हो यह ख्याल रखकर बात करो। यदि यह कमरा न होता, अगर और कहीं तुम होते तो तुम्हारा यह ख्याल करना—"

इस व्यक्तिगत बात-चीतसे अपने ही समस्या पैदा करके मनमाना करना उचित कर देनेका प्रामाण्य प्रबल देखकर नरेन्द्र विस्मयसे स्तम्भित हो गया। लेकिन क्यों किस कारण यहाँ उसके व्यवहारमें कौन-सा अपराध घटित हो रहा है, कुछ भी हो वह किसी प्रकार स्थिर नहीं कर सका। असल कारण यह था कि नरेन्द्र यह अब भी नहीं जानता था कि इस आत्मीय [illegible] किस वजह है। विमलाके यहाँ आनेके साथ ही साथ मौके अनुभवसिद्ध ज्योतिषियोंका एक जब विमलसे और उसके भविष्य-सम्बन्धी चर्चा करके समयका सद्व्यवहार करता था तब इस भिन्न-मतावलम्बी नवीन वैज्ञानिकका अत्यन्त मनोयोग [illegible] दोनोंके सम्बन्ध-निरूपणमें निमग्न था मौकी अनुभूति उसके मनोलोक पहुँची ही नहीं। उसके बाद माघ-मन्दिर-प्रतिष्ठाके दिन जब बात पक्की होकर सर्वत्र प्रसिद्ध हो गई, तब वह उनसे अलग गया था। आज पिता-पुत्रकी बातचीतने उसे बीच बीचमें उसे एक अनिर्देश्य और अस्पष्ट व्यथाके समान कुछ खटक असह्य रहा था लेकिन विचारके द्वारा उसे सुस्पष्ट करनेका न तो उसे समय मिला और न इसका प्रयोजन ही उसे था। ठीक इसी समय विमलाने इस ओर मुँह फिराया और नरेन्द्रके चेहरेपर अपनी दोनों व्यथित-उत्पीड़ित आँखें गड़ाकर कहा, "मैं जितने दिन जीऊँगी आपके निकट कृतज्ञ रहूँगी। लेकिन इन लोगोंने जब दूसरे डाक्टरके द्वारा ही मेरी चिकित्सा कराना स्थिर किया है, तब आप और निरपेक्ष अपमान सहन मत कीजिए। लेकिन लौटते वक्त दयालु बाबूसे एक बार देखते जाइएगा मेरी सिर्फ यह विनती स्वीकार कर लीजिए।' कहकर प्रत्युत्तरकी प्रतीक्षा किये बिना ही उसने मुँह फेर लिया। रासबिहारीने बहुत पहले ही असल मामला समझ लिया था वे तभी झट बोल उठे, विलक्षण बात है! जिसे

तुमने दुःख भेला है, भला उसका अपमान करनेकी किसमें ताकत है ! ”

उसके बाद अनेकों अनेक प्रकारसे भर्त्सना करके वे बार बार इसी बातका प्रचार करने लगे कि भारी बीमारी समझकर व्याकुलताके कारण विलासका हिताहितज्ञान लुप्त हो गया है । साथ ही साथ एकमात्र और अद्वितीय निराकार परब्रह्म परमेश्वरके सोहंके सम्बन्धमें भी उन्होंने अनेक आध्यात्मिक और निगूढ़ तत्त्वकी बातोंका मर्म उद्घाटित करके दिखा दिया । नरेनने कोई बात नहीं कही यह पिता और पुत्र-प्रसंग तत्त्व-कथा और अपमानका बोझ दोनों कन्धोंपर लादे चुपचाप उठ खड़ा हुआ और अपनी और छोटा बैग हाथमें लेकर उसी प्रकार चुपचाप बाहर निकल गया । रासबिहारीने पीछेसे पुकारकर कहा — नरेन्द्र बाबू, आपसे एक जरूरी बातकी चर्चा करनी है — और तब तुरन्त उठकर ब्रह्मको [illegible] एकमात्र और अद्वितीय रूपसे विलासके कमरेमें प्रतिष्ठित करके वे उसके पीछे पीछे नीचे उतर गये ।

नरेन्द्रके बाहरके एक कमरेमें बैठकर उन्होंने भूमिकाके बहाने कहा — पाँच आदमियोंके सामने तुम्हें बाबू कहूँ या कुछ भी कहूँ बेटा — लेकिन यह नहीं भूल सकता कि तुम हमारे उसी जगदीशके लड़के हो । वनमाली और जगदीश दोनों ही स्वर्गवासी हो गये — सिर्फ मैं ही बचा हूँ । हम तीनों क्या थे, उसका आभास तो तुम्हें उस दिन दे दिया था, लेकिन खोलकर नहीं बतला सका । नरेन्द्र, मेरा हृदय मानो फटा जाना चाहता है ।'

वास्तवमें, उस दिन माइक्रोस्कोपकी कीमत देते समय उन्होंने अनेक बातें की थीं । नरेन्द्र चुपचाप सुनता रहा ।

सहसा रासबिहारी मानो उस दिनकी बातें याद आ जानेसे बोल उठे — उस आकस्मिक काण्डको देख लेनेके कारण मैं सचमुच ही तुमपर बहुत असन्तुष्ट हो गया था नरेन्द्र । फिर कुछ हँसकर बोले, " लेकिन देखो बेटा — असन्तुष्ट हो गया था " अमोघ अमन्त ऐसा है । दुनियादारीके लिहाजसे असन्तुष्ट नहीं हुआ — कहना ही अच्छा होता — कहने सुननेमें सब तरहसे निरापद, — लेकिन जाने दो । " फिर एक उसाँस लेकर बहुत कुछ आत्मगत भावसे ही कहने लगे, " मेरे द्वारा जो असाध्य है उसके लिए दुःख करना वृथा है । न जाने कितने लोगोंके निकट बुरा बनता हूँ, न जाने कितने लोग गालियाँ देते हैं । हितैषीगण कहते हैं, " अच्छा तुम झूठ कभी नहीं बोल सकते रासबिहारी सो बड़

बोलनेके लिए हम लोग भी नहीं कहते लेकिन कुछ घुमा फिराकर बोलनेसे ही यदि गाली-गलौजसे छुट्टी मिल जाती है तो ऐसा क्यों नहीं करते ? मैं सुनकर अवाक् होकर सोचने लगता हूँ बेटा कि जो हुआ नहीं उसे बनाकर घुमा फिराकर कैसे कहा जा सकता है ? यह जानता हूँ कि लोग मेरा भला ही चाहते हैं, किन्तु सोलहआना मनमानेने मुझे किस सामर्थ्यसे वंचित कर रखा है यह असाध्य-साधन आखिर मैं किस प्रकार करूँ ? जाने दो बेटा, अपने मन-मर्मी चर्चा करना मैंने कभी पसन्द नहीं किया। इससे मुझे बड़ी अरुचि है। बापको तुम दुखी न होने इसीलिए इतनी बातें कहनी पड़ीं। फिर उदास नेत्रोंसे क्षण भर उसकी कमियोंकी ओर देखते रहकर बाबू धीमे स्वरसे बोला और एक बात जानते हो नरेन्द्र इस संसारमें विश्वाससे रहा असम्भव है आज भी इसीमें पता लगते हैं लेकिन क्या करने और क्या कहनेसे यहाँ सुख-सुविधा मिलती है, सो आज तक भी मेरे इस पके सिरमें न आ सका। नहीं तो यह बात तुम्हारे मुँहपर ही कहकर कि तुमसे मैं असन्तुष्ट हुआ था क्यों तुम्हें ठेस पहुँचाता ?——"

नरेन्द्र विनयके साथ बोला 'जो सच है वही आप कह रहे हैं। इसमें दुःखी होनेकी तो कोई बात नहीं है।——"

रासबिहारी मस्तक हिलाते हिलाते बोले नहीं नहीं यह बात मत कहो नरेन्द्र कठोर बातकी ठेस लगती ही है। जो सुनता है उसे तो ठेस लगती ही है, जो कहता है, उसको भी कम ठेस नहीं लगती बेटा जगदीश्वर ! "

नरेन्द्र नीचा मुँह किये चुप बैठा रहा। रासबिहारी हृदयका मर्मोच्छ्वास संवरण कर लेनेके बाद कहने लगे लेकिन उसके बाद फिर चुप नहीं रह सका। मैंने सोचा यह कैसी बात है। यह बहुत दुःखमें ही अपनी यह आवश्यकताकी वस्तु बेच गया है। उसकी कीमत जो भी हो लेकिन बात तय हो जा चुकी है, तब और कुछ तो सोचा ही नहीं जा सकता। कीमत देनेमें भी देरी नहीं की जा सकती। मैंने मन ही मन कहा हमारी विजया बेटीकी जब इच्छा हो और जितने दिनोंमें देनेकी इच्छा हो दुखे दे, लेकिन मैं अभी जाऊँ और घर जाकर दे आऊँ। यह बेचारा अब न रुपये पाकर ही निश्चिन्त हो सकेगा, तब एक दिनकी भी देरी करना उचित नहीं है। और फिर जब कि यह हमारे वनमालीका लड़का है।

नरेन्द्रने उस समयकी कटु बातें स्मरण करके वेदनाके साथ पूछा क्या उसकी दाम देनेकी इच्छा नहीं थी ?'

वृद्धने गम्भीर होकर कहा " नहीं यह बात मेरे मनमें तो नहीं आई नरेन्द्र। लेकिन तुम तो जानते हो—नहीं जाने दो। " कहकर वे सहसा मौन हो गये।

बार भी इसमेंसे सफाई हो जानेकी बात एक बार नरेन्द्रके मुँह तक आ गई, किन्तु उसी समय न जाने कैसा एक संकोच-सा होने लगनेसे इस सम्बन्धमें फिर उसने कोई बात नहीं कही।

रासबिहारीने इस बार असलमानी बात छेड़ी। वे आदमी पहचानते थे। नरेन्द्रकी आजकी बातचीत और व्यवहारसे उन्हें घोर सन्देह उत्पन्न हो गया था कि अब तक भी यह असल बात नहीं जानता, और इस प्रकारके अन्यमनस्क और उदासीन प्रकृतिके लोग होते ही ऐसे हैं कि जब तक इनकी आँखोंमें उँगली देकर न दिखा दिया जाय, वे खुद अनुसन्धान करके कभी कुछ नहीं जानना चाहते। वे बोले " विजयाके आचरणसे मैं जितना दुखी हुआ हूँ, उतनी ही लज्जा भी मैंने अनुभव की है। इस मामलेमें बेशर्मीकी बात ही कहता हूँ। विजया विलासकी जगह लेकर यदि उसे बरीक्षी तब तो कोई बात ही नहीं उठ सकती थी। तुम्हीं बताओ भला यह क्या उसका कर्तव्य नहीं था ? "

विजयाका कर्तव्य ठीक तरहसे न समझ सकनेके कारण नरेन्द्र जिज्ञासु मुखसे ताकता रहा। रासबिहारीने कहा " उसकी बीमारीकी खबर पाकर ही विलास कितना व्याकुल हो गया है, यह तो तुम्हें समझानेकी जरूरत ही नहीं है। ऐसा ही स्वाभाविक है। सारी भलाई-बुराई सारी जिम्मेदारी केवल उसीके सिरपर ही तो है। *चिकित्सा और चिकित्सक स्थिर करना भी तो उसीका काम है।* उसकी राय बिना तो कुछ हो नहीं सकता। विजयाने खुद भी तो अन्तमें यह समझ लिया लेकिन दो दिन पहले ही सोच लेती तो ये सब अप्रिय घटनायें न हो पातीं। अब यह बिलकुल जरूरी नहीं है—सोचना तो उचित था। "

आखिर क्यों उचित था यह तब तक समझ न पानेके कारण नरेन्द्र इसके प्रश्नका अनुमोदन न कर सका। लेकिन फिर भी उसके अन्तस्तलमें आशङ्कासे धकधक-धुकधुक होने लगी। और समझ लेने जैसी बात भी उसके कण्ठसे बाहर नहीं निकली। वह केवल दोनों शंकित आँखें वृद्धके मुँहकी ओर करके चुपचाप देखता रहा।

रासबिहारी बोले " लेकिन बेटा तुम विजयाके मनकी अवस्था समझकर अपने मनमें कोई ग्लानि नहीं रख सकोगे। मेरा एक अनुरोध और है नरेन्द्र इन लोगोंका विवाह बैसाखमें होगा यदि कलकत्तेमें ही रहो तो यह आशा रखता हूँ कि इस शुभ कार्यमें तुम्हें योग देना होगा।

नरेन्द्र बात नहीं कर सका, उसने सिर्फ गरदन हिलाकर बताया, 'अच्छा।'

रासबिहारी तब पुलकित चित्तसे अनेक बातें कहने लगे। एक तो यह कि यह विवाह भाग्यसम्बन्धी एकान्त इच्छासे हो रहा है, और दूसरे यह सम्बन्ध वर-कन्याके जन्म-समयमें ही स्थिर हो गया था। इस प्रसंगमें विजयाके परलोकगत पितासे कौन-कौन-सी बातें हुई थीं इत्यादि बहुत पुराने इतिहासका विवरण करते करते सहसा वे बोल उठे "अच्छी बात है, तो कलकत्तेमें ही क्या अब रहना होगा? काम मिलनेकी कुछ आशा पाता है?"

नरेन्द्रने कहा, "हाँ। एक विलायती दवाइयोंकी दूकानमें मामूली-सा काम पा गया हूँ।"

रासबिहारी खुश होकर बोले, "अच्छी बात है, अच्छी बात है, दवाइयोंकी दूकानमें—क्या पैसा है! टिककर रह सके तो आखिर सिलसिला जमा लोगे।"

नरेन्द्र तो इस इशारेके पासमें भी नहीं फटका। उसने कहा, "जी हाँ।"

सुनकर रासबिहारी अब कुतूहलको और न दबा सके। कुछ इधर-उधर करके पूछ बैठे, "तो फिर वेतन कितना देते हैं?"

नरेन्द्रने कहा, "बादको कुछ अधिक दे सकते हैं। इस समय तो सिर्फ चार सौ रुपये देते हैं।"

'चार सौ!' रासबिहारी विस्मित मुखसे आँखें कपालपर चढ़ाकर बोले "वाह! अच्छा अच्छा। सुनकर बहुत खुशी हुआ।"

इस ओर दिन ढलता देखकर नरेन्द्र उठ खड़ा हुआ। दयाल बाबूके दो-चार चेचकके दाने दिखाई पड़े थे, उन्हें भी देखने आया था। उसने पूछा "परेश अब कैसा है, आप बता सकते हैं?"

रासबिहारीने अम्लान मुँहसे बताया, "सुना है उसके माँबापके घर भिजवा दिया है, कैसा है सो नहीं कह सकता।"

दोनों ही कमरेसे बाहर निकल आये। लेकिन रासबिहारीको फिर ऊपर जाना था। शायद प्रतीक्षा कर रहा होगा। उसने चिकित्साका क्या प्रबन्ध किया इसका भी पता लगाना आवश्यक था। बरामदेके अन्त तक जाकर नरेन्द्र क्षणभरके लिए रुक गया, उसके बाद धीरे धीरे वापस आकर रासबिहारीसे बोला, "आप मेरी ओरसे विलास बाबूसे एक बात कह दीजिए कि, तब बुखारमें मनुष्यका आवेग अत्यन्त साधारण कारणसे भी उच्छ्वसित हो उठता है। विजयाके सम्बन्धमें डाक्टरके मुँहकी इस बातपर वे अभियोग न करें।" यह कहकर वह मुँह फिराकर कुछ तेज चालसे चला गया।

स्नान नहीं आहार नहीं सिरपर कड़ी धूप—मैदान पार करता हुआ नरेन्द्र सियालदहकी ओर भागा जा रहा था। लेकिन कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था। इसीलिए चलते चलते वह अपने आपसे बार बार प्रश्न कर रहा था “मेरी क्या गरज है? किसी व्यक्तिने अपने एक सखा-भाईको देखनेके लिए अनुरोध कर दिया है, इसीलिए, जिसे कभी आँखोंसे देखा नहीं उसे देखनेके लिए मैं तो ऐसी धूपमें ये खेतोंके खेत फाँदता जा रहा हूँ।” यह ख्याल करके कि यह अन्याय अनुरोध करनेका उसे जरा भी अधिकार नहीं था उसका सर्वांग जलने लगा और वह यह भी अपने आपसे बार बार कहने लगा कि इस अनुरोधकी रक्षा करनेके लिए जानेमें आत्म-सम्मानकी हानि है, फिर भी वह मुँह फिराकर लौट न सका। एक एक पैर बढ़ाता हुआ उसी सियालदहकी ओर अग्रसर होने लगा और थोड़ी ही देरमें उस नितान्त स्पर्धापूर्ण अनुरोधकी रक्षा करनेके लिए अपने मकानके दरवाजेपर आ पहुँचा।

१७

कागजके एक टुकड़ेपर नरेन्द्रने अपने नामके साथ अपना विलायती डाक्टरी खिताब खोदकर भीतर भेज दिया। उसे पढ़कर दयाल बहुत ही घबड़ा उठे। इतना बड़ा डाक्टर पैदल चलकर उसे देखने आया है, यह उन्हें अपनी असम्माननीय ढिठाई और अपराध-सा लगा और वे यह नहीं सोच सके कि इस डाक्टरको ही वंचित करके अब वे स्वयं इस मकानमें रह रहे हैं, तब इस अन्यायके कारण किस प्रकार उसे अपना मुँह दिखावें। क्षण-भरके बाद ही एक गोरवर्ण दीर्घकाय छरहरा युवक जब उनके कमरेमें आ पहुँचा तब वे मुग्ध नेत्रोंसे अवाक् होकर ताकते रह गये। उन्हें ऐसा लगा कि मुझे व्याधि चाहे जो हो और चाहे जितनी भी कड़ी हो अब डर नहीं है,—इस बार मैं बच गया। यह आश्वासन पाकर कि वास्तवमें रोग बहुत मामूली है, चिन्ताका कोई भी कारण नहीं है, वे उठकर बैठ गये यहाँ तक कि डाक्टर साहबको रेलगाड़ीमें बिठला आनेके लिए स्टेशन तक साथ जाना सम्भव होगा या नहीं यह भी सोचने लगे। विजया पास चारपाईपर पड़ी है, फिर भी उन्हें सूझी नहीं उसने ही अनुरोध करके इन्हें भेज दिया है, यह सुनकर कृतज्ञतासे और आनन्दसे दयालकी आँखें छलछला आईं। देखते देखते इस नये चिकित्सक और पुराने आचार्यमें वार्तालापका रंग जम गया। नरेन्द्रके चित्तमें आज बहुत ग्लानि जमा हो उठी थी; किन्तु वृद्धके

सन्तोष उसकी सहृदयता और अन्तस्तलकी पवित्रताके सम्पर्कसे इन भावोंके प्रायः भूल गये। बातों बातोंमें उसने समझा यद्यपि इस व्यक्तिका धर्मसम्बन्धी पठन-पाठन अत्यन्त ही अल्प है, किन्तु धर्म-वस्तुको वह प्राण भरकर प्रेम करता है और इस अकृत्रिम प्रेमने ही मानो धर्मकी सत्य दिशाके प्रति उसकी आँखोंकी दृष्टिको असाधारण रूपसे स्वच्छ कर दिया है। किसी भी धर्मके विरुद्ध उसकी कोई शिकायत नहीं है, और यदि मनुष्य विशुद्ध है तो सभी धर्म उसे विशुद्ध वस्तु दे सकते हैं, यही वे अकपट रूपसे विश्वास करते हैं। यदि उनका इस प्रकारका असाम्प्रदायिक मतवाद विश्वविहारीके कानों तक पहुँच जाता तो उनका आचार्यपद बहाल रहता या नहीं इस विषयमें घोर सन्देह है, लेकिन वृद्धकी शान्त सरल और विद्वेष-लेशहीन बात सुनकर नरेन्द्र मुग्ध हो गया। रासबिहारी और विश्वविहारीका भी उन्होंने बहुत गुण गान किया। वे जिसकी भी बात करते उसीके सम्बन्धमें कहते कि वैसा साधु पुरुष जगत्में उन्होंने दूसरा देखा ही नहीं! वृद्धकी मनुष्य पहचाननेकी यह अद्भुत शक्ति देखकर नरेन्द्र मन ही मन खूब हँसा। अन्तमें विवाहके प्रसंगमें ही उन्होंने बहुत ही परितृप्तिके साथ कहा कि अगले वैशाखमें ब्याह है, और विश्वकी अभिलाषा है कि उस समय आचार्यपद मैं ही ग्रहण करूँ। और इस प्रकारकी सम्मति प्रकाशित करनेसे भी वे विरत नहीं हुए कि यह विवाह ही ब्राह्मसमाजमें विवाहका यथार्थ आदर्श होगा।

लेकिन यदि इस सौभाग्य और आनन्दकी अधिकतासे स्वतः इतने अधिक विह्वल न हो उठते तो अत्यन्त सुगमतासे देख पाते कि यह अन्तिम बात किस प्रकार उनके श्रोताके मुँहपर स्याहीपर स्याही पोत रही है।

स्नान-आहारके लिए वे नरेन्द्रको अत्यन्त आग्रह करके भी किसी प्रकार राजी नहीं कर सके। लगभग डेढ़ बजेके बाद नरेन्द्र जब यथार्थ श्रद्धाके साथ नमस्कार करके बाहर निकल गया तब उसे यह समझना बाकी न रहा कि उसके कहाँपर व्यथा है क्यों उसका सारा मन विकल विपर्यस्त हो उठा और क्यों सारा संसार उसके लिए इस प्रकार तिक्त और बेस्वाद हो गया है। गली-पार होते ही बाईं ओर बहुत दूर जमींदार-भवनके शिखरपर नजर पड़ जानेसे उसकी दोनों आँखें फिर जल उठीं। वह मुँह फिराकर सीधे मैदानके सामने रेलवे स्टेशनकी ओर तेजीसे चलने लगा। आज अकस्मात् इतना बड़ा आघात न लगता तो वह शायद इतनी जल्दी अपने मनको पहचान ही नहीं सकता। इतने दिनों तक वह समझता था कि इस जीवनमें उसके हृदयने केवल विज्ञानको ही चाहा है।

यहाँ किसी कष्टमें और किसी वस्तुके अभाव नहीं मिलेगी, इस बातपर वह निःसंशय विश्वास करता था। इसीलिए कलकत्ते और दूसरी सब कामनाकी वस्तुएँ उसके निकट एकदम तुच्छ हो गई थीं। किन्तु आज चोट खाकर जब मालूम हुआ कि उसके हृदयने उसके अनजानेमें और एक वस्तुको उससे ही एकान्त भावसे प्रेम किया है, तब वह केवल व्यथा और विस्मयसे नहीं चौंक उठा, बल्कि अपने निकट खुद ही मानो अत्यन्त छोटा हो गया। आज किसी बातका यथार्थ अर्थ समझनेमें उसे रुकावट नहीं हुई। विजयाका सारा आचरण —उसकी सारी बातचीत ही मानों छिपा हुआ उपहास था और यह कल्पना करके तो उसका सर्वाङ्ग लज्जाके मारे बार बार सिहर उठने लगा कि इसीको लेकर विलासके साथ न जाने वह कितनी हँसी है! अभी उस दिनकी ही तो बात है कि जब उसने उसका सर्वस्व छीनकर बाहर निकाल देनेमें भी रत्तीभर संकोच न किया था। उसके ही पास दीनता दिखाकर अपना अन्तिम सम्बल तक बेचने जानेकी परम दुर्मति उसमें किस महापापसे उत्पन्न हुई थी! अपनेको हजार बार धिक्कार देकर वह बार बार यही कहने लगा — यह मेरे लिए ठीक ही हुआ है। जो ज्ञानहीन उस निष्ठुर रमणीकी एक मामूली-सी बातसे अपना सब काम-काज छोड़कर इतनी दूर दौड़कर आ सकता है, उसके उपयुक्त ही यह दण्ड हुआ है। अच्छा किया जो विलासने मेरा अपमान करके मकानके बाहर निकाल दिया।

स्टेशन पहुँचकर उसने देखा जो माइक्रोस्कोप उसने कुलीके सर है, कालीपद उसे ही लिए खड़ा है। वह नजदीक आकर बोला, "डाक्टर बाबू, माईजीने इसे आपके पास भेज दिया है।"

नरेन्द्रने तीखे स्वरसे कहा, "क्यों?"

"क्यों सो कालीपद जानता नहीं था। लेकिन चीज डाक्टर बाबूकी है और इसे ही लक्ष्य करके जो अनेक अप्रिय घटनाएँ घट चुकी थीं सामने और भीतरसे वे सब कालीपदसे छिपी नहीं थीं। इसलिए उसने गँवारकी बुद्धि खर्च करके हँसमुख होकर कहा, "आपने वापस जो माँगा था!"

नरेन्द्रने मन ही मन और अधिक क्रुद्ध होकर कहा, "नहीं, मैंने नहीं माँगा। मेरे पास देनेके लिए रुपये नहीं हैं।

कालीपदने समझा, यह रूठ जानेकी बात है। यह बहुत दिनोंका नौकर था रुपये-पैसेके सम्बन्धमें विजयाके मनके भाव और आचरणके बहुतसे दृष्टान्त इसने आँखोंसे देखे थे। उसने सामानको और थोड़ा-सा फैलाकर थोड़ा-सा

हँसकर, थोड़ी-सी उपेक्षाके भावसे वह बोला “ ऊँः ! बड़ी भारी कीमत है न ! माजीके लिए दो-चार सौ रुपये भी कोई रुपये हैं ! ले जाइए आप। जब रुपयोंका प्रबन्ध हो जाय तब भेज दीजिएगा। ”

रुपयोंके सम्बन्धमें उसके प्रति विश्वासके इस अयाचित दिखावेसे नरेन्द्रका क्रोध कुछ नरम जरूर हुआ फिर भी वह अपने कण्ठ-स्वरका तीखापन दूर नहीं कर सका। इसीसे उसने जब दो सौके बदलेमें चार सौ देनेमें असमर्थता प्रकट करके कहा ‘ नहीं नहीं तू सौदा ले जा काशीपद, मुझे जरूरत नहीं है। मैं दो सौ रुपयोंके बदले चार सौ नहीं दे सकूँगा ” तब काशीपद अनुनयके स्वरमें बोल उठा ‘ नहीं डाक्टर बाबू, सो नहीं होगा। आप साथ ले जाइए। मैं गाड़ीमें रखकर ही जाऊँगा। ”

इस वस्तुके सम्बन्धमें उसकी खुदकी एक खास गरज थी। जिससे वह खुदी आँखों नहीं देख सकता था। उसके प्रति विरूप होनेके कारण ही नरेन्द्रके प्रति उसे एक प्रकारकी सहानुभूति उत्पन्न हो गई थी। इसीलिए दरबानके द्वारा भेज देनेका हुक्म होनेपर भी काशीपद खुद लाकर यह भारी बाक्स उठा लाया था। नरेन्द्र इधर उधर कर रहा है, यह कल्पना करके वह और भी कुछ नजदीक जाकर गला साफ करके बोला “ आप ले जाइए डाक्टर साहब माजी अच्छी होनेपर चाहे तो आपसे कीमत भी न लेंगी। ”

यह इशारा सुनकर नरेन्द्र आग-बबूला हो उठा। ठीक है ! रुपये चुकाना और विश्वास अपमान किया ! जान पड़ता है यह भी उसीकी इच्छाका पुरस्कार है !

लेकिन पोस्टमार्टमके बाहर और भी मनुष्य थे। इसलिए काशीपदकी यह अकल उड़ गई। नरेन्द्रने किसी प्रकार अपनेको सँभाल लिया। उसने सिर्फ बाहरके रास्तेकी ओर इशारा करके कहा, “ चले जाओ मेरी आँखोंके सामनेसे। ” और वह मुँह फिराकर एक तरफ चला गया। काशीपद काठकी तरह हतबुद्धि निश्चल होकर खड़ा रह गया। मामला आखिर क्या हुआ यह समझ ही न सका। लगभग पन्द्रह मिनटके बाद गाड़ी आनेपर, नरेन्द्र जब उसमें बैठ गया तब काशीपदने धीरे धीरे पर्दा उठाकर कमरेकी खिड़कीके नजदीक जाकर पूछा, “ डाक्टर साहब ! ”

नरेन्द्र दूसरी तरफ देख रहा था मुँह फिराते ही उसकी आँखें काशीपदके मलिन मुँहपर जा पड़ीं। नौकरसे निरपेक्ष क्या व्यवहार करके वह मन ही मन

कुछ पहचानता था; इसीलिए थोड़ा-सा हँसकर सरल भावसे बोला 'अब क्यों आया रे ?'

वह एक टुकड़ा कागज और पेन्सिल निकाल कर बोला 'आप यदि अपना पता—'

'मेरा पता लेकर क्या करेगा रे ?'

" मैं कुछ नहीं करूँगा। मालकिनने कहा था—

मालिकके नामसे इस बार नरेन्द्र अपने आपेमें नहीं रहा। अकस्मात् वह जोरसे डाँटकर बोल उठा दूर हो जा सामनेसे ! पाजी बदमाश कहींका !"

कालीपद चौंककर दो पग पीछे हट गया और उसके दूसरे ही क्षण गाड़ी सीटी बजाकर चल दी।

लौटकर जब वह ऊपरके कमरेमें पहुँचा तब विजया कठघरेकी बाजूमें सिर रक्खे आँखें मूँदे टिकी बैठी थी। पैरोंकी आहटसे उसके आँखें खोलते ही कालीपदने कहा लौटाल दिया—लिया नहीं।

विजयाकी दृष्टिमें क्रोध अथवा विस्मय कुछ भी दिखाई नहीं पड़ा। कालीपद हाथका कागज और पेन्सिल देखकर उससे बोला बाबा रे, क्या गुस्सा है ! ठिकाना पूछनेपर बिगड़कर मारने दौड़े !" इसके उत्तरमें भी विजयाने बात नहीं की।

सारे रास्ते कालीपद अपने आप ही सोचता हुआ आया था कि मालिकके नामके उत्तरमें वह क्या बोलेगा। लेकिन उस तरफसे लेशमात्र उत्साह न पाकर उसने आँखें उठाकर देखा विजयाकी दृष्टि वैसी ही निर्विकार, वैसी ही शान्त है। सहसा उसके मनमें आया कि जान बूझकर ही विजयाने यह सिफारिशका काम उसे सौंपा था। इसीसे वह अप्रतिभ भावसे कुछ क्षण चुपचाप खड़े रहकर धीरे धीरे बाहर चला गया।

यद्यपि पाँच छः दिनमें विजयाका रोग चला गया लेकिन शरीर ठीक होनेमें देर होने लगी। विलासने अच्छे डाक्टरके द्वारा बलकारक औषधि और पथ्यका प्रबन्ध करनेमें त्रुटि नहीं की लेकिन दुर्बलता प्रतिदिन बढ़ती ही जाने लगी। इस ओर फागुन समाप्त होनेको आया बीचमें सिर्फ चैतका महीना बाकी रह गया। रासबिहारीका इरादा था कि वैशाखके पहले हफ्तेमें ही लड़केका विवाह कर देंगे, लेकिन यह देखकर कि पात्री दिन दिन

कान्तिमान् और परिपुष्ट हो रहा है, और कन्या मलिन और दुबली होती जा रही है। रासबिहारी प्रति दिन एक बार आकर व्याकुलता प्रकट कर जाने लगे। प्रयत्नमें किसी ओरसे रत्ती-भर भी त्रुटि नहीं हो रही है,—फिर भी यह क्या हो रहा है? उस माइक्रोस्कोपके सम्बन्धकी घटना बाहरसे न जाने किस प्रकार कुछ अतिरंजित होकर पिता-पुत्रके कानों तक पहुँच गई। सुनकर लड़का जितना ही उछलने-कूदने लगा बाप उतना ही उसे ठण्डा करने लगा। अन्तमें उन्होंने लड़केको विशेष रूपसे सतर्क कर दिया कि वे सब छोटी-मोटी बातें लेकर कलह मचाना सिर्फ केवल निष्प्रयोजन ही नहीं है, विजयाकी बीमारीको देखकर इससे कुछ हितके विपरीत हो जाना भी असम्भव नहीं। विलास पृथ्वीके और चाहे जितने व्यक्तियोंको तुच्छ या उपेक्षणीय माने पिताकी पक्की बुद्धिकी वह मन ही मन कदर करता था। क्योंकि, ऐहिक कामोंमें उस बुद्धिकी श्रेष्ठताकी इतनी नजीरें मौजूद थीं कि, उसकी प्रामाणिकताके सम्बन्धमें सन्देह करना एक प्रकारसे असम्भव था। इसलिए, इसे लेकर उसके हृदयके भीतर चाहे जितना विष संचय हो उठा हो बाहरी तौरसे विरोध करनेका साहस उसने नहीं किया। लेकिन उससे अब और नहीं रहा गया। उस दिन सहसा एक बहुत ही तुच्छ कारणसे वह कालीपदको ले बैठा। पहले तो मारने दौड़ा और अन्तमें उसने गुमाश्तासे वेतन चुका देनेकी आज्ञा देकर उसे डिसमिस कर दिया।

चिकित्सकने विजयाके लिए सबेरे शाम थोड़ा-सा घूमने-फिरनेकी व्यवस्था की थी। उस दिन सबेरे वह नदीके किनारे थोड़ा-सा घूम फिर कर लौटी ही थी कि कालीपद अश्रुसिक्त स्वरमें बोला "माजी छोटे बाबूने जवाब दे दिया है।"

विजयाने आश्चर्यमें पड़कर पूछा, "क्यों?"

कालीपद रो पड़ा और बोला "मालिक स्वर्ग चले गये, उनसे कभी गाली नहीं खाई माजी लेकिन आज—" कहकर वह बार बार आँखें पोंछने लगा। उसके बाद रोना बन्द करके उसने जो कुछ कहा उसका मर्म यह है—यद्यपि उसने कोई अपराध नहीं किया है, तिसपर भी छोटे बाबू उसे फूटी आँखों नहीं देख सकते। डाक्टर बाबूके पास वह बाक्स देने जानेकी बात मैंने खुद क्यों उन्हें नहीं बताई, क्यों मैं उन्हें घर बुला लाया था।—इत्यादि इत्यादि।

विजया कुर्सीपर बहुत कड़ी होकर बैठी रही, बहुत देर तक उसने एक बात भी नहीं कही। बादमें पूछा "वे कहाँ हैं?" कालीपद बोला "कचहरीमें बैठे कागज देख रहे हैं।"

विजयाने क्षण-भर इधर-उधर करके कहा "अच्छा जरूरत नहीं—अभी

दू जा, थम कर।" और वह कार भी चली गई। लगभग एक घण्टेके बाद उसने खिड़कीसे देखा कि विलास कम्पाउंडसे निकलकर घर चला गया। उसने समझ लिया कि क्यों आज वह खबर लेनेके लिए इस ओर नहीं आया।

दयाल आरोग्य होकर फिर नियमित रूपसे अपने कामपर जाने लगे थे। कामके पहले मकान लौटते समय किसी किसी दिन निरुपमा उनके साथ हो लेती थी और बात करते करते कुछ दूर तक पहुँचाकर फिर लौट आती थी।

नरेन्द्रके प्रति दयालका अन्तःकरण आदरसे कृतज्ञतासे एकदम भर गया था। बीमारीकी बात उठनेपर वह इस नये चिकित्सककी अद्भुत प्रशंसासे सहस्र-मुख हो उठते थे। निरुपमा चुप रहकर सुनती रहती लेकिन किसी तरहका आग्रह न दिखाती इसलिए, दयाल मुँह खोलकर नहीं कह सकते थे कि उनकी एकान्त इच्छा है कि उन्हें ही बुलाकर निरुपमाकी बीमारीकी बात पूछी जाय। भीतर रहस्य इस समय तक भी उन्हें बिलकुल ज्ञात न था इसलिए निरुपमाको भी रुपयेवाले वे मन ही मन यह अनुभव करते थे और हजार तरहके इशारों द्वारा बताया चाहते थे कि यह अवश्य कर है, लेकिन जो इस अभावनामा मित्र चिकित्सक तुम्हारी स्वयं चिकित्सा करते उससे और समय नष्ट कर रहे हैं, उनकी अपेक्षा बहुत अधिक बुद्धिमान् हैं, यह मैं दावेपूर्वक कह सकता हूँ।

लेकिन इस गुप्त रहस्यका आभास पानेमें उन्हें अधिक दिन नहीं लगे। पाँच छः दिनके बाद ही एक दिन सहसा वे निरुपमाके कमरेमें आकर बोले "कम्पौण्डरको अब तो मैं मकानमें रख नहीं सकता बेटी।"

निरुपमाको यह सन्देह पहलेसे था; फिर भी उसने पूछा "क्यों?"

दयालने कहा, "जिसे तुम मकानमें नहीं रख सकतीं मैं उसे किस साहससे रक्खूँ, बताओ तो भला बेटी!"

निरुपमाने मन ही मन अत्यन्त क्षुब्ध होकर कहा "लेकिन यह भी तो मेरा मकान है!"

दयाल कुपित होकर बोले "सो तो जरूर है। हम सभी तो तुम्हारे आश्रित हैं बेटी, लेकिन—"

निरुपमाने पूछा "उन्होंने क्या आपको रखनेसे मना किया है?"

दयाल चुप रहे। निरुपमाने बात समझ लेनेपर कहा "तो फिर कम्पौण्डरको मेरे पास ही भेज दीजिए। वह हमारे मामूली नौकर हैं, उसे मैं विदा नहीं कर सकती।"

दयालने क्षण-भर मौन रहकर संकोचके साथ कहा, 'काम अच्छा नहीं होगा बेटी। उनकी अवहेलना करना भी तुम्हारा कर्तव्य नहीं है।'

विजया सोच कर बोली, 'तो फिर आप क्या करनेको कहते हैं?"

दयालने कहा, 'तुम्हें कुछ भी करना नहीं होगा। काशीपर जल्द ही वह आना चाहता है। मैं कहता हूँ, कुछ दिनोंके लिए वह चला ही क्यों न जाय?"

विजया अनेक क्षण मौन रहकर एक लम्बी साँस छोड़कर बोली, 'तो फिर कहिए आप। लेकिन जानेके पहले उसे एक बार यहाँ भेज दीजिएगा।"

लम्बी साँसकी आवाजसे चकित होकर उसने मुँह उठाते ही देखा कि तरुणीके मलिन मुँहपर एक गहरी व्यथा अंकित हो रही है। वे स्तम्भित हो रहे, पर उस दिन इस सम्बन्धमें और कोई बात कहनेका साहस उन्हें नहीं हुआ।

उसके बाद चार-पाँच दिन तक दयाल फिर नहीं दिखाई पड़े। विजयाने जब दूरीमें पता लगाकर जाना कि वे कामपर नहीं आते। इससे उद्विग्न होकर जब वह सोच ही रही थी कि आदमी भेजकर पता लगाना आवश्यक है अथवा नहीं, उसने दरवाजेके बाहर उनका खाँसना सुना। वह आनन्दपूर्वक उठ खड़ी हुई और उसने उन्हें आदरपूर्वक कमरेमें लाकर बैठाया।

दयालकी स्त्री सदा बीमार रहती है। शायद उसकी बीमारी बढ़ जानेके कारण वे बाहर नहीं निकल सके थे। उन्हें घर ही रसोई बनानी पड़ती थी। उनके विशेष मुँहकी चेष्टासे विजयाने यह तो समझ लिया कि विशेष कोई डर नहीं है। तथापि प्रश्न किया, 'अब वे कैसी हैं?'

दयाल बोले, 'आज अच्छी हैं। नरेन्द्र बाबूको चिट्ठी लिखी थी। वे कल तीसरे पहर आकर दवाई दे गये हैं। कैसी अद्भुत चिकित्सा है बेटी! चौबीस घण्टेके भीतर ही बीमारी मानो बारह आने आरोग्य हो गई है।"

विजया ओंठ दबाकर हँसी और बोली, "अच्छी क्यों न होगी! आप उनका क्या साधारण विश्वास है उनपर!"

दयाल बोले, 'यह सच है। लेकिन विश्वास तो यों ही नहीं हो जाता बेटी। तुमने परीक्षा करके देख लिया है न। ऐसा लगता है कि घरमें पैर रखते ही मानो सब ठीक हो जाएगा।"

"जरूर हो जायगा," कहकर विजया फिर मुसकिरा दी। इस बार दयालने खुद भी थोड़ा-सा हँसकर कहा, 'वे केवल उसकी ही चिकित्सा नहीं कर गये हैं बेटी, और भी एक व्यक्तिकी व्यवस्था कर गये हैं।" और उन्होंने एक कागज टेबुलके ऊपर खोलकर रख दिया।

यह एक प्रेस्क्रिप्शन था। ऊपर विजयाका नाम लिखा था। लिफाफेपर आँख पड़ते ही वे ओठोंसे उभर मानो आनन्दके बाण बनकर विजयाके हृदयमें आ लगे। एक पलके लिए उसका सारा मुँह लाल होकर फिर एकदम राखके समान फीका पड़ गया। वृद्ध अपनी सफलताके आनन्दसे ऐसे विभोर हो गये थे कि उन्होंने उस ओर देखा तक नहीं। वे बोले "तुम्हें उपेक्षा न करने दूँगा बेटी। तुम्हें इस ओषधिकी परीक्षा करके देखना होगा।"

विजयाने अपनेको सँभालकर कहा "लेकिन यह अँधेरेमें ढेला फेंकना है—"

वृद्धने गर्वसे प्रदीप्त होकर कहा "यह तुम क्या कहती हो! इन्हें क्या तुमने अपने नेटिव डाक्टरों जैसा समझ लिया है बेटी जो दक्षिणा लेते ही व्यवस्था लिख देते हैं! ये तो विलायतसे पास करके आये हुए बड़े भारी डाक्टर हैं। रोगीको अपनी आँखोंसे देखे बिना ये कुछ भी नहीं बतलाते। इनकी अपनी जिम्मेदारीका क्या साधारण ज्ञान है बेटी!"

विजयाने अकृत्रिम विस्मयसे दोनों आँखें फैलाकर कहा "अपनी आँखोंसे देखकर कैसे! किसने कहा ये मुझे देख गये हैं! सिर्फ उन्होंने आपके मुखकी बात सुनकर ही तो यह ओषधि लिख दी है!"

दयाल बार बार सिर हिलाते हुए कहने लगे "नहीं नहीं नहीं। कदापि नहीं। कल जब तुम अपने बगीचेकी रेलिंग पकड़कर खड़ी थीं तब ठीक तुम्हारे सामनेके मार्गसे ही ये पैदल चलकर गये थे और तुम्हें अच्छी तरह देख गये थे। जान पड़ता है, तुम उस समय कुछ सोच रही थीं इसलिए—"

विजयाने सहसा चौंककर कहा "उनकी साहबी पोशाक थी क्या! सिर पर हैट था!"

दयाल कौतुककी प्रबलतामें 'हाः हाः' करके हँसते हुए कहने लगे 'कौन कह सकता था कि वे असल साहब नहीं हैं! कौन कह सकता था कि वे हमारे स्वजातीय आदमी हैं! मैं तक भी तो सहसा चौंक पड़ा था बेटी!"

सामनेसे होकर गये ठीक आँखोंके आगेसे गये उसे देखते देखते गये— फिर भी एक बारसे अधिक उसकी ओर देखा तक नहीं! बल्कि यह सोचकर कि पुलिसका कोई छोटा कर्मचारी होगा उसने अवज्ञासे आँखें नीची कर लीं! वृद्धको इसका कोई पता ही नहीं चला कि विजयाके हृदयमें कैसा तूफान उठ रहा हुआ है! वे अपने आप ही कहते चले गये, "बीचमें सिर्फ चैतका महीना बाकी है। वैशाखके पहले अथवा अधिकसे अधिक दूसरे हफ्तेमें ही तो विवाह

है। मैंने कहा "विविशाका शरीर स्वस्थ नहीं हो रहा है डाक्टर बाबू, कोई ऐसी औषधि दीजिए जिससे '—" उनके मुँहकी बात वहींपर असमाप्त रह गई।

इस प्रकार अकस्मात् रुक जानेसे विभाने मुँह उठाकर उनकी दृष्टिका अनुसरण करते ही देखा विलास कमरेमें आ रहा है। कमरेमें प्रवेश करते ही उसने अनुभव किया कि जो आलोचना चल रही थी उसके आ जानेसे बन्द हो गई है। इससे विलासके नेत्र और मुँह क्रोधसे लाल हो उठे। लेकिन अपनेको यथा शक्ति सँभालकर वह निकट आकर एक कुर्सी खींचकर बैठ गया। ठीक सामने ही प्रेस्क्रिप्शन पड़ा था। दृष्टि पड़ते ही उसने उसे मेजपरसे उठा लिया और शुरूसे आखिर तक तीन-चार बार पढ़कर फिर यथास्थान रख देनेके बाद कहा "नरेन्द्र डाक्टरका प्रेस्क्रिप्शन जान पड़ता है! यह आया किस तरह, डाकसे!'

किसीने भी इस बातका उत्तर नहीं दिया। विभा मुँह फिराकर खिड़कीके बाहर देखने लगी।

विलास ईर्ष्यासे जलता हुआ जरा-हँसकर बोला, "डाक्टर तो बस नरेन्द्र डाक्टर हैं! इसीसे जान पड़ता है, इनसे कोई दवा पी ही नहीं जाती! शीशीकी दवा शीशीमें ही सड़ती रहती है और उसके बाद फेंक दी जाती है! खैर यह सब हुआ लेकिन इस प्रेस्क्रिप्शनके धन्वन्तरिने यह कागज भेजा किस प्रकार सो तो सुनूँ! डाकसे भेजा है!"

इस प्रश्नका भी किसीने जवाब नहीं दिया।

तब उसने दयालकी तरफ देखकर कहा "आप तो अब तक चुप बैठकर सुन रहे थे—दीदियोंसे ही सुनाई पड़ रहा था—पूछता हूँ, आप कुछ जानते हैं?"

इस अविचारी सरिश्तेमें जबसे विलासबिहारीके अधीन काम करना शुरू किया है, दयाल मन ही मन उससे बाघके समान डरते हैं। इसके सिवाय अभी उसके मुँहसे सुननेको भी कुछ बाकी नहीं रहा था। इसलिए उसके प्रेस्क्रिप्शन हाथमें ले लेनेके समयसे ही उनका हृदय पीपलके पत्तेके समान काँप रहा था। अब प्रश्न सुनकर मुँहके भीतर उनकी जीभ ऐसी अकड़ गई कि कोई बात बाहर नहीं निकली।

विलासने कुछ देर ठहरकर चीखकर कहा "एकदम गूँगी बिल्ली बन गये! मैं पूछता हूँ, जानते हैं कुछ?"

पापकी आलोचना भय मात्राक्रान्त व्यक्तिको कितना छोटा बना डालता है, यह देखकर कलेजेमें व्यथा अनुभव होता है। दयाल चौंक उठे और अस्फुट स्वरसे बोले "जी हाँ। मैं ही लाया हूँ।"

“ क्या ? यही तो काम पड़ता है ! क्यों था मने उसे ? ”
दयालने तब रुक रुककर किसी प्रकार मामलेका ब्योरा सुना दिया।

विलासने स्तब्ध भावसे कुछ क्षण बैठे रहकर कहा “ पिछले वर्षका हिसाब पूरा करनेको कहा था वह पूरा हो गया ? ”

दयालने विवर्ण मुँहसे कहा “ जी, दो दिनके भीतर ही पूरा कर डालूँगा। ”

“ हुआ क्यों नहीं ? ”

“ घरमें बड़ी विपत्ति थी —रसोई बनानी पड़ती थी —सो हो नहीं सका। ”

प्रत्युत्तरमें विलासने कुत्सित रूढ़ शब्दसे दयालको रुक रुककर कहनेकी मना करते हुए हाथ हिलाकर कहा “ सो ही नहीं सका ! तब और क्या मुझे आपने राजा बना दिया है ! ” फिर तीव्र स्वरसे कहा “ मैंने तभी पिताजीसे कहा था इन सब बूढ़े आदमियोंसे मेरा काम नहीं चलेगा। ”

इतनी देरके बाद विजयाने मुँह फिराकर देखा। उसके मुँहका भाव यद्यपि गम्भीर था लेकिन दोनों आँखोंसे मानो आग निकल रही थी। उसने धीमे कठिन स्वरसे कहा “ दयाल बाबूको यहाँ किसने बुलाया है जानते हैं ? आपके पिताजीने नहीं—मैंने। ”

विलास रुक गया। विजयाका इस प्रकारका कण्ठ-स्वर उसने और कभी नहीं सुना था। इस प्रकारकी आँखोंकी दृष्टि भी और कभी नहीं देखी थी। लेकिन झुकनेवाला व्यक्ति वह नहीं था। इसीलिए उसने केवल क्षण-भर स्थिर रहकर जवाब दिया “ किसीने भी बुलाया, मुझे यह जाननेकी जरूरत नहीं। मैं काम चाहता हूँ। कामसे मेरा सम्बन्ध है। ”

विजयाने कहा “ जिनके घरपर विपत्ति है, वे किस प्रकार काम करने आवें ?

विलास उद्धत भावसे बोला “ इस तरह तो सभी विपत्तिकी दुहाई दे सकते हैं। लेकिन दुहाई सुननेसे मेरा काम नहीं चलता। मैंने परसों काम समाप्त कर रखनेका हुक्म दिया था वह क्यों नहीं हुआ, उसकी कैफियत चाहता हूँ — विपत्तिकी खबर नहीं जानना चाहता। ”

विजयाके ओठ थर थर काँपने लगे। उसने कहा “ सभी लोग झूठी विपत्तिकी दुहाई नहीं देते, कमसे कम मन्दिरका आचार्य नहीं देता। जो जाने दीजिए, लेकिन मैं आपसे ही पूछती हूँ जब आप जानते हैं कि आवश्यक कार्य होना ही चाहिए तब आपने ही उसे क्यों पूरा करके नहीं रक्खा ? आपने क्यों चार दिन काममें गैरहाजिरी की ? कौन-सी विपत्तिमें पड़ गये थे आप सुनूँ ?

विलासने विस्मयसे प्रायः हतबुद्धि होकर कहा "मैं खुद खाता पूरा करके रक्खूँ ? मैंने क्यों नौकरी की ?"

विजयाने कहा; "हाँ नहीं । महीने महीने दो सौ रुपये वेतन आप लेते हैं । वे रुपये तो मैं आपको खाली मों ही देती नहीं काम करनेके लिए देती हूँ ।

विलासने मशीनके पुतलेकी तरह सिर्फ इतना ही कहा "मैं नौकर हूँ ! मैं तुम्हारा नौकर हूँ !"

असह्य क्रोधसे विजयाका हिताहित ज्ञान प्रायः लुप्त हो गया था । उसने अधिक तीव्र कण्ठसे उत्तर दिया "काम करनेके लिए जिसे वेतन दिया जाता है, उसे इसके सिवा और क्या कहते हैं ! आपके वर्ताव लगातार मैं निरन्तर सहती आ रही हूँ लेकिन मैंने जितना ही सहन किया है अन्याय और उपद्रव उतना ही बढ़ता गया है । जाइए, नीचे जाइए । मालिक नौकरके सम्बन्धके सिवा आजसे आपके साथ मेरा और कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा । जिस नियमसे मेरे दूसरे कर्मचारी काम करते हैं ठीक उसी नियमसे काम कर सकिए कीजिए, नहीं तो आपको मैंने जवाब दिया अब मेरी कचहरीमें घुसनेकी चेष्टा मत कीजिएगा ।

विलास उछल पड़ा और दाहिने हाथकी तर्जनी हिलाता हुआ चिल्लाकर बोला "तुम्हारा इतना दुःसाहस !"

विजयाने कहा "दुःसाहस मेरा नहीं आपका है । मेरी स्टेटमें ही नौकरी कीजिएगा और मेरे ही ऊपर अत्याचार कीजिएगा ? मुझे धमकानेका अधिकार किसने आपको दिया है ? मेरे नौकरको मेरे ही मकानमें अकारण देनेका मेरे अतिथिका मेरी ही आँखोंके सामने अपमान करनेका साहस कैसे आपको हुआ ?"

विलास क्रोधसे प्रायः पागल होकर अपने चीत्कारसे घर-भरको कँपाकर बोला "अतिथिके भाग्य पुण्य था जो उस दिन उसके शरीरपर मैंने हाथ नहीं लगाया और उसका हाथ नहीं तोड़ दिया । निर्लज्ज बदमाश चोर लोफर कहींका ! अब यदि कभी उसे देख पाऊँ—"

चीत्कारकी आवाजसे डरकर गोपाल कन्हैयासिंहको बुला लाया । दरवानोंपर उसका चेहरा देखते ही विजयाने लज्जित होकर अपना कण्ठ-स्वर संयत और स्वाभाविक कर लिया और कहा "आप जानते नहीं लेकिन मैं जानती हूँ कि यह आपका ही बहुत बड़ा सौभाग्य है जो उनके शरीरपर हाथ लगानेका साहस आपने नहीं किया । वे उच्च शिक्षित और डाक्टर हैं । उस दिन उनके

शरीरपर हाथ लगानेपर भी शायद वे एक बीमार नारीके कमरेके भीतर विवाद न करते और सहन करके ही चले जाते; लेकिन मेरे इस उपदेशको भूलकर भी अवहेलना मत कीजिएगा कि भविष्यमें उनके शरीरपर हाथ लगानेका शौक यदि आपको हो तो या तो पीछेसे लगाइएगा नहीं तो फिर अपने जैसे और भी पाँच-सात व्यक्तियोंको साथ लेकर तब सामनेसे लगाइएगा। लेकिन बहुत हो-हल्ला हो चुका अब रहने दीजिए। नीचेसे नौकर-चाकर दरवान तक डर कर ऊपर चढ़ आते हैं। जाइए, नीचे जाइए।" कहकर वह उत्तरकी प्रतीक्षा तक किये बिना बगलके दरवाजेसे दूसरे कमरेमें चली गई।

१९

सबके मुँहसे मामला सुनकर क्रोधसे विरक्तिसे और आशा-भंग होनेकी कठिन निराशासे रासबिहारीका ब्रह्मज्ञान और उसके सम्बन्धका नकली चेहरा एक क्षणमें खिसककर गिर पड़ा। वे दाँत-कटकटाए स्वरसे बोल उठे अरे भाई, हिन्दू जो हम लोगोंके बीचकी बात कहते हैं सो सच ही कहते हैं। हम ब्राह्म हों, या चाहे जो हों,—आखिर कैवर्त (धीवर) ही तो है! कोई ब्राह्मण-कायस्थका लड़का होता तो अपमानबोध भी सीखता अपना भला-बुरा किससे होता है, किससे नहीं यह व्यवहार-ज्ञान भी उसे पैदा हो गया होता। जाओ अब खेतोंमें हल-बैल लेकर अपने पुरखोंका काम करते फिरो जाकर। उठते-बैठते तोतेके जैसा पढ़ाकर सिखाया कि मौके मौके ब्याह हो जाने दे, उसके बाद जो जीमें आये करना; लेकिन तुमसे सन्तोष नहीं किया गया तू चला उसपर हुकुम चलाने! यह उसी रासमणिकी लड़की—हरि रायकी नातिन, जिसके डरसे शेर-बकरी एक घाट पानी पीते थे। तू हाथ बढ़ाकर चला उसकी नाकमें नकेल डालने! मूर्ख कहींका! मान-इज्जत भी इतनी बड़ी जमींदारीका आशा-भरोसा गया महीने महीने दो सौ रुपया वेतनके नामसे जो वसूल हो रहा था वह भी गया।—जा अब घोसिहरके लड़के, खेती-पाती करके गुजर कर! अब तू मेरे पास आया है आँखें देखकर उसके नाम शिकायत करने! जा जा मेरे सामनेसे चला जा अभागे बदमाश शैतान!"

विलास खुद भी समझता था कि यह घटना यदि न घटती तो अच्छा होता तिसपर पितृदेवकी भीषण उग्र मूर्ति देखकर उसकी सारी तेज उछल-कूद घुलकर पानी हो गई। फिर भी ज्यों ही उसने कुछ कैफियत देनेका यत्न करना चाहा,

त्यों ही वृद्ध पिता सेजीके साथ मिलके कमरेमें चले गये। लेकिन रासबिहारी सोचते मेरे मस्तिष्कमें समाजके सब चाहे जो हैं, पर समाजके समय टोपकी उठे जनोंमें जल्दबाजी करके काम मिट्टी कर देनेवाले नहीं थे, भावावेश करके भी कभी इस काम नहीं करते थे। इसीलिए उस दिन वे धैर्य धारण करके विजयाके ध्यान होनेका समय लेकर दूसरे दिन अपनी निजकी शान्ति और अविचलित गम्भीरता लेकर विजयाके बैठकखानेमें दिखाई पड़े और कुर्सी खींचकर बैठ गये।

विजयाके क्रोधकी उत्तेजना धीरे धीरे मिट गई थी। वह अपनी असंयत रुखता और निर्लज्ज ढिठाईका स्मरण करके लज्जासे मरी जा रही थी। मकानके नौकर-चाकर और कर्मचारियोंके सामने स्पष्ट रूपसे जिस नाटकका अभिनय हो चुका था सम्भवतः वह इसी बीच अनेक आकारोंमें पल्लवित होकर और बढ़-चढ़कर गाँवके पुरुषोंमें घर घर फैल चुका जाता होगा और तालाब और नदीके घाटोंपर स्त्रियोंकी हँसी-तमाशेका विषय बन गया होगा। उसकी कल्पना करके विजया फिर घरसे बाहर ही नहीं निकल सकी। उसकी यह व्यथा यह सोचकर और भी सौ गुनी बढ़ गई कि इस व्यवहारको छिपाना भी बाकी नहीं रहा है कि आज जिसे उसने नौकर चाकर सबके सामने अपमानित करनेमें संकोच नहीं किया दो दिन बाद स्वामी मानकर उसके ही मनमें परमात्मा जानती होगी।

रासबिहारीने जब धीरे धीरे कमरेमें आकर निःशब्द, प्रसन्न-मुखसे आसन ग्रहण कर लिया तब विजया ठीक उठाकर उनके मुँहकी तरफ देख तक न सकी। लेकिन इसके लिए उसने अनेक तरह प्रतीक्षा की थी और जिन सब युक्तियोंको अच्छा और अप्रिय चर्चा उठनेकी ही उसका एक मसौदा मनमें ही तैयार कर रक्खा था। इससे वह एक प्रकारसे स्थिर होकर ही बैठी रही। लेकिन वृद्धने सबसे ठीक उलटा सुर निकालकर विजयाको अवाक् कर दिया। वे कुछ क्षण स्तब्ध भावसे ठहरकर एक उसाँस लेकर बोले "बेटी विजया, मुकदमेके खर्चसे ही तुमसे कितना आनन्द हुआ है यो बतानेके लिए मैं कलही दौड़कर आता यदि मुझे कलकी पुरानी पीड़ा उभरकर बिछौनेपर न डाल देती। नौकरोंकी बेटी मैं नहीं तो चाहता हूँ। यही तो तुमसे आशा करता हूँ।" इसके बाद बहुत दीर्घ एक लम्बी उसास छोड़कर कहा "उन सर्वशक्तिमान् भगवानसे सिर्फ यही प्रार्थना करता हूँ कि वे तुम्हें तुम्हारे मनमें दृढ़ करें जो धर्म है, जो न्याय्य है, उसीके प्रति अविचलित श्रद्धा रखनेका सामर्थ्य दें।" यह

कहकर उन्होंने दोनों हाथ माथेपर लगाकर और आँखें बन्द करके उस परम पिता है सर्वशक्तिमान्‌को प्रणाम कर लिया।

थोड़ी देर आँखें खोलकर सहसा उत्तेजित भावसे कहने लगे — लेकिन यह बात मैं किसी प्रकार नहीं सोच पाता विभा कि विकास मेरे समान सीधे भोले उदासीन व्यक्तिका लड़का होकर इतना बड़ा मामला कैसे कर बैठा। जिसके विचारमें आज भी संसारके पाप-पुण्यका ज्ञान काम-वासनाकी भावना पैदा नहीं हुई पर इतनी-सी उम्रमें ही ऐसा दुष्कर्म किस प्रकार हो गया! क्या समझ नहीं है क्या संसारका रहस्य है, कुछ भी तो समझमें आता नहीं है बेटी!" कहकर और एक बार आँखें मूँदकर उन्होंने माथा झुका लिया।

विभा चुपचाप बैठी रही। रासबिहारी और थोड़ा-सा मौन रहकर कहने लगे, लेकिन किसी बातकी भी तो अति अच्छी नहीं होती। जानता हूँ, कर्तव्यपालन ही मनुष्यका धर्म है। वह स्वाभाविक भी अच्छा है। कर्तव्य-कर्मकी अवहेलना उसके हृदयमें शूलके समान चुभती है, लेकिन इसीलिए क्या मानवीय भाव नहीं रखा जाएगा! देवताके समान व्यक्तियोंको भी गलती क्षमा करना क्या आवश्यक नहीं है! मानता हूँ, अपराध छोटे-बड़े सभी निर्दयताका विचार नहीं करता। लेकिन इसीसे क्या उसे अक्षर अक्षर मानकर चलना होगा! मैं समझता हूँ। काम न करना भी दोष है, बगैर किराया दिये बेदखलीपर रहना भी अत्यन्त अन्याय है, मालिकका शिकायत करना भी नालिशके अधिकार होनेके पक्षमें अपराध है, लेकिन न्यायालय भी क्या —नहीं बेटी, हम पुराने आदमी हैं इसमें यह ठग भी नहीं है—यह चोर भी नहीं है। साहब लोग विकासकी कर्तव्य-निष्ठाकी चाहे जितनी प्रशंसा करें उसे चाहे 'आदर्श वीर' समझें — हम लोग लेकिन इसे किसी प्रकार भी अच्छा नहीं कह सकेंगे। अपना लड़का है इसलिए तो इस मुँहसे झूठ नहीं निकल सकता बेटी। मैं कहता हूँ, काम न हो तो फिर बाद ही हो जाता न हो तब इसलोगोंका नुकसान ही हो जाता लेकिन इसीसे ही क्या मनुष्यकी भूल-चूक दुर्बलता क्षमा नहीं करनी चाहिए! तुम्हारी मर्यादाओंके बंधे-खूँटेपर ही विकासका पूरा मन बंधा रहता है। वह उसकी प्रत्येक बातसे समतामें आ जाता है। लेकिन मुझे गलत मत समझो बेटी मैं स्वतः संसार विरागी होने पर भी यह स्वीकार करता हूँ कि धन-सम्पत्तिकी रक्षा करना मनुष्यका परम धर्म है उसकी उन्नति करना और भी अधिक धर्म है, क्यों कि उसके बिना संसारका हित नहीं किया जा सकता। और विकासके हाथसे तुम्हारी दोनों व्यक्तियोंकी मर्यादाएँ यदि सुरक्षित कि दुगुनी, चौगुनी नहीं बढ़ती इस गुणी

हो गई है तो मुझे उसमें बिन्दुमात्र भी आश्चर्य नहीं होगा और देखता हूँ, कि हो भी नहीं रहा है। सब ठीक है सब सच है, लेकिन इसीसे धन-सम्पत्तिकी उन्नतिमें कहीं भी एक साधारण-सी बाधा पहुँचते ही धैर्य खो दिया जाय, यह भी तो बुरा है। मैं इसीसे उन अद्वितीय निराकारके श्रीपादपद्मोंमें बार बार भीख माँगता हूँ बेटी कि उसके उत्तम अभिनयके लिए जो दण्ड तुमने दिया है, उसके द्वारा ही वह आगेके लिए सचेत हो जाय। काम! काम! संसारमें क्या हम सिर्फ काम करने ही आये हैं! कामके चरणोंमें क्या दया-माया भी विसर्जित कर देनी होगी! अच्छा ही हुआ बेटी आज उसने तुम्हारे ही हाथसे सर्वोत्तम शिक्षा-लाभ करनेका सुयोग पाया।"

विजयाने कोई बात नहीं कही। रासबिहारीने कुछ क्षण मानो अपने आपमें ही मग्न रहकर चादरसे मुँह उठाया। जरा हँसकर कोमल कण्ठसे वे फिर कहने लगे मेरी दोनों सन्तानोंमें एक अत्यन्तकर्मा है और दूसरीका हृदय स्नेह-ममता करुणासे निर्भर है। एक व्यक्ति जैसे काममें उन्मत्त है दूसरा उसी प्रकार दया-मायासे पागल है! मैं अकेले स्तब्ध होकर केवल यही सोच रहा हूँ कि भगवान् जब इन दोनोंकी जोड़ी मिलाकर एक बनायेंगे, तब इस दुःखके संसारमें स्वर्ग ही उतर आयगा। मेरी और प्रार्थना है बेटी कि इस अलौकिक वस्तुको आँखोंसे देखनेके लिए वे मुझे कमसे कम एक दिनके लिए जरूर जीवित रक्खें!" कहकर इस बार उन्होंने टेबुलपर मस्तक टेककर प्रणाम कर लिया। फिर मस्तक उठाकर कहा और आश्चर्य है कि धर्मके प्रति भी उसका साधारण अनुराग नहीं है! मन्दिर-प्रतिष्ठाके लिए उसने कितना प्राणान्त परिश्रम किया है! जो उसे जानता नहीं वह मनमें समझेगा, विलासका आज धर्मको छोड़कर शायद संसारमें और कोई उद्देश्य ही नहीं है। सिर्फ इसीके लिए वह शायद जीवित है। इसे छोड़कर और शायद वह कुछ जानता ही नहीं। लेकिन कैसी भूल है, देखो तो बेटी मैं अपने लड़केकी कथामें ऐसा अभिभूत हो गया हूँ कि तुमको ही समझा रहा हूँ। जैसे मेरी अपेक्षा तुम उसे कम समझती हो! जैसे मेरी अपेक्षा उसकी तुम कम मंगलाकांक्षिणी हो!" फिर मृदु मृदु हँसकर कहा मेरा इतना आग्रह सिर्फ इसीलिए है बेटी! मैं तो तुम्हारे हृदयको आरसीके समान स्पष्ट देख पा रहा हूँ। तुम्हारे कल्याणका हाथ बहुत उज्ज्वल दिखाई पड़ रहा है। और यह भी कहता हूँ कि तुमको छोड़कर यह काम कर ही कौन सकता है करेगा ही आखिर कौन! उसके धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष सबकी तुम ही तो

संगिनी हो। तुम्हारे हाथ ही तो उसकी सारी भलाई निर्भर है। उसकी शक्ति तुम्हारी बुद्धि। वह भार वहन करके चलेगा तुम मार्ग दिखाओगी। तब ही तो दोनोंका जीवन सार्थक होगा बेटी। इसी कारण तो आज मेरे सुखकी सीमा नहीं है। आज मैंने आँखोंके सामने देख पाया है कि विमलको अब डर नहीं है उसके भविष्यके लिए मुझे एक मुहूर्तके लिए भी अब सन्देह करनेकी आवश्यकता नहीं है। लेकिन पूछता हूँ, इतनी शिक्षा इतना ज्ञान — भविष्य जीवन सफल बना उठनेकी इतनी बड़ी बुद्धि तुमने अपने इतनेसे मस्तकमें इतने दिन कहाँ छिपा रखी थी बेटी! आज तो मैं एकदम अवाक् हो गया हूँ।"

विमलाका सर्वांग चंचल हो उठा लेकिन वह निःशब्द ही बैठी रही। रासबिहारी घड़ीकी तरफ देख चौंककर बोले अरे दस बज गये! मुझे तो अभी दवाखाने बीमारी देखने जाना है।"

विमलाने धीरे धीरे पूछा अब वे कैसी हैं?"

अच्छी ही हैं," कहकर दरवाजेकी तरफ दो-एक पैर बढ़कर सहसा रुककर बोले लेकिन असल बात तो अभी कही ही नहीं।" इसके बाद लौट आये और अपने स्थानपर बैठकर मृदु स्वरसे बोले अपने इस बूढ़े चाचाजीका एक अनुरोध तुम्हें मानना होगा! बोलो मानोगी! फिर उसके मुँहका भाव ताककर बोले, सन्तानका यह दुलार मानके रखना ही होगा। बोलो रखोगी!'

विमलाने अस्फुट स्वरसे कहा बोलिए।"

रासबिहारीने कहा उसने मित्र अपनी भीख ही नहीं त्याग दी है —वह अनुतापसे भी जला जा रहा है; लेकिन तुमसे बेटी इस सम्बन्धमें बातचीत करना होगा देखा; वह अभिमानसे कह नहीं पाया लेकिन आज नहीं रह सकेगा— आ ही पड़ेगा; क्षमा माँगना ही तुम माफ कर दो यो न हो! यही मेरा एकमात्र अनुरोध है कि अन्यायका जो दण्ड तुमने उसे दिया है उस दण्डको वह कमसे कम एक दिन और भोग ले।

यह कहकर विमलाके मुँहपर विस्मयका चिह्न देखकर वे कुछ हँसे। फिर स्नेहसे भीगे स्वरसे बोले तुम्हें खुद कितना कष्ट हो रहा है, यह क्या मुझसे छिपा है बेटी! तुम्हें क्या मैं पहचानता नहीं! तुम मेरी ही तो बेटी हो। बल्कि मैं जानता हूँ कि तुम उसकी अपेक्षा भी अधिक कष्ट पा रही हो। लेकिन अपराधका पूरा दण्ड मिले बिना प्रायश्चित्त नहीं होता। वह गंभीर दुःख यह और एक दिन सहन न करेगा तो शुद्ध नहीं होगा! यदि कभी न बच सके तो उससे

साक्षात् मत करो — जाय वह विफल होकर ही लौट जाय! यह यन्त्रणा और भी कुछ समय उसे भोग लेने दो। यही मेरा एकान्त अनुरोध है विजया।"

रासबिहारीके चले जानेपर विजया अकृत्रिम विस्मयसे आविष्टकी नाईं स्तब्ध होकर बैठी रही। इन सब बातोंकी — इस प्रकारके व्यवहारकी उसने बिलकुल प्रत्याशा नहीं की थी। बल्कि इससे ठीक उलटेकी आशंका करके उसने मानो ही उसने अपनेको कड़ा बना लेनेकी मन ही मन चेष्टा की थी। विवाद आज टल जाकर चला गया है, लेकिन अवश्य ठीक समय वह अवसर नहीं आयगा। और तब रासबिहारीके साथ उसे एक बहुत ही कड़े ढंगसे बरतनेका मौका आयगा। उसकी सारी बीभत्सताकी नंगी मूर्तिकी कल्पना करके विजयाके मनमें तिल भर भी शान्ति नहीं रही थी।

जब वृद्ध धीरे धीरे बाहर चला गया तब उसके हृदयपरसे सिर्फ भयका ही एक भारी पत्थर नहीं उतर गया बल्कि—इस व्यक्तिसे किसी समय वह आन्तरिक श्रद्धा करती थी यह बात भी उसे याद आ गई और क्यों इतनी बड़ी श्रद्धा धीरे धीरे चली गई—उसके दुःखके आभास मनमें आ आकर उसे कष्ट देने लगे। ऐसा भी एक संशय उसके मनमें उठने लगा कि हो न हो वृद्धका यथार्थ सेन्टमेन्ट न समझकर ही मैंने उनके प्रति मन ही मन अविचार किया है और परलोकगत पिताकी आत्मा अपने बाल्य-बन्धुके प्रति किये गये अन्यायसे दुःखी हो रही है। वह बार बार अपने आप ही कहने लगी "क्यों उन्होंने तो उस अपराधके बदले अपने लड़केको भी क्षमा नहीं किया। बल्कि वे तो बार बार यह अनुरोध कर गये हैं कि मैं कहीं उसे सहज ही क्षमा करके उसके दुष्कर्मोंके परिणामको कम न कर दूँ।"

और एक बात है। वृद्धके अनुरोध-उपरोध, आत्मग्लानि-आवेदनके भीतर जो इशारा सबसे ज्यादा छिपा रहकर भी सबसे अधिक स्पष्ट हो उठा था वह था विजयाका असीम प्रेम और उसका ही अवश्यम्भावी फल—प्रबल ईर्ष्या।

यह वस्तु विजयाके निजके समीप भी अज्ञात नहीं थी लेकिन बाहरके आलोचनसे मानों वह एक नई तरह उठाकर उसके हृदयमें आकर लगी। इतने दिनों तक जो सिर्फ उसके हृदयके तलदेशमें ही विराजकर पड़ी थी, वही बाहरके आघातसे ऊपर आ गई और हृदयके ऊपर विस्तार कर पड़ने लगी। इसीसे रासबिहारीके बहुत पहले चले जानेपर भी उनकी बातचीतके संसार उसके दोनों कानोंमें गूँजती रही और विजया वैसी ही निःस्तब्ध खिड़कीके बाहर देखती विभोर बैठी रही। यह सत्य है कि ईर्ष्या वस्तु संसारमें सदैवसे निन्दित है।

तथापि उसी निश्चित रूपसे आज विजयाकी आँखोंमें विलासकी बहुत-सी निन्दाको पीस कर दिया और जिन लोगोंको प्रतिपक्षी कल्पना करके इन दोनों पिता-पुत्रोंकी दुर्वार प्रकारकी प्रतिहिंसाकी भयानकता उसे प्रति पल निर्मम और निर्जीव किये डाल रही थी, आज फिर उन लोगोंको ही अपना आदमी समझनेका सुभीता पानेसे मानो उसकी जान बच गई।

कालीपद आकर बोला — "माजी, तो फिर चलो और एक चिट्ठी लिखवा दें कि अब मेरा जाना न हो सकेगा।"

विजया इधर उधर करके बोली "अच्छा —

कालीपद जा ही रहा था कि विजयाने उसे बुलाकर कहा और झुकियाके साथ कहा — "न हो मैं यह कहती हूँ कालीपद, कि चिट्ठी जब लिख ही दी है तब महीने-भरके लिए एक बार घर हो ही न आओ। उनकी बात भी रहे, तुम्हारा भी एक बार घर जाना हो जाय — बहुत दिनोंसे गये भी तो नहीं हो — क्या कहते हो?"

कालीपद मन ही मन लज्जित हो गया लेकिन सम्मत होकर बोला — "अच्छा तो मैं महीने-भरके लिए घूम ही आता हूँ माजी।" उसके चले जानेपर अपनी इस दुर्बलतासे विजयाको न जाने कैसी भारी लज्जा लगने लगी। लेकिन फिर भी वह उसे लौटाकर मना नहीं कर सकी। इसमें भी उसे शरम मालूम हुई।

२०

दोतरके किनारेके कमरेमें विजयाकी जमींदारीका कामकाज चलता था। उसके सामने दो घने पत्तोंके वोदीके पेड़ोंकी कतार थी। इस कारण रहनेके घरके अन्दरके बरामदेसे वहाँका प्रायः कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता था। इसके सिवा पूर्व दीवारमें एक छोटा-सा दरवाजा था जिसमेंसे आने-जानेपर कर्मचारियोंमें कौन कब आ-जा रहा है, सो कुछ भी न जाना जा सकता था।

उस दिनसे दयाल फिर नहीं आये। काम करने कचहरीमें आते हैं या नहीं संकोचवश यह पता भी विजयाने नहीं लगाया। और विलासबिहारी इस ओर पैर नहीं रखते, यह किसीसे पूछे बिना ही उसने स्वतःसिद्धके समान मान लिया। बीचमें एक दिन रासबिहारी केवल विजयासे मिलनेके लिए आये थे। लेकिन साधारण भावसे दो-चार बीमारीकी बातें छेड़कर उनसे और कोई बात ही नहीं हुई।

मनुष्यके अन्तरकी बात तो अन्तर्यामी ही जानें लेकिन जो प्रसन्नता और सहृदयता लेकर उस दिन रासबिहारी पुत्रके विरुद्ध वकालत कर गये थे किसी अज्ञात कारणसे वह भाव उनका बदल गया है, यह निश्चित समझकर विजयाने सहज अनुमान किया था। मोटे हिसाबसे सब कुछ मिलाकर एक प्रकारकी अतृप्ति और अशान्तिमें ही उसके दिन कट रहे थे। इस तरह और भी कई दिन कट गये।

आज तीसरे पहर विजया अपने घरके ही निकट नदी-किनारे थोड़ा-सा टहल आनेके लिए अकेली बाहर निकल रही थी कि इस नायब कुछ बही-खाते बगलमें दबाये सामने आ खड़े हुए और भक्ति-भावसे प्रणाम करके बोले "कहाँ जा रही हैं मा? कन्हैयासिंह कहाँ है?"

विजयाने हँसकर कहा, "यहीं नजदीक ही थोड़ासा नदीके किनारे टहल आनेके लिए जा रही हूँ। दरबानकी जरूरत नहीं है। क्या आपको मेरी कोई आवश्यकता है?"

नायबने कहा हाँ थोड़ासा काम था। पर न हो कल ही हो जायगा।" उसके लौटनेको उद्यत होते ही विजयाने दुबारा हँसकर पूछा यदि थोड़ा-सा ही काम है तो आज ही कहिए न। इतने बही-खाते लेकर कहाँ जाते हैं?'

नायबने उन सबको दिखाकर, आपके पास ही आया हूँ। पिछले सालका हिसाब तैयार हो गया है रोकड़-खाताकर इसपर दस्तखत कर देने होंगे। इसके सिवा छोटे बाबूने हुक्म दिया है कि बाद सालके हर रोजके जमा-खर्चमें भी आपकी सही लेनी चाहिए।"

विजया बहुत ही विस्मित होकर लौट आई और बाहरके कमरेमें जाकर बैठ गई। नायबने साथ ही आकर उन सबको टेबुलपर रख दिया। ज्यों ही वह बही-खाते खोलने लगा त्यों ही विजयाने बाधा होकर प्रश्न किया यह हुक्म छोटे बाबूने कब दिया?"

"आज ही सबेरे दिया है।"

"आज सबेरे वे आये थे?"

वे तो रोज ही आते हैं।"

"इस समय कचहरीमें हैं?"

नायबने गरदन हिलाकर कहा मुझे भेजकर वे अभी गये हैं।"

उस दिनका हंगामा किसी भी कर्मचारीसे छिपा नहीं था। नायबने विजयाकी आदतका इशारा समझकर धीरे धीरे तमाम बातें कहीं ' विलासबिहारी रोज ठीक

ग्यारह बजे कचहरीमें उपस्थित होते हैं, किसीसे कोई विशेष बातचीत नहीं करते एकाग्रतासे काम करके पाँच बजे घर लौट आते हैं। दयाल बाबूको तब तकके लिए छुट्टी दे दी गई है जब तक उनके घरकी बीमारी अच्छी न हो जाय। उनके आनेकी आवश्यकता नहीं है।"

विजयाने लज्जित मुँहसे चुपचाप सब बातोंको सुनकर समझ लिया कि विलासने नये नियम अकारण अभिमानके कारण या रूठकर ही जारी किये हैं। तथापि उसने यह बात नहीं कही कि इतने दिनों किसकी सलाहसे काम चलता था, अब भी चलेगा उसकी जिम्मेदारी सही अनावश्यक है। बल्कि यह बोली, "इन्हें रहने दीजिए, कल सबेरे आकर मेरी सही ले जाइएगा।" इस तरह नायबको विदा करके वह उसी स्थानपर स्तब्ध बैठी रही। बाहर दिनका प्रकाश क्रमशः मन्द होने लगा और पड़ोसियोंके घरोंके शंखोंके शब्दसे सन्ध्याका शान्त आकाश मुखर हो उठा; फिर भी उसके उठनेके लक्षण दिखाई नहीं दिये। कहा नहीं जा सकता कि और भी कितनी देर वह उसी प्रकार एक भावसे बैठकर काट देती, लेकिन जब बैरा हाथमें दीपक लेकर कमरेमें घुसा और सहसा अन्धकारमें मालकिनको अकेला देखकर चौंक उठा तब विजया भी लज्जित होकर उठ खड़ी हुई और बाहर आते ही एकदम स्तम्भित हो गई।

क्योंकि जिसे उसने अपनी आँखोंसे देखा वह उसकी अत्यन्त दूरकी कल्पनासे भी परे था। क्या यह किसी कारणसे—किसी समय भी फिर इस मकानमें पैर रख सकता है! फिर भी उस धुँधले अँधेरेमें उसे स्पष्ट दिखाई पड़ा कि उस दिनके उस साहबने हैरम्बेल प्राप्त लाये थे, कुछ उसी वेशके साथ गेटके भीतर प्रवेश किया है और साधारण भलमानसोंसे कुछ जल्दी जल्दी कदम रखता हुआ यह इस ओर ही आ रहा है।

आज उसे किसी पुलिस कर्मचारीका भ्रम नहीं हुआ किन्तु आनन्दकी उस अपरिमित दीप्ति रेखाको जैसे उसकी आकाश-पाताल तक व्याप्त निराशा और भयके अन्धकारने एकदम मानो लील लिया। वृक्ष-लताओंसे घिरे टेढ़े-तिरछे रास्तेसे उसकी देह अदृश्य आरम्भ होने लगी लेकिन रास्तेके कंकड़ोंसे उसके जूतेकी आवाज क्रमशः ही अधिक निकट आने लगी। विजयाने मन ही मन सोचा कि उसे आदर करके बिठलाना भारी अन्याय है, लेकिन दरवाजेके बाहरसे अवहेलना-पूर्वक विदा कर देना भी तो असाध्य है।

इस अवस्था-संकटसे मुक्ति पानेका उपाय उसे किसी ओर खोजनेपर भी न मिला। जिस समय रास्तेके मोड़पर कामिनी-वृक्षके निकट वह अपनी एक

सुन्दर पैर उसके सामने आ पड़े। उसी क्षण वह पीछे फिरकर तेज़ीके साथ अपने कमरेमें चली गई। वृद्ध नायब अपनी धुनमें चला आ रहा था, अकस्मात् साहबको देखकर चौंक उठा। लेकिन साहबके प्रश्नसे उसने उन्हें पहचान लिया और तब आश्वस्त तथा निरापद होकर जवाब दिया "जी हाँ, वे बाहरकी बैठकमें ही हैं।" इसके बाद ही वह चला गया। प्रश्न और उत्तर दोनों ही विजयाने सुने। क्षण-भर बाद ही कमरेमें पहुँचकर नरेन्द्रने नमस्कार किया। उसने छड़ी और टोपी टेबुलपर रखकर हँसते हुए कहा "मैं देखता हूँ, मेरी दवाका आश्चर्यजनक फल हुआ है, वाह!"

एक क्षणके पहले ही विजयाने मन ही मन सोचा था कि आज जान पड़ता है वह आँखें उठाकर नरेन्द्रके सामने देख भी नहीं सकेगी।—एक वाक्य भी शायद तक उसके मुँहसे नहीं निकल सकेगा। लेकिन आश्चर्य है कि उसका केवल कण्ठस्वर सुनते ही विजयाका न सिर्फ द्विधा-संकोच ही इन्द्रजालके समान लुप्त हो गया बल्कि उसके हृदयके अँधेरे अज्ञात कोनेमें सुरीली वीणाके तारोंके ऊपर किसीने मानो बिना जाने उँगली फेर दी और पल-भरमें ही विजया अपना सारा विषाद भूलकर बोल उठी, 'किस प्रकार जाना? मुझे देखकर या किसीसे सुनकर?"

नरेन्द्र बोला "सुनकर क्यों, आपने क्या दयाल बाबूसे सुना नहीं कि मेरी दवा खानी भी नहीं पड़ती सिर्फ प्रिस्क्रिप्शनके ऊपर एक बार आँखें फिराकर उसे फाड़कर फेंक देनेसे ही आधा काम हो जाता है।" और अपने इस मजाकसे प्रसन्न होकर उसने अट्टहाससे सारा कमरा हिला दिया।

विजयाने समझा ये दयालसे सब कुछ सुनकर ही आज व्यंग करने आये हैं। इसीलिए इस अशोभन उच्च हास्यसे मन ही मन नाराज होकर लापरवाही करते हुए उसने कहा 'ओह! इसीलिए शायद बाकी आधा अच्छा करनेके लिए ही दया करके फिर दवा लिख देने आये हैं।"

धोखा खाकर नरेन्द्रकी हँसी थम गई। उसने कहा "जान पड़ता है यह सब तमाशा हुआ!"

विजयाने कहा 'इसीलिए, जान पड़ता है इतने खुश हो रहे हैं।"

नरेन्द्रका मुँह गम्भीर हो गया। उसने कहा "खुश हुआ हूँ? बिल्कुल नहीं। अवश्य यह बात एकदम अस्वीकार नहीं कर सकता कि सुनते ही पहले थोड़ा-सा आमोद प्रतीत हुआ था, लेकिन उसके बाद ही वास्तवमें दुःखी हुआ हूँ। यह सच है कि विलास बाबूका मिजाज उतना अच्छा नहीं है, खामख्वाह नाराज होकर दूसरेका अपमान कर बैठते हैं,—लेकिन इसीलिए आप भी

असहिष्णु बनकर उससे अपमानकी बातें कर बैठे यह भी तो अच्छा नहीं है। सोचकर तो देखिए मजाक बात चलनेपर भविष्यत्में कितनी बड़ी लज्जा और दुःखका कारण बन जाती! मेरा विश्वास कीजिए वास्तवमें यह सुनकर मैं अत्यन्त दुःखित हुआ हूँ। मेरे कारण आप लोगोंमें इस प्रकारकी एक अप्रीतिकर घटना घटित होनेसे—"

इस व्यक्तिके हृदयकी पवित्रतासे विमला मन ही मन मुग्ध हो गई। फिर परिहासकी भंगीसे उसने कहा "लेकिन हँसी भी तो रोक नहीं पा रहे हैं!" कहकर वह खुद भी हँस पड़ी।

नरेन्द्रने जोर लगाकर इस बार अत्यन्त गम्भीर होकर कहा 'क्यों आप बार बार ऐसा सोचती हैं? सचमुच ही मैं अत्यन्त दुखी हुआ हूँ। लेकिन उस समय आप लोगोंके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं जानता था।" थोड़ी देर चुप रहकर फिर उसने कहा "उस दिन ही नीचे उनके पिताजीने सब हाल सुनाकर कहा कि यह सब ईर्ष्याकी करामात है। दयाल बाबू भी कुछ नहीं बोले। सुनकर मैं यह नहीं समझा कि मुझसे कितनी बड़ी भूल हुई। लेकिन मैं यह भी तो नहीं सोच पाता कि इसमें आपलोगोंमें मुझमें ही ईर्ष्या करनेके लायक क्या है। आप लोग भाग्यशाली हैं, आवश्यकता पड़नेपर उनसे ही बातें करती हैं,—मुझसे भी की हैं। इसमें कौन-सा दोष उन्होंने देख पाया मैं तो अब भी नहीं सोच पाता। जो भी हो मुझे आप लोग क्षमा कीजिएगा—और अपनी मायामें रख क्या चाहते हैं,—अभि—अभिनन्दन! वही अभिनन्दन आप लोगोंका लिये जा रहा हूँ, आप लोग सुखी हों।"

विमलाने यह लक्ष्य किया था कि उसने उस दिनके अपने आचरणका उल्लेख करके भी मेरे आचरणके सम्बन्धमें लेशमात्र भी इशारा नहीं किया लेकिन उसकी अन्तिम बातसे विमलाकी दोनों आँखें अकस्मात् आँसुओंसे प्लावित हो उठीं। उसने मस्तक फिराकर किसी तरह आँखोंके आँसू सँभाल लिये।

प्रत्युत्तरके लिए प्रतीक्षा किये बिना ही नरेन्द्रने पूछा "अच्छा यह तो बताइए कि उस दिन कामिनीके द्वारा सहसा स्टेशनपर मारमेलेडजेम क्यों भेज दिया था?"

विमलाने अपना चेहरा भरसक साफ करके कहा "अपनी चीज आपने खुद ही तो वापस ले लेनी चाही थी।"

नरेन्द्र बोला, "यह ठीक है, लेकिन कीमतकी बात तो उसके द्वारा आपने कहला नहीं भेजी? ऐसी दशामें तो मेरा—"

विजयाने कहा "हाँ, नहीं समझ सकी। बुखारके कारण मुझसे भूल हो गई। लेकिन उस भूलका दण्ड भी तो आपने मुझे कम नहीं दिया!"

नरेन्द्रने लज्जित होकर कहा "लेकिन काशीपदने तो कहा —"

विजया बाधा देकर बोली "सो मैंने सुना है। उसने कुछ भी कहा हो लेकिन आपने इस बातपर कैसे विश्वास कर लिया कि आपको उपहार देनेकी गुस्ताखी मुझसे हो सकती है? और यदि वह सचमुच ही की हो तो उसका दण्ड अपने हाथसे क्यों नहीं दिया? नौकरके द्वारा क्यों अपमान किया? आपका मैंने क्या बिगाड़ा था?" यह कहते कहते ही उसका गला रुँध गया।

नरेन्द्रने व्यथित और अत्यन्त आश्चर्ययुक्त होकर विजयाके मुँहकी तरफ निहार कर देखा कि वह गरदन फिराकर खिड़कीके बाहर ताक रही है। मुँहपर उसकी दृष्टि नहीं पड़ी पड़ी सिर्फ उसके कानोंकी हीरेकी कनफूल बोलेके सिरेपर,—दीपक आलोकमें वह विचित्र रश्मियाँ प्रतिबिम्बित कर रहा था। दोनों ही कुछ क्षण मौन रहे। उसके बाद नरेन्द्रने दुःखी स्वरसे धीरे धीरे कहा 'यह मैं उसी समय समझ गया था कि मैंने ठीक नहीं किया, लेकिन गाड़ी उस समय छूट चुकी थी। काशीपदका दोष क्या था, उसपर मेरा नाराज होना किसी प्रकार भी उचित नहीं हुआ।' थोड़ा-सा चुप रहकर फिर कहा 'इसलिए मैं अच्छी तरह जान गया हूँ कि यह ईर्ष्या कितनी बुरी चीज है। यह सिर्फ अपनी जगह पड़ी ही नहीं रहती, छूतकी बीमारीके समान दूसरे लोगोंपर भी आक्रमण किए बिना नहीं रहती। अब तो मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि मेरे प्रति ईर्ष्या करनेके समान भ्रम विलास बाबूके और कुछ हो ही नहीं सकता। उसके पिताजीने भी उसके लिए लज्जा और दुःख प्रकाशित किया लेकिन आप सुनकर शायद आश्चर्य कीजिएगा कि मेरी तरफसे भी उस समय कुछ कम भूल नहीं हुई।"

विजयाने मुँह फिराकर प्रश्न किया, "आपकी भूल कैसी?"

नरेन्द्रने अत्यन्त सहज और स्वाभाविक भावसे उत्तर दिया "मेरा निरर्थक अपमान करनेके कारण आप सचमुच ही दुःखी हुई थीं और उस समय आपकी बातें सुनकर यह यकीन समझ लिया था। उसके बाद रासबिहारी बाबूने जब पीछे जाकर अपने लड़केकी उस ईर्ष्याकी बात बताकर मुझसे दुःख करनेसे मना किया तब सचमुच मेरा दुःख मानो और भी बढ़ गया। मेरे मनमें फिर फिरकर यही आने लगा कि निश्चय ही कुछ कारण है नहीं तो यों ही कोई किसीसे ईर्ष्या नहीं करता। आपसे आज मैं ठीक कह रहा हूँ कि उसके बाद आठ-दस दिन तक

चौबीस घण्टोंमेंसे सम्भवतः तेईस घण्टे केवल आपके विषयमें ही सोचता रहा हूँ और आपकी बीमारीकी वे बातें ही याद आती रही हैं। इसीलिए तो मैंने कहा कि यह क्या मजाकका सूखा रोग है। काम-काज चूल्हेमें गया —दिन-रात आपकी ही बात मनमें चक्कर काटने लगी। भला बताइए तो इसकी क्या आवश्यकता थी! और सिर्फ क्या इतना ही, दो-तीन दिन अनर्थक इसी रास्तेसे पैदल चलकर क्या आया केवल आपको देखनेके लिए। इस तरह कितने ही दिनों तक यह पागल भूत मेरी गरदनपर सवार बना रहा!" कहकर वह हँसने लगा।

विजयाने न मुँह फिराकर देखा और न किसी भी बातका जवाब दिया। चुप-चाप उठकर बगलके दरवाजेसे वह कमरेके भीतर चली गई और तब दूसरे व्यक्तिकी हँसी ठहाका मारते ही लुप्त हो गई। जिस रास्ते वह चली गई उसी ओर अँधेरेमें निर्निमेष देखता हुआ नरेन्द्र हतबुद्धि होकर सिर्फ यही सोचने लगा कि मैं किस बातसे और किस तरहके अपराधकी सृष्टि कर बैठा!

अतएव बेहराने आकर जब कहा "बाबू जाइएगा नहीं, आपके लिए चाय तैयार हो रही है।" तब नरेन्द्र व्यस्त होकर बोल उठा "मुझे चायकी तो आवश्यकता नहीं है।"

"लेकिन माईजीने आपसे बैठनेको कह दिया है।" कहकर बेहरा चला गया। इस बातसे भी नरेन्द्रको कम चकित नहीं किया।

प्रायः पन्द्रह मिनटके बाद नौकरके हाथ चाय और अपने हाथ जल-पानकी तश्तरी लेकर विजयाने प्रवेश किया। दीपकके उस धुँधले आलोकमें शायद किसीकी भी आँखें यह न पकड़ पातीं कि हजार यत्न करके भी वह अपने मुँहपरसे रोनेकी छाया पोंछकर दूर नहीं कर पाई है। लेकिन, उसने अपनी ओरसे कोई सम्मति प्रकाशित नहीं की। इन थोड़े ही दिनोंमें उसने अनेक विषयोंमें सतर्क होना सीख लिया है। जिस दिन एक तरहसे अपरिचित होनेपर भी उसने अपने भीतरका साधारण-सा कुतूहल और इच्छाकी चञ्चलता दबा न सकनेके कारण हाथसे विजयाका मुँह ऊपर उठा दिया था वह दिन अब नहीं रहा था। इसीसे चुप बैठा रहा।

नौकर टेबुलपर चाय रखकर चला गया। विजया उसीके पास जल-पानकी तश्तरी रखकर अपनी जगहपर आ बैठी। नरेन्द्रने उसी क्षण तश्तरी नजदीक खींचकर इस प्रकार खानेमें मन लगा दिया जैसे वह इसीकी प्रतीक्षा कर रहा था।

पाँच-छः मिनट चुपचाप कट जानेके बाद विजयाने ही पहले बात की। नीरवताका गोपन भार अधिक न सह सकनेके कारण सहसा जैसे जोर लगाकर ही वह हँसी और बोली, "कहीं आपने तो अपने उस पथके भूतकी बात खतम ही नहीं की ?"

नरेन्द्र शायद इसी बात सोच रहा था, इसीसे उसने मुँह उठाकर पूछा, किसकी बात कह रही हैं ?

विजयाने कहा, "वही पागल भूत जो कुछ दिनों पहले आपके कन्धेपर चढ़ बैठा था। अब तो वह उतर गया है न ?"

इस बार नरेन्द्र भी हँसकर गरदन हिलाकर बोला, "हाँ, उतर गया है।"

विजयाने कहा, "बड़ा अच्छा हुआ। कहिए कि आप बच गये! नहीं तो कौन जानता है वह आपको और कितने दिन घुड़दौड़ कराता हुआ घूमता!"

नरेन्द्र हाथका प्याला मुँहसे लगाकर सिर्फ इतना ही बोला, "हाँ।"

विजयाने यद्यपि फिर कोई अच्छी बात कहनी चाही, लेकिन सहसा और कोई बात ढूँढ न पानेके कारण वह गले तक आई हुई लम्बी साँस दबाकर चुप रह गई। दूसरेकी गरदनसे भूत उतर जानेके आनन्दकी अनुभूतिके बीच भी वेदना मन उसको अतिक्रम करके बाहर हो गया।

फिर कुछ क्षणों तक सारा कमरा स्तब्ध बना रहा। नरेन्द्रने धीरेसे सामने पासकी प्यालीको नरम करके ठेलकर रख दी; और तब पाकेटसे घड़ी बाहर निकाल कर कहा, "अब हम विदाका ही समय है, मैं चला।"

विजयाने मृदुस्वरसे प्रश्न किया, "कलकत्ता लौटनेके लिए यही शायद अन्तिम गाड़ी है ?"

नरेन्द्र उठकर खड़ा हो गया और टोपी सिरपर रखकर बोला, "है तो और भी एक गाड़ी, लेकिन वह ज्यादा लेट स्टेशन पार जायगी। अच्छा—नमस्कार।" कहकर उसी उठकर कुछ तेज चालसे ही वह कमरेसे बाहर हो गया।

१२

विलास यथासमय कचहरी जाकर और अपना काम समाप्त करके मध्यान्ह चला आता था; नितान्त आवश्यकता होनेपर कर्मचारी भेजकर विजयाका मत ले लेता था। लेकिन घर नहीं आता था। विजयाने भी यह समझ लिया था कि बुला भेजे बिना वह घर अपनी तरफसे उपस्थित होकर नहीं आयगा

परन्तु उसके आचरणसे अनुताप और आहत अभिमानकी वेदनाके अतिरिक्त क्रोधकी ज्वाला व्यक्त नहीं होती थी इसलिए विजयाका निजका क्रोध शान्त हो गया था।

बल्कि, अपने व्यवहारसे ही एक नाटकके अभिनयका आभास अनुभव करके उसे बीच बीचमें बड़ी लज्जा होती थी। अक्सर ही वह सोचती थी कि न जाने कितने लोग इस बातको लेकर हँसी मजाक कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त जो व्यक्ति अब तक उसकी आँखोंमें सर्वेसर्वा होकर विराजता था उसे —विशेष करके जमींदारीके छोटे-मोटे कामोंमें उसने जिन लोगोंपर शासन करके उन्हें अपना शत्रु बना लिया है उन सबके सामने —अकस्मात् इतना छोटा कर देनेके कारण विजया अपने एकान्त हृदयमें उसकी व्यथा अनुभव कर रही थी। पहलेकी अवस्थाको वापस न लौटाकर भी सिर्फ इस व्यथाके अस्तित्वको ही यदि वह किसी प्रकार मिटा दे सकती तो बच जाती। जिस समय उसकी ऐसी यह अवस्था थी एक दिन उसी समय सहसा तीसरे पहर कचहरीके बेहराने आकर कहा, "विलास बाबू मिलना चाहते हैं।

मासका पन्द्रह गया था। विजया चिट्ठी लिख रही थी मुँह उठाये बिना ही उसने कहा "आनेको कहो।" उसका मन अज्ञात आशंकासे काँपने लगा। लेकिन विलासके प्रवेश करते ही वह उठ खड़ी हुई और शान्त भावसे नमस्कार करके बोली "आइए।" विलासने आसन ग्रहण करके कहा "कामकी अधिकताके कारण आ नहीं सका तुम्हारा शरीर तो अच्छा है?"

विजयाने गरदन हिलाकर कहा "हाँ।"

"बड़ी दुबली लग रही है!"

विजयाने इसका उत्तर नहीं दिया लेकिन विलासने भी प्रश्न न दुहराकर दूसरी बात छेड़ दी। वह बोला "अब नये वर्षका नया दिन है। इच्छा होती है कि सबको इकट्ठा करके एक सबेरे कुछ भगवत्-चर्चा की जाय।"

विलासने अपने पहले प्रश्नके उत्तरके लिए जोर नहीं डाला, बल्कि इससे ही विजयाके मनपरसे एक भार उतर गया। वह खुशी होकर बोल उठी "यह तो बहुत अच्छी बात है।"

विलास बोला "लेकिन अनेक कारणोंसे मन्दिर आदिकी सुविधा नहीं हो सकेगी। यदि तुम्हारी असम्मति न हो तो मैं कहता हूँ कि इसी स्थानपर—"

विजयाने उसी क्षण सम्मत होकर समर्थन किया यहाँ तक कि वह उत्सा-

खिल हो उठी। उसने कहा — तो फिर घरको फूल-पत्तों और लताओंसे सजा देना ठीक न होगा? आपके मकानमें तो फूलोंकी कमी नहीं है। यदि मालीको हुक्म देकर कल सबेरे ही—आपकी क्या राय है? हो सकता है न?"

विकास विशेष किसी प्रकारके आडम्बरका आयोजन न देखकर सहज भावसे ही बोला — अवश्य ऐसा ही होगा। मैं सारा बन्दोबस्त कर दूँगा।"

विभा क्षण-भर मौन रहकर बोली — कल तो वर्षका पहला दिन है—मैं कहती हूँ, शाममें थोड़ा-सा खिलाने-पिलानेका भी आयोजन किया जाय—"

विकासने इस प्रस्तावका भी अनुमोदन किया और कहा कि उपासनाके बाद जल-पानका प्रबन्ध अच्छी तरह हो जाय, इसके लिए मैं गुमाश्तेको हुक्म देता जाऊँगा। और भी दो-चार साधारण बातें करके जब वह विदा हो गया, तब बहुत दिनोंके बाद विभाके अन्तरमें तृप्ति और आनन्दकी रागिनी बजने लगी। उस दिनके इस छोटे संघर्षके कारण सामान्य अस्वाभाविक आचरणमें जो वस्तु उसे व्यथित कर रही थी, उसका भार कितना अधिक था, आज छुटकारा पाकर उसने यह बात जिस प्रकार अनुभव की उस प्रकार आज तक किसी दिन नहीं की थी। इसीलिए आज उसने जो पहलेके साथ सोचा कि इन कुछ दिनोंके भीतर ही विकास पहलेकी अपेक्षा कैसे अधिक दुर्बल हो गया है। अपनी आँखोंके सामने साफ साफ देखकर कि अपमान और पश्चात्तापके आघातने उसकी प्रकृतिको बदल दिया है, अनजानेमें ही विभाकी लम्बी साँस निकल पड़ी और वह उस रासबिहारीकी उस दिनकी बातोंपर चुपचाप मन ही मन विचार करने लगी। विलासबिहारी उसे अत्यन्त प्रेम करता है, यह बात उसके भावसे इंगितसे चेष्टासे सब प्रकारसे व्यक्त हो चुकी है, फिर भी एक दिनके लिए भी एकान्तमें इस प्रेमकी बातने विभाके मनमें स्थान नहीं पाया। बल्कि, सामने पड़े अँधेरेमें एकाकी कमरेमें उसका तन-मन जब व्यथासे व्याकुल हो उठता है तब अलक्ष्यमें निःशब्द पद-संचार करके जो धीरे धीरे उसकी बगलमें आ बैठता है, वह विलास नहीं और एक व्यक्ति है। अथच सन्ध्यामें जब पुस्तकमें मन नहीं लगता, सिलाईका काम भी अच्छा नहीं लगता है, प्रशान्त अस्त-गत सूर्यकी किरणोंसे सोना सींच दिया करता है, तब सुदूर भविष्यतकी पर गिरस्तीकी जो चित्र छवि इस सूने घरको पूर्ण करके उसके अन्तरमें धीरे धीरे काम करती है, उसमें विलासके लिए कहीं थोड़ा-सा भी स्थान नहीं रहता। और मजा यह कि जो व्यक्ति इसका सारा स्थान घेर कर बैठ जाता है, उसका

मनुष्य संसार-यात्राके दुर्गम पथमें सहायक अथवा सहयोगीके हिसाबसे विमलकी अपेक्षा बहुत ही कम है। वह जैसा अपढ़ है वैसा ही निकम्मा भी। विपत्तिके दिन उससे कोई भी सहायता नहीं मिलेगी। ऐसे अकर्मण्य मनुष्यके सारे भरणपोषणका बोझा वह खुद सारे जीवनके लिए माथेपर रखकर चल रही है यह जानते हुए भी विजयाका समस्त देह-मन अपरिमित आनन्दसे बरबार काँपने लगता है। विमलके घर आनेपर विजयाके इन मनोभावमें आज भी कोई बाधा नहीं पड़ी लेकिन आज उसने बिना ही याचनाके विमलका दोनोंके पुनर्मिलनका भार अपने हाथमें ले लिया और किसीसे कोई तर्क किये बिना उसने यह बात मान ली कि घटना-चक्रसे उसके स्वभावका जो रूप प्रकट हो गया था उसका वास्तविक स्वभाव उतना हीन नहीं है। यहाँ तक कि अत्यन्त उदारताके साथ आज उसने यह भी अपनेसे नहीं छिपाया कि विमलके समान मानसिक अवस्थामें पड़कर अन्तके अधिकांश व्यक्ति शायद ही दूसरे प्रकारका आचरण करते। उसने प्रेम किया है, और प्रेमके अपराधसे ही वह लांछित और पीड़ित हुआ है बार बार यही स्मरण करके आज उसने करुणा-मिश्रित ममताके साथ उसे क्षमा कर दिया।

सबेरे उठकर विजयाने सुना, विमल बहुत पहले ही नौकर-चाकर लेकर घर सजानेके काममें लग गया है। वह भी जल्दी ही तैयार हो गई और नीचे उतर कर लज्जित भावसे बोली मुझे तुमने क्यों नहीं जगाया ?"

विमल स्नेहमय स्वरमें बोला "जरूरत क्या थी ?"

"विजयाने थोड़ा-सा हँसकर प्रसन्न मुखसे उत्तर दिया जान पड़ता है मैं इतनी अकर्मण्य हूँ कि इस काममें भी कोई सहायता नहीं कर सकती ? अच्छा अब बताइए, मैं क्या करूँ ?

अनेक दिनोंके बाद विमलने आज हँसा उसने कहा "तुम सिर्फ नजर रखो कि हम लोगोंके काममें कोई भूल तो नहीं हो रही है।'

'अच्छा " कहकर विजया प्रसन्न मुखसे एक कोनेपर जाकर बैठ गई। थोड़ी देरके बाद उसने प्रश्न किया और खान-पानका प्रबन्ध ?"

विमलने फिरकर देखा और कहा सब ठीक हो रहा है, कोई चिन्ता नहीं है।"

"अच्छा मैं उस तरफ ही क्यों न जाऊँ ?"

अच्छा तो है।" कहकर विमल फिर काममें लग गया।

आठ बजेके भीतर ही सब आयोजन पूरा हो गया। इस बीच विजया अनेक बार आ-आकर अनेक छोटे-मोटे कामोंमें विलासकी सलाह ले गई,—उसे कहीं भी कोई बाधा नहीं मालूम हुई। दोनोंमेंसे शायद किसीने भी यह खयाल नहीं किया कि अनजानमें कब यह संचित विरोधकी ग्लानि मिटकर बात-चीतका रास्ता इतना सहज और सुगम हो गया है।

विजया हँसकर बोली, "एकदम अपदार्थ समझकर आपने मुझे बाद दे दिया है। लेकिन मैंने भी आपकी एक भूल पकड़ी है, यह बताती हूँ।"

विलासने कुछ अचम्भेमें पड़कर पूछा, "अपदार्थ तो मैंने कदापि नहीं समझा लेकिन भूल कौन-सी पकड़ी है?"

विजया बोली, "हम लोग हैं तो कुल चार-पाँच आदमी लेकिन जलपानका प्रबन्ध हो गया है लगभग बीस आदमियोंका, यह जानते हैं?"

विलासने कहा, "सो तो होना ही चाहिए। बाबूजीने अपने कई बन्धु-बान्धवोंको निमन्त्रण दिया है। पर वे कितने हैं और कौन कौन आवेंगे यह मैं ठीक ठीक नहीं जानता।"

विजयाने बहुत ही विस्मित होकर कहा, "कहाँ, यह बात तो मुझसे कही नहीं!"

विलासने खुद भी विस्मित होकर पूछा, "यहाँसे मेरे जानेके बाद क्या बाबूजीने तुम्हें चिट्ठी लिखकर नहीं बताया?"

"नहीं!"

"लेकिन उन्होंने तो स्पष्ट कहा था —" विलास रुक गया।

विजयाने प्रश्न किया, "क्या कहा था?"

विलासने क्षण-भर स्थिर रहकर कहा, "शायद मेरे सुननेमें भूल हुई हो या फिर वे ही चिट्ठी लिखकर सूचित कर देनेकी बात भूल गये हों।"

विजयाने और कोई प्रश्न नहीं किया, लेकिन उसके मनके भीतरकी ज्योत्स्ना जैसी प्रसन्नता सहसा मेघसे ढँक गई।

आधे घंटे बाद रासबिहारी स्वयं आकर उपस्थित हुए और भी घंटेके भीतर ही उनके निमन्त्रित मित्रोंका दल एक एक करके आने लगा। उनमें सभी ब्राह्मसमाजी नहीं थे, लेकिन फिर भी वे रासबिहारीका आग्रह अनुरोध टाल न सकनेसे बाध्य हुए थे।

रासबिहारीने सबका अत्यन्त आदरपूर्वक स्वागत किया और विजयासे जिन

लोगोंसे साक्षात्-परिचय नहीं था। उनसे परिचित कराते हुए इस वाक्यका इशारा कर देनेमें भी भूल नहीं की कि निकट भविष्यमें ही इस लड़कीके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध होनेवाला है। विभाने आदरपूर्वक अस्पष्ट शब्दसे उनसे आसन ग्रहण करनेको अनुरोध किया। प्रचलित शिष्टाचार-पालनके इन सब कामोंमें जब वह व्यस्त थी, तब निकट ही बगीचेकी ओरसे रासबिहारी दयाल बाबू दिखाई पड़े। लेकिन वे अकेले नहीं थे, एक अपरिचिता तरुणी भी उनके साथ थी। उसकी सुरूपा थी, उम्र विभाकी अपेक्षा शायद कुछ अधिक थी। दयालने उसका अपनी भानजी कहकर परिचय दिया। नाम नलिनी था। कलकत्तेके कालेजमें बी० ए० में पढ़ती है। अभी तक गरमीकी छुट्टी आरम्भ नहीं हुई है, लेकिन मामीकी बीमारीमें सेवा करनेके लिए कुछ पहले ही दो दिन हुए मामाके पास आई है और स्थिर हुआ है कि ग्रीष्मका अवकाश यहीं खतम कर जायगी।

नलिनीको विभाने कलकत्तेमें बिल्कुल ही न देखा हो, सो बात नहीं थी लेकिन दोनोंमें बातचीत नहीं हुई थी। तथापि इतने परिचित और अपरिचित पुरुषोंमें यही एक ऐसी थी जो इसको सबकी अपेक्षा अन्तरंग जान पड़ी। विभाने दोनों हाथ बढ़ाकर उसे आदरपूर्वक अपने कमरेमें खींच लिया और समीप बिठाकर उससे प्रेमालाप आरम्भ कर दिया।

सन्ध्या होनेमें अब थोड़े कुछ देर होनेको थी। शायद कुछ देर थी, इससे सब लोग बाहरके बरामदेमें खड़े होकर बातें कर रहे थे। उसी समय घरके भीतरसे रास-बिहारीका उच्च कंठ सुनाई पड़ा। वे अत्यन्त आग्रहके साथ किसीसे कह रहे थे "आओ बेटा, आओ। तुम्हारे पास ढेर काम रहता है, इससे मुझे आशा नहीं थी कि तुम समय निकालकर आ सकोगे।"

यह सम्मानित और आमन्त्रित व्यक्ति कौन है, यह जाननेके लिए विभाने मुँह उठाकर देखा कि सामने नरेन्द्र आया है। लेकिन असम्भव समझ कर हठात् उसने विश्वास नहीं किया। नलिनीने भी उसीके साथ मुँह उठाकर कहा "नरेन्द्र बाबू!"

उसे रासबिहारीने बुलाया है और वह निमन्त्रण स्वीकार करके इस घरमें आया है, यह घटना ऐसी अचिन्तनीय थी कि उससे विभाकी सारी सोचने विचारनेकी शक्ति ही निर्जीव हो गई। वह उस ओर मुँह उठाकर देख नहीं सकी लेकिन उसने विलासबिहारीकी सविनय अभ्यर्थना स्पष्ट सुनी और दूसरे ही क्षण रासबिहारी दोनोंको लेकर कमरेके बीच आ खड़े हुए। साथ साथ और भी अनेक व्यक्ति आये। तब कुछ शान्त गम्भीर स्वरसे इन दोनों युवकोंको सम्बोधित करके

कहने लगे, "अपने पिताके सम्पर्कसे तुम दोनों आपसमें भाई होते हो यह बात ही आज तुम लोगोंसे मैं विशेष रूपसे कहना चाहता हूँ विकास। जगमाको गये अपराधी चले गये मेरी भी पुकार हो रही है। इस जगतमें इस अभागेका निर्वेदके अतिरिक्त और कुछ भी मित्र नहीं था तुम आजकलके लड़के शायद इस बातको समझोगे नहीं,—समझाना सम्भव भी नहीं है, मैं समझाना भी नहीं चाहता। आज इस नव वर्षके पुण्य दिनमें तुम दोनोंसे केवल अनुरोध करना चाहता हूँ कि तुम अपने पूर्व-विरोधकी कालिमासे इस बूढ़ेके शेष कुछ दिनोंको अन्धकारपूर्ण न कर डालना।" उनकी अन्तिम वाणी काँप उठी और मानों रुलाईसे रुँध गई। नरेन्द्र और न सह सका। उसने आगे बढ़कर विकासका एक हाथ अपने दाहिने हाथसे खींचकर आवेगके साथ कहा "विकास बाबू, मेरे सारे अपराध क्षमा कर दीजिए। मैं आपसे क्षमा माँगता हूँ।"

प्रत्युत्तरमें विकास हाथ छोड़कर नरेन्द्रको बलपूर्वक आलिङ्गन करके बोल उठा "अपराध मैंने किया है नरेन्द्र, तुम ही मुझे क्षमा करो।"

बूढ़े रासबिहारी आँखें मूँदे हुए कम्पित मृदुकण्ठसे बोल उठे "हे सर्वशक्तिमान् परमपिता परमेश्वर! इस दया इस करुणाके लिए तुम्हारे श्रीचरणपद्मोंमें मेरे कोटि कोटि नमस्कार।" यह कहकर उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर माथेसे लगा लिए और चादरके कोनेसे आँखें पोंछते हुए कहा "आजके शुभ मुहूर्तमें तुम दोनोंका जीवन सार्थक हो। आप लोग भी यही आशीर्वाद दीजिए।" यह कहकर उन्होंने विस्मय-विमूढ़ अभ्यागत सज्जनोंके मुँहकी ओर दृष्टिपात किया।

इसके अतिरिक्त और कोई भी कुछ नहीं जानता था, अतएव इस मर्मस्पर्शी करुण अनुष्ठानका यथार्थ तात्पर्य समझ न सकनेके कारण सचमुच ही उन लोगोंके विस्मयकी सीमा न रही। रासबिहारीने पलक मारते ही इसका अनुभव कर लिया। वे उन सबकी तरफ देखकर स्निग्ध भावसे मुस्कुराकर बोले "नारियाँ तो कहा करती हैं कि भारी आनेमें कटती है और जानेमें भी कटती है। सो मेरा भी वही हाल हुआ है। मेरा यह भी लड़का है, यह भी है," कहकर नरेन्द्र और विकासको आँखके इशारेसे दिखाकर कहा "मेरे दाहिने हाथमें अभी पीड़ा होती है बाँये हाथमें भी अभी [illegible] होती है। लेकिन आप लोगोंकी कृपासे आज मेरा अत्यन्त शुभ दिन है, अत्यन्त आनन्दका दिन है। मैं और क्या कहूँ।"

भीतरका मानस गहराईसे न समझनेपर भी प्रत्युत्तरमें सभीने एक प्रकारकी हृदयस्पर्शक मस्तक ध्वनि की।

रासबिहारी थोड़ी-सी गरदन झुकाकर और दुपट्टेके कोनेसे फिर आँखें पोंछकर निकटवर्ती आसनपर चुपचाप बैठ गये। उस विरल गम्भीर मुँहकी तरफ देखकर उपस्थित लोगोंमेंसे कोई भी अनुमान किये बिना न रह सका कि उनका हृदय अनिर्वचनीय भाव-राशिसे ऐसा भर गया है कि अब और कुछ कहनेके लिए वहाँ तिल-भर भी स्थान नहीं रहा है। दयाल अपनी पकी दाढ़ीपर हाथ सहलाते उठ खड़े हुए और भगवत्-उपासनाके आरम्भकी भूमिकाके रूपमें बोले — जिस स्थानपर विरुद्ध हृदय सम्मिलित होते हैं वहीं भगवान्‌का आसन लगता है। अतएव आज यहाँ परम पिताके आविर्भावके सम्बन्धमें सन्देह करनेके लिए जगह नहीं है।

इसके बाद उन्होंने गये वर्षके पहले दिनकी प्रायः अनुरूप भिन्नतामय सुन्दर उपासना की। उनके निजके हृदयमें अकपट विषाद और आन्तरिक भक्ति थी। इससे उन्होंने जो कुछ कहा, सब सत्य और मधुर होकर सबके हृदयमें लगा, सबकी आँखोंकी कोरोंपर अश्रुमालाका आभास दिख गया। सिर्फ रासबिहारी ही ही उनमें ऐसे थे जिनकी मुँदी आँखोंसे आँसू बहकर झरझर गिरने लगे। उपासना समाप्त हो जानेपर भी वे एक ही भावसे बैठे रहे। वे अचेत थे अथवा सचेत, बहुत देरतक यह भी नहीं समझा जा सका।

और एक व्यक्ति था जिसके मनकी बातका पता नहीं चल सका। वह थी विमला। सारे समय वह सूखी आँखोंसे पत्थरकी मूर्तिके समान स्थिर बैठी रही। उसके बाद जब उसने मुँह उठाया तब उसकी आकृति पत्थरके समान ही अस्वाभाविक रूपसे सफेद दिखाई पड़ी।

दयालकी भक्ति-गद्गद ध्वनिकी प्रतिध्वनि जिस समय अनेक व्यक्तियोंके हृदयमें झंकृत हो रही थी उसी समय रासबिहारीने आँखें खोलीं और खड़े होकर प्रायः रुलाईभरे स्वरमें कहा — "मुझमें साधनाका वह बल नहीं है किन्तु आज मैंने जान लिया है कि दयालका महावाक्य कितना बड़ा सत्य है, सम्मिलित हृदयके शक्ति-स्पन्दनमें इसी एकमात्र और अतुलनीय निराकार परब्रह्मका आविर्भाव होता है, इसे आज अन्तरमें प्रत्यक्ष देखकर मेरा जीवन निःसंशय स्थिर धन्य हो गया।" यह कहकर वे आगे बढ़ गये और दयालको हृदयसे लिपटाकर अविकृत कण्ठसे कह उठे — "दयाल! भाई! यह केवल तुम्हारे पुण्य-प्रतापसे तुम्हारे ही आशीर्वादसे—"

दयालकी आँखें डबडबा आईं लेकिन कोई बात न कह सकनेके कारण वे चुपचाप ही खड़े रहे।

बगलके कमरेमें जल-पानका मधुर आयोजन हुआ था। विजयाने जब उसकी ओर इशारा किया तब रासबिहारीने उसे रोककर अभ्यागतोंसे कहा — "आज आप लोगोंसे एक विषयमें और भी आशीर्वादकी भीख माँगता हूँ। वनमाली जीवित होते तो आज अपनी कन्याके विवाहकी बात वे खुद [illegible] आप लोगोंसे कहते, मुझे न कहना पड़ता; लेकिन अब वह भार मेरे ही ऊपर आ पड़ा है, अब मैं ही वर-कन्याका पिता हूँ। मैंने इस महीनेके आखिरी हफ्तेमें पूर्णिमा तिथिको विवाह स्थिर किया है — आप लोग सर्वान्तःकरणसे आशीर्वाद दीजिए, जिससे यह शुभ कार्य निर्विघ्न पूरा हो।" यह कहकर उन्होंने एक जोड़ी सोनेके कड़े जेबसे निकालकर दयालके हाथमें दे दिये।

दयाल उन दोनोंको लेकर विजयाकी ओर बढ़े और हाथ बढ़ाकर बोले — "मैं इस शुभ कर्मकी सूचनामें मन-वचन-कायसे तुम्हारी कल्याण-कामना करता [illegible] बेटी, देखूँ जरा तुम्हारे दोनों हाथ।"

लेकिन उस आनतमुखी और मूर्तिके समान बैठी हुई रमणीने लेशमात्र हरकत नहीं की। दयालने फिर अपनी प्रार्थना दुहराई, तथापि वह उसी प्रकार स्थिर बैठी रही। नलिनी समीप ही थी। वह मामाका अवस्था-संकट अनुभव करके हँसी और उसने विजयाके दोनों हाथ पकड़ लिये। तब दयालने बिना जाने अभ्यागतोंकी उस एक जोड़ी चूड़ियोंको आशीर्वादका लक्ष्य-चिह्न समझकर उस मूर्छितप्राय निरुपाय नारीके अवश-अचल हाथोंमें पहना दिया।

लेकिन किसीने कुछ नहीं जाना। बल्कि, इसे मधुर लज्जा कल्पना करके स्वाभाविक और संगत मानकर वे लोग प्रफुल्ल हो उठे और क्षण-भरमें शुभ-कामनाओंकी करतल ध्वनिसे वह सारा कमरा मुखरित हो उठा।

खाने पीनेका काम पूरा हो गया। देर हो रही थी इसलिए सब लोग एक एक करके विदा होने लगे। विजयाने इस समय आत्मसंवरण करके किस प्रकार अतिथियोंके सम्मान और मर्यादाकी रक्षा की वह अन्तर्यामीके अतिरिक्त और जिस व्यक्तिसे छिपी नहीं रही थी वे रासबिहारी लेकिन उन्होंने इसका किसीको आभास तक न होने दिया। जल-पान समाप्त करके एक पान मुँहमें रखकर वे मुसकिराते हुए बोले — "मैं चला। बूढ़ा आदमी ठहरा, धूप चढ़नेपर फिर चल न सकूँगा।" और एक लम्बा आशीर्वाद देकर छाता सिरपर लगाये धीरे धीरे बाहर निकल गये।

भीतरका मामला अच्छी तरह न समझनेपर भी प्रत्युत्तरमें सबोंने एक प्रकारकी हर्षसूचक अस्पष्ट ध्वनि की।

रासबिहारी थोड़ी-सी गरदन झुकाकर और कुर्तेके छोरसे फिर आँखें पोंछकर निकटवर्ती आसनपर चुपचाप बैठ गये। उन स्थिर गम्भीर मुँहकी तरफ देखकर उपस्थित सज्जनोंमेंसे कोई भी अनुमान किये बिना न रह सका कि उनका हृदय अनिर्वचनीय भाव-राशिसे ऐसा भर गया है कि अब और कुछ कहनेके लिए उसमें तिल-भर भी स्थान नहीं रहा है। दयाल अपनी पकी दाढ़ीपर हाथ सहलाते उठ खड़े हुए और भगवद्-उपासनाके आरम्भकी भूमिकाके रूपमें बोले — जिस स्थानपर विशुद्ध हृदय सम्मिलित होते हैं वहीं भगवान्‌का आसन लगता है। अतएव आज यहाँ परम पिताके आविर्भावके सम्बन्धमें संशय करनेके लिए जगह नहीं है।

इसके बाद उन्होंने नये वर्षके पहले दिनकी प्रायः पन्द्रह मिनटतक सुन्दर उपासना की। उनके निजके हृदयमें अकृत्रिम विश्वास और आन्तरिक भक्ति थी। इससे उन्होंने जो कुछ कहा वह सत्य और मधुर होकर सबके हृदयमें लगा — सबकी आँखोंकी कोरोंपर सजलताका आभास दिख गया। सिर्फ रासबिहारी ही ही उनमें ऐसे थे जिनकी मुँदी आँखोंसे आँसू बहकर झरझर गिरने लगे। उपासना समाप्त हो जानेपर भी वे एक ही भावसे बैठे रहे। वे अचेत थे अथवा सचेत बहुत देरतक यह भी नहीं समझा जा सका।

और एक व्यक्ति था जिसके मनकी बातका पता नहीं लग सका। वह थी विजया। सारे समय वह मुँदी आँखोंसे पत्थरकी मूर्तिके समान स्थिर बैठी रही। उसके बाद जब उसने मुँह उठाया तब उसकी आकृति पत्थरके समान ही अस्वाभाविक रूपसे सफेद दिखाई पड़ी।

दयालकी भक्ति-गद्‌गद कण्ठकी प्रतिध्वनि जिस समय अनेक व्यक्तियोंके हृदयमें गूँज रही थी उसी समय रासबिहारीने आँखें खोलीं और खड़े होकर प्रायः रुलाईभरे स्वरमें कहा — "मुझमें भावनाका वह बल नहीं है, किन्तु आज मैंने जान लिया है कि दयालका महावाक्य कितना बड़ा सत्य है — सम्मिलित हृदयके सन्धि-स्थलमें उसी एकमात्र और अद्वितीय निराकार परब्रह्मका आविर्भाव होता है — इसे आज अन्तरमें प्रत्यक्ष करके मेरा जीवन चिरदिनके लिए धन्य हो गया।" यह कहकर वे आगे बढ़ गये और दयालको हृदयसे चिपटाकर अस्फुट कण्ठसे कह उठे — "दयाल! भाई! यह सब तुम्हारे पुण्य-प्रतापसे तुम्हारे ही आशीर्वादसे—"

दयालकी आँखें छलछला आईं, लेकिन कोई बात न कह सकनेके कारण वे चुपचाप ही खड़े रहे।

बगलके कमरेमें जल-पानका मधुर आयोजन हुआ था। विलासने जब उसकी ओर इशारा किया तब रासबिहारीने उन्हें रोककर अभ्यागतोंसे कहा "आज आप लोगोंसे एक विषयमें और भी आशीर्वादकी भीख माँगता हूँ। वनमाली जीवित होते तो आज अपनी कन्याके विवाहकी बात न कहकर ही आप लोगोंसे शायद मुझे न कहना पड़ता; लेकिन अब यह भार मेरे ही ऊपर आ पड़ा है, अब मैं ही वर-कन्याका पिता हूँ। मैंने इस महीनेके आखिरी हफ्तेमें पूर्णिमा तिथिको विवाह स्थिर किया है,—आप लोग सर्वान्तःकरणसे आशीर्वाद दीजिए, जिससे यह शुभ कार्य निर्विघ्न पूरा हो।" यह कहकर उन्होंने एक जोड़ी सोनेके कड़े जेबसे निकालकर दयालके हाथमें दे दिये।

दयाल इन दोनोंको लेकर विजयाकी ओर बढ़े और हाथ बढ़ाकर बोले "मैं इस शुभ कार्यकी सूचनामें मन-वचन-कायसे तुम्हारी कल्याण-कामना करता हूँ बेटी, देखूँ जरा तुम्हारे दोनों हाथ।"

लेकिन उस आनतमुखी और मूर्तिके समान बैठी हुई रमणीने लेशमात्र हरकत नहीं की। दयालने फिर अपनी प्रार्थना दुहराई, तथापि वह उसी प्रकार स्थिर बैठी रही। नलिनी समीप ही थी। वह मामाका अवस्था-संकट अनुभव करके हँसी और उसने विजयाके दोनों हाथ पकड़ लिये। तब दयालने बिना जाने अत्याचारकी उस एक जोड़ी हथकड़ियोंको आशीर्वादका स्वर्ण-कङ्कण समझकर उस मूर्तिमान निरुपाय नारीके अवश-अचल हाथोंमें पहना दिया।

लेकिन किसीने कुछ नहीं जाना। बल्कि, इसे मधुर लज्जा कल्पना करके स्वाभाविक और संगत मानकर वे सब प्रफुल्ल हो उठे और क्षण-भरमें शुभ-कामनाओंकी अजस्र ध्वनिसे यह सारा कमरा मुखरित हो उठा।

खाने पीनेका काम पूरा हो गया। देर हो रही थी इसलिए सब लोग एक एक करके विदा होने लगे। विजयाने इस समय आत्म-संयम करके किस प्रकार अतिथियोंके सम्मान और मर्यादाकी रक्षा की यह अन्तर्यामीके अतिरिक्त और जिस व्यक्तिसे छिपी नहीं रही थी वे रासबिहारी, लेकिन उन्होंने इसका किसीको आभास तक न होने दिया। जल-पान समाप्त करके एक पान मुँहमें रखकर वे मुस्किराते हुए बोले "मैं चला। बूढ़ा आदमी ठहरा, धूप लगनेसे फिर चल न सकूँगा।" और एक लम्बा आशीर्वाद देकर छाता सिरपर लगाये धीरे धीरे बाहर निकल गये।

सब चले गये परन्तु विजया और नलिनी उस समय भी बरामदेके एक किनारे बैठी बातचीत कर रही थीं। विजयाने कहा, “आपसे आलाप करके मैं कितनी खुशी हुई, सो बता नहीं सकती। यहाँ आनेके दिनसे मैं एकदम अकेली पड़ गई हूँ। ऐसा कोई नहीं है जिससे दो बातें कर सकूँ। आपकी जब इच्छा हो जब आप समय पाइए, आ जाया कीजिए।”

नलिनीने खुश होकर सम्मति जता दी। विजयाने कहा, “मैं खुद भी कावद उस पार आपकी मामीको देखने आऊँगी।” लेकिन फिर दूसरी तरफ देखकर थोड़ा-सा व्यस्त होकर कहा, “दयाल बाबू, निश्चय ही कचहरीमें आ गये हैं, क्या उन्हें दुःख सकूँ।” और तब बैयराकी कोनमें पैर बढ़ानेका उद्योग करते ही नलिनी बाधा डालकर बोली, “वे तो इस समय घर आयेंगे नहीं, इसके आपको बैठेंगी।”

विजया कुंठित होकर बोली, “यह बात मुझसे पहले क्यों नहीं कही! मैं दयालको दुःख दे रही हूँ, यह आपको—”

नलिनीने कहा, “नहीं, दयालकी जरूरत नहीं है। मैं नरेन्द्र बाबूके लिए प्रतीक्षा कर रही हूँ। वे अपने मामासे मिलने गये हैं, अभी आ जायेंगे।”

विजयाने आश्चर्यमें पड़कर पूछा, “आपसे उनका परिचय है क्या? पर मैं तो नहीं जानती।”

नलिनीने कहा, “परिचय जरा भी नहीं था। सिर्फ परसों ही मामाकी [illegible] पाकर मैंने स्टेशनपर जाकर देखा वे आये हैं। उनके साथ ही यहाँ आई हूँ।”

विजया बोली, “ओह, यह बात है!”

नलिनीने कहा, “हाँ, लेकिन कैसे आश्चर्यजनक आदमी हैं, आपने देखा! इन दो दिनोंमें ही मानो चिरपरिचित आत्मीय बन गये हैं। तय हुआ है कि इस बार हमारे घर ही खान-भोजन करके कलकत्ता जायेंगे। मेरी मामी तो उन्हें अपने लड़केके समान प्रेम करती हैं।”

विजयाने मस्तक हिलाकर कहा, “हाँ आश्चर्यजनक आदमी हैं।”

नलिनी कहने लगी, “उनका किसीसे कभी मतभेद हो सकता है, यह मैं आँखोंसे न देख लेती तो विश्वास ही न कर सकती। मैं बड़ी प्रसन्न हुई हूँ कि आज विलास बाबूसे उनका मेल हो गया। लेकिन उनके पिता भी कैसे आश्चर्यजनक आदमी थे! मेरी समझमें तो हमारे समाजमें सबको उनके ही समान होनेका यत्न करना चाहिए। रासबिहारी बाबूका आदर्श जिस दिन

ब्राह्मसमाजके घर घर प्रतिष्ठित हो जायगा उसी दिन समझूँगी हमारा ब्राह्म-धर्म सफल हुआ सार्थक हुआ। आप क्या कहती हैं? ठीक है न? "

नजदीक ही दिखाई पड़ा कि नरेन्द्र टोपी हाथमें लिये तेजीसे उसी तरफ आ रहा है। विजयाने नलिनीके प्रश्नका उत्तर न देकर उसी तरफ उसकी दृष्टि आकर्षित करके कहा वह देखिए, वे आ रहे हैं। "

नरेन्द्र निकट आकर विजयाको नमस्कार करके बोला यह लीजिए, इसी बीच दोनोंमें स्निग्ध प्रेम भी हो गया! सचमुच आज वर्षके पहले दिन हमारा परम सुप्रभात हुआ! सवेरा बहुत मजेसे कटा। इससे आशा होती है यह वर्ष सम्भवतः अच्छा ही कटेगा। लेकिन आप ऐसी मलिन कैसी दिखाई पड़ती हैं, बताइए तो? "

विजयाने विरक्तिके स्वरसे कहा आप भी तो बताइए कि आप एक दिनके भीतर यह प्रश्न कितनी बार कीजिएगा? "

नरेन्द्र हँस पड़ा " क्या और भी एक बार पूछ चुका हूँ? पर यदि पूछ ही लिया तो क्या हुआ? अच्छा आप इस प्रकार कहसे नाराज क्यों हो जाती हैं बोलिए तो? यह तो आपमें भारी दोष है। " कहकर वह फिर हँसने लगा। विजयाने किसी प्रकार हँसी दबाकर बनावटी गम्भीरताके साथ जवाब दिया ' इस विषयमें क्या सब ही आपके समान निर्दोष हो सकते हैं? फिर भी देखिए, दयालचन्द्र जैसे और भी बहुतसे निन्दक हैं जो आपके समान साधु व्यक्तिको भी जल्दी गुस्सा होनेवाला कहकर अपवाद लगाते हैं। "

दयालचन्द्रके नामसे नरेन्द्र तरुण कण्ठसे हँस उठा। हँसी रुकनेपर उसने कहा आप तो विरुद्ध दलसे सम्बन्ध रखनेवाली हैं, किसी प्रकार दिनभरमें भी दोष क्षमा नहीं कर सकतीं। लेकिन यह तो सुनूँ कि और भी बहुतसे कौन? दयालचन्द्र और आप खुद इतने ही तो? "

विजया मुस्कराकर बोली और स्टेशनपर जिन लोगोंने देखा है वे भी।

नरेन्द्रने कहा, और? "

विजयाने कहा " और जिन जिन लोगोंने सुना है वे भी। "

नरेन्द्रने कहा " तो यही क्यों न कहिए मेरे सम्बन्धमें सारी दुनियाके लोगोंका यही मत है? '

विजयाने पहलेकी गम्भीरता स्थिर रखकर ही जवाब दिया हाँ, हम सबका यही मत है। "

नरेन्द्रने कहा — तो फिर धन्यवाद। अब आपके मिलनेके सम्बन्धमें लोगोंका क्या मत है सो बताइए?" और वह हँसने लगा।

उसके इशारेसे विमलाका मुँह एक-भरके लिए लाल हो उठा। लेकिन उसने दूसरे ही क्षण हँसकर कहा — "अपनी तारीफ आप नहीं करनी चाहिए, पाप होता है। इसलिए वह आप ही बताइए। लेकिन अभी नहीं, नहाने-खानेके बाद।" फिर कुछ ठहरकर कहा — "लेकिन वक्त बहुत हो गया है — इस समयसे यहीं निबट लेना अच्छा न होता?" कहकर उसने नलिनीके मुँहकी तरफ देखा।

नलिनीने कहा — "लेकिन मामी जो रास्ता देखती रहेंगी?"

विमलाने कहा — "मैं इसी समय आदमी भेजकर उन्हें खबर पहुँचाये देती हूँ।"

नलिनी सकुचा उठी। उसने कहा — "मुझे तो जाना ही होगा। मामी बीमार हैं, मकानमें सारी दुपहरी किसीके उनके पास रहे बिना काम नहीं चलेगा।"

बात सच थी, इसीलिए वह और फिर न कह सकी; लेकिन नलिनी उसके मुँहकी तरफ देखकर न जाने क्या सोचकर तत्काल ही कह उठी — "लेकिन नरेन्द्र बाबू, न हो तो आप यहीं स्नान-भोजन कर लीजिए, मैं जाकर मामीसे कह दूँगी। सिर्फ जाते समय मिलते जाइएगा।"

"क्या मुझे आपने ऐसा अहमक नालायक समझ लिया है कि आपको छोड़कर ऐसी धूपमें अकेला चला जाऊँगा?" कहकर नरेन्द्रने हँसते हुए विमलाके मुँहकी तरफ आँखें उठाकर कहा, "आपसे तो एक दिन अच्छा भोजन लेना करना ही है, सो उस दिन बहुत सवेरे ही आकर इस भोजनको सुभीतेसे वसूल करूँगा। अच्छा, नमस्कार।" फिर नलिनीसे कहा — "और देरी मत कीजिए, चलिए।" यह कहकर उसने हाथकी टोपी सिरपर रख ली।

नलिनी उतरकर पास आ गई, लेकिन और एक व्यक्ति जो काठके समान खड़ा रहा और जिसकी दोनों आँखें सामनेपर लगी हुई पुतलीके समान चमकने लगीं, उसपर दोनोंमेंसे किसीका भी ध्यान न गया। यदि जाता तो जान सकता है, नरेन्द्र दो-एक पैर बढ़ाकर और सहसा लौटकर हँसते हुए यह कहनेका साहस न करता कि "अच्छा, एक काम न किया जाय? जो वस्तु आरम्भसे ही इतने दुःखोंकी जड़ है, जिसके लिए मैं सारे देशमें बदनाम हुआ, वह मुझे ही क्यों न आपके आनन्दके दिन उपहार दे दीजिए? मैं तो सौ रुपये कल-परसों किसी दिन भेज दूँगा।" यह कहकर उसने और भी एक बार हँसनेका यत्न अवश्य किया, लेकिन उत्साहके अभावमें हँस न सका। बल्कि दूसरे पक्षसे प्रत्युत्तरमें जो कड़ा जवाब आया वह एक दम आकस्मिक था।

विजयाने कहा "दाम लेकर देनेको मैं उपहार देना नहीं बिक्री करना कहती हूँ। इस प्रकारका उपहार देकर आप आत्म-प्रसाद प्राप्त कर सकते हैं, लेकिन हम लोगोंको दूसरे ही प्रकारकी शिक्षा मिली है। इसलिए आज इस आनन्दके दिन मैं उसे बेचनेकी इच्छा नहीं करती।"

इस आघातकी कठोरतासे नरेन्द्र स्तंभित हो गया। यों ही तो वह विजयाके मिजाजका ओर-छोर कोई कूल-किनारा नहीं पा रहा था —तिसपर आज उसके हृदयके भीतर मुलेठी-सी जो आग आप जल रही थी, उसका दाह जब अकस्मात् अकारण बाहर निकल पड़ा तब नरेन्द्र उसे पहिचान ही न सका। वह क्षण-भर उसके कठोर मुँहकी तरफ निःशब्द देखते रह कर अत्यन्त व्यथाके साथ बोला "अपनी नितान्त दीन दशाको मैं कभी भूला नहीं और उसे छिपानेकी भी चेष्टा मैंने नहीं की जो आप मुझे याद दिला रही हैं।

फिर नलिनीको दिखाकर कहा, "मैंने इनसे भी अपना सारा इतिहास बताया है। पिताजी अत्यन्त दैन्य-दुःख पाकर मरे हैं। उनकी मृत्युके बाद घर-द्वार जो कुछ भी वहाँ था सब कर्ज चुकता करनेमें बिक गया कुछ भी किसीसे नहीं छिपाया। मैंने आपको उपहार देनेकी बात नहीं कही। अच्छा कहिए तो यह सब क्या मैंने आपको बताया नहीं?"

नलिनीने सकरुण स्वीकृति देकर कहा "हाँ बताया है।" विजयाका मुँह वेदनासे, लज्जासे, अपमानसे, विवर्ण हो उठा—वह केवल विह्वल आँखोंकी तरह एक दृष्टिसे दोनोंकी तरफ चुपचाप ताकती रही। उसकी इस सीमाहीन वेदनाको विस्मित करके नरेन्द्रने म्लान मुखसे फिर कहा, "मेरी बातसे आप प्रायः अत्यन्त अस्थिर हो उठती हैं। शायद सोचती हैं, मैं अपनी अवस्थाको लाँघकर अपनेको आप लोगोंके समकक्ष प्रकट करना चाहता हूँ। यह हो सकता है कि अपने अन्यमनस्क स्वभावके दोषसे सब बातोंमें अपना वजन ठीक नहीं रख सकता होऊँ—लेकिन जाने दीजिए, यदि आपका असम्मान कर बैठा होऊँ, तो मुझे क्षमा कीजिएगा।" कहकर और मुँह फिराकर वह चल पड़ा।

२२

सारे रास्तेमें दोनों व्यक्तियोंमें सिर्फ ये बातें हुईं। नलिनीने पूछा "क्या आपने उपहार देनेकी बात कही थी?"

नरेन्द्रने प्रसन्न कण्ठसे कहा, "और किसी दिन आपको बताऊँगा। आज नहीं।"

इस बीचमें पुलके पास आकर नरेन्द्रने खड़े होकर कहा "आज मुझे क्षमा करना होगा—मैं वापस चला।" लेकिन नलिनीको प्रायः अभिभूत-सा देखकर वह फिर बोला "मैं जानता हूँ कि यह भारी अन्याय है, लेकिन तो भी आपको क्षमा करना होगा अब मैं किसी प्रकार नहीं चल सकता। अपनी मामीसे कह दीजिएगा मैं और किसी दिन आकर—"

उसके संकल्पके इस आकस्मिक परिवर्तनसे नलिनी जितनी विस्मित हुई थी उसके कण्ठस्वर और मुँहकी तरफ देखकर उससे भी अधिक विस्मित हो गई। जान पड़ता है, इसीलिए उसने इस विषयमें और अधिक अनुरोध न करके सिर्फ यही कहा "आपका भोजन तो नहीं हुआ। लेकिन फिर कब आइएगा?"

"परसों आनेकी चेष्टा करूँगा।" कहकर नरेन्द्र जिस रास्ते आया था उसी रास्ते रेलवे स्टेशनकी तरफ तेजीसे चल पड़ा।

मैदान पार होनेमें थोड़ी ही देर थी, देखा कि कोई व्यक्ति हाथ ऊँचा किये उसीकी तरफ प्राणपणसे दौड़ा चला आ रहा है। वह उसीके लिए दौड़ा आ रहा है और हाथ उठाकर उसीको ठहरनेका इशारा कर रहा है, अनुमान करके नरेन्द्र रुककर खड़ा हो गया। क्षण-भर बाद ही परेशने उपस्थित होकर हाँफते हाँफते कहा "माईजीने बुला भेजा है तुमको चलो।"

"मुझे?"

"हाँ, चलो न।"

नरेन्द्रने कुछ क्षण निस्तब्ध रहकर सन्दिग्ध कण्ठसे कहा, "तू समझ नहीं सका है, मुझे नहीं बुलाया होगा।"

परेशने प्रबल वेगसे सिर हिलाकर कहा "तुम्हें ही बुलाया है, तुम्हारे सिरपर साहबका टोप जो लगा है! चलो।"

नरेन्द्रने और कुछ क्षण मौन रहकर प्रश्न किया "तेरी माईजीने क्या कहा है तुझसे?"

परेशने कहा "माईजी उस तरफकी ऊँची छतसे दौड़ती हुई नीचे आईं और बोलीं परेश, दौड़ जा—सीधे जाकर बाबूको पकड़ ला। सिरपर साहबका टोप लगाये हैं, जा दौड़ जा—तुझे एक बहुत अच्छी चकरी दूँगी।—जल्दी चलो!"

इतनी देर बाद उसकी व्यग्रताका कारण ज्ञात हुआ। चकरीके लोभसे ही

यह इस बड़ी भूलमें ऐंजिनके वेगसे दौड़ा आया है। इसलिए किसी प्रकार भी छोड़कर नहीं जायगा। एक बार तो उसके मनमें आया कि अकेलेके बदले ही एक सवारीकी कीमत देकर इसी स्थानसे विदा कर दे। लेकिन आज ही इस प्रकार बुला भेजनेका क्या कारण है, इस कुतूहलको भी वह किसी प्रकार निवारण न कर सका। लेकिन जाना उचित है या नहीं, यह स्थिर करनेमें उसे और भी कुछ क्षण लग गये। यद्यपि अन्ततक स्थिर कुछ नहीं हुआ तो भी उसके अनिश्चित पग उसी तरफ धीरे धीरे बढ़ने लगे। रास्तेभर वह बुलानेका कारण मन ही मन खोजकर मरता रहा लेकिन यह उसकी समझमें न आया कि बुलाना ही उसकी अपेक्षा बड़ा कारण है। बाहरके कमरेमें पर रखते ही विमला आकर सामने खड़ी हो गई। उसने अपनी दोनों भींगी स्फुट आँखें उसके मुँहपर गड़ाकर तीक्ष्ण कण्ठसे कहा "आप खूब हैं, जो बिना खाये-पिये इस वक्त चले जा रहे हैं। मैं तो हरदम नाराज हो जाया करती हूँ, मैं बहुत बुरी हूँ, और आप!"

नरेन्द्र गहरे विस्मयसे बोला "इसका मतलब? किसने कहा आप बुरी हैं, आपसे किसने कही ये सब बातें?"

विमलाके ओंठ काँपने लगे। उसने कहा "आपने। भगिनीके सामने क्यों मेरा इस प्रकार अपमान किया? मेरा ही अपमान किया और मुझे ही दण्ड देनेके लिए बिना खाये चले जा रहे हैं। क्या किया है आपका मैंने?" बोलते बोलते उसकी दोनों आँखें आँसुओंसे भर आईं। जान पड़ता है उन्हें ही सँभालनेके लिए वह उसी क्षण दूसरी तरफ देखती हुई पीठ देकर खड़ी हो गई। नरेन्द्र हतबुद्धिके समान वाक्शून्य होकर ताकता रहा। वह जिस प्रकार यह खोजकर नहीं पा सका कि इस अभियोगका क्या जवाब है, उसी प्रकार इसका कारण आखिर क्या है, सो भी नहीं सोच सका।

बैरा कह गया कि खानेके लिए सब तैयार है। विमलाने लौटकर शान्त भावसे केवल यही कहा कि "अब और देरी न कीजिए, आइए।"

स्नानसे निपटकर नरेन्द्र भोजन करने बैठा। विमला एक पंखा हाथमें लेकर जब उसके निकट आकर बैठी, तब लज्जाकी आँधी बहुत ही ऊँचे ऊँचे उसके सर्वांगको झकझोर कर निकल गई। हवा करनेको उद्यत देखकर नरेन्द्रने सकुचा कर कहा 'मुझे हवा करनेकी आवश्यकता नहीं है आप पंखा रख दीजिए।'

विमलाने मुसकराकर कहा 'आपको आवश्यकता न हो पर मुझे तो आवश्यकता है। बाबूजी कहते थे नारी जातिको कभी खाली हाथ नहीं बैठना चाहिए'।"

नरेन्द्रने पूछा "आपका भोजन भी तो नहीं हुआ है ?"

विजयाने कहा, "नहीं। पुरुषोंका भोजन हुए बिना हम लोगोंको नहीं खाना चाहिए।"

नरेन्द्र खुश होकर बोला "अच्छा ! तब तो ब्राह्म होने पर भी आप लोगोंका आचार-व्यवहार हम लोगोंके ही जैसा है।"

विजयाने यह नहीं कहा कि अनेक ब्राह्म घरोंमें ऐसा नहीं है, बल्कि इसके ठीक उल्टा है। बल्कि इसके सिवा ही ये सब हिंदू-आचार अपने मकानमें चालू रख सके हैं। बल्कि उसने कहा "इसमें कठिन होनेकी तो कोई बात नहीं। हम लोग न तो विलायतसे आये हैं और न बाबूजीसे ही हमें अपने आचार-व्यवहारकी आमदनी करनी पड़ी है। बल्कि ऐसा न होनेपर ही आश्चर्यकी बात होती।"

नौकरने दरवाजेके पास आकर कहा "मा, गुमाश्ताजी हिसाबकी बही लिये बैठे हैं इस समय क्या उनसे चले जानेको कह दूँ ?"

विजयाने गरदन हिलाकर कहा "हाँ मुझे समय नहीं मिलेगा उनसे चले जानेको कह दे।"

नौकरके चले जानेपर नरेन्द्रने विजयाके मुँहकी तरफ आँखें उठाकर कहा "यह बात मुझे सबसे अधिक आश्चर्यित करती है।"

"कौन-सी बात ?"

"नौकरोंके मुँहका यह सम्बोधन।" फिर हँसकर कहा "आप ब्राह्म महिला हैं, आलोक-प्राप्त हैं, और विशेष रूपसे धनाढ्य भी हैं। आजकल मुझे ऐसे ही आलोक-प्राप्त घरोंमें चिकित्साके लिए जाना पड़ता है। उनके नौकर-चाकर मालिकोंको कहते हैं 'मेम साहब'। वे जानती हैं कि वास्तविक मेम साहबाएँ उन्हें किन आँखोंसे देखती हैं, इसीलिए शायद वेतन-भोगी नौकरोंसे 'मेम साहब' कहलवाकर आत्मसमर्यादा बनाये रखती हैं।' यह कहकर उसने अपने प्रचण्ड परिहास और अट्टहाससे सारा कमरा भर दिया। विजया खुद भी हँस पड़ी। नरेन्द्रकी हँसी रुकनेपर उसने दुबारा कहा "मालूम नहीं मकानके दासियों-नौकरोंके मुँहके मातृ-सम्बोधनकी बनिस्बत 'मेम साहब' कहलाना ज्यादा इज्जतकी बात हो ! पहले दिन समझ ही नहीं सका कि बेचारा 'मेम साहब' कहता किसे है ! वह क्या बोला था जानती हैं ? बोला "मैंने बहुतसे साहबोंके घरोंमें नौकरी की है असली मेम साहब क्या हैं, सो मैं खूब जानता हूँ। इस घरमें एक नया हिंदुस्तानी दरबान मालिकिनको 'माईजी' कह बैठा इससे मेम

साहबने इसपर एक लम्बा जुर्माना ठोक दिया। चाकरी बनी रही, यही समझ मानव है। ऐसी ही थे कुछ हैं भी।" अच्छा, आपने भी काम पकड़ा है, ऐसी बहुत-सी देखी होंगी न ?"

विजयाने हँसकर गरदन हिलाई।

नरेन्द्रने कहा "अब मुझे एक दिन देखना है कि इन सब मेम साहबोंके काले-कलूटी मानो मा जाती हैं, या मेम साहब!" कहकर उसने मजाकके आनन्दसे उमग और एक बार कमरा पार करनेकी तैयारी की।

विजयाने मुसकराते हुए कहा "खा-पीकर सारे दिन मजेसे पराई चर्चा कीजिएगा इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं। लेकिन क्या आज मुझे खाने नहीं दीजिएगा?"

नरेन्द्रने लज्जित भावसे जल्दी जल्दी दो-चार कौर ठूँसे ही थे कि फिर सब भूल गया। उसने कहा "मैं भी तो चार-पाँच वर्ष विलायतमें रहा लेकिन ये देशी साहब लोग—"

विजयाने तर्जनी उठाकर कृत्रिम शासन करनेकी भंगीसे कहा "फिर वही पराई निन्दा!"

"अच्छा अब नहीं—" कहकर उसने फिर खानेमें मन लगाकर कहा "लेकिन अब और नहीं खा सकता"

विजयाने व्यस्त होकर कहा "वाह! कुछ भी तो नहीं खाया। नहीं अभी नहीं उठ पाइएगा। अच्छा न हो पराई निन्दा करते करते ही अनमने होकर खाइए, मैं कुछ न बोलूँगी।"

नरेन्द्र हँसना चाहता था कि अकस्मात् अत्यन्त गम्भीर हो गया। उसने कहा "आप कहने पर भी खाती हैं, मैंने खाया नहीं है। लेकिन मेरा एक कौर रोजका खाना यदि बढ़िया, तो बहादुर हो जाइएगा। देख नहीं रही हैं कि इन कुछ महीनोंके भीतर ही कितना दुबला हो गया हूँ। हमारे बासका बावर्ची जैसा पाजी है, नौकर भी वैसा ही बदमाश आ जुटा है। बड़े सबेरे टीप-टेंपकर कहाँ चल देता है, कुछ पता नहीं—मुझे किसी दिन सँदेसा पकड़ा है तो कब और किसी किसी दिन तो चार बज जाते हैं। वही ठण्डा सूखा भात—एक किसी दिन या तो मिलती भी जाती है, या खिड़कीमेंसे बीए घुसकर सब कुछ ऐसा चाट देते हैं जिसे देखते ही घृणा होती है। महीनेमें आधे दिनों तो बिलकुल खा ही नहीं पाता।"

गुस्सेसे निरुपमाका मुँह लाल हो उठा। उसने कहा "ऐसे नौकर-चाकरोंको रख नहीं कर सकते? इतने रुपये वेतन पाकर भी कामोंमें यदि इतना भय है तो चाकरी करनेसे आखिर क्या काम है?"

नरेन्द्रने कहा "एक हिसाबसे आपकी बात सच है। एक दिन सचमुच किसीने सौ रुपये चोरी करनेके लिए और एक दिन खुद ही कहीं सौ सौ रुपयेके दो नोट खो बैठा। अन्यमनस्क व्यक्तिके लिए तो पद पदपर विपत्तियाँ हैं।" फिर थोड़ा ठहरकर कहा "तो भी मुझे दुःख-कष्ट बहुत दिनोंसे सहन हो गये हैं न इसीलिए मनमें ऐसा कुछ भान नहीं पड़ता। हाँ बहुत भूख लगनेपर खानेका कष्ट अवश्य ही किसी किसी दिन अखर जाता है।"

निरुपमा मुँह नीचा किये चुप बैठी रही। नरेन्द्र कहने लगा "सचमुच चाकरी मुझे अच्छी नहीं लगती मैं कर भी नहीं पाता। बल्कि मेरी अत्यन्त साधारण हैं,—आपके समान कोई बड़ा आदमी दोनों वक्त चार कौर खानेको दे देता और अपने ही धुनमें मस्त रह पाता तो मैं और कुछ भी न चाहता —लेकिन ऐसे बड़े आदमी क्या अब—" कहकर और एक बार उसने ऊँची हँसीकी तरङ्ग लहरा दी। निरुपमा पहलेके समान ही नीचा मुँह किये चुपचाप बैठी रही। नरेन्द्रने कहा "लेकिन आपके पिताजी जीवित होते तो इस समय मेरा बहुत उपकार हो सकता। वे निश्चय ही मुझे इस कष्ट-दुःखसे रिहाई दे देते।"

निरुपमाने सशङ्क दृष्टिसे देखकर पूछा "यह किस प्रकार जाना? उन्हें तो आप पहचानते नहीं थे।"

नरेन्द्रने कहा "नहीं मैंने उन्हें कभी नहीं देखा उन्होंने भी शायद मुझे नहीं देखा। लेकिन तो भी मुझे बहुत चाहते थे। किसने मुझे रुपए भरकर विलायत भेजा था जानती हैं? उन्होंने ही। अच्छा वे क्या कभी हम लोगोंके ब्याहके सम्बन्धमें आपसे कुछ कह नहीं गये?"

निरुपमाने कहा "यह जाना सम्भव है। लेकिन आप किस बातकी ओर इशारा कर रहे हैं उसे बिना समझे तो जवाब नहीं दे सकती।"

नरेन्द्रने क्षण-भर मन ही मन कुछ सोचकर कहा "जाने दीजिए। अब तो वह चर्चा एकदम निष्प्रयोजन है।"

निरुपमाने व्यग्र होकर कहा "नहीं, बोलिए। मैं सुनना चाहती हूँ।"

नरेन्द्र और थोड़ा सोचकर बोला, "जो बात शुरू-शुरूमें समाप्त हो गयी है उसे सुनकर अब क्या होगा बताइए।"

विजयाने जिद करके कहा "नहीं यह नहीं होगा। मैं सुनना चाहती हूँ, आप बताइए।"

उसका अतिशय आग्रह देखकर नरेन्द्र हँसा; उसने कहा "बताना केवल निरर्थक ही नहीं मेरे लिए लज्जाजनक भी है। शायद आप सोचेंगी कि मैं चालाकीसे आपके सेन्टिमेन्टपर चोट देकर—"

विजया अधीर होकर बीचमें ही रोककर बोली, "मैं और अधिक अनुनय नहीं कर सकती—आपके पैरों पड़ती हूँ, बोलिए।"

"यदि खाने-पीनेके बाद कहूँ?"

"नहीं अभी—"

"अच्छा कहता हूँ, कहता हूँ। लेकिन पहले एक बात पूछता हूँ। क्या हमारे मकानके विषयमें आपसे कभी कोई बात उन्होंने नहीं कही?"

विजया अधिकतर असहिष्णु हो उठी लेकिन कोई उत्तर नहीं दिया। नरेन्द्रने मुस्कराते हुए कहा "अच्छा नाराज मत होइए, मैं कहता हूँ। जब मैं विलायत गया था तब ही मैंने पिताजीसे सुना था कि आपके पिताजी ही मुझे भेज रहे हैं। और आज तीन दिन हुए, दयाल बाबूने मुझे चिट्ठियोंका एक बंडल दिया है। जिस कमरेमें बहुत-सा टूटा-फूटा असबाब पड़ा है, उसीमें एक टूटे हुए डेस्कके दराजमें वे चिट्ठियाँ थीं। पिताजीकी वस्तु होनेके कारण दयाल बाबूने उन्हें मेरे ही हाथमें दे दिया। पढ़कर मैंने देखा उनमें दो चिट्ठियाँ आपके पिताजीके हाथकी लिखी हुई हैं। आपने शायद सुना है कि अन्तिम वयसमें पिताजीने कर्जके मारे जुआ खेलना शुरू कर दिया था। मालूम होता है, यह इशारा ही एक चिट्ठीके आखिरमें था और उसके बाद नीचेकी तरफ एक स्थानपर उन्होंने उपदेशके बहाने सान्त्वना देकर पिताजीको लिखा था मकानके लिए चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं। नरेन्द्र मेरा भी तो लड़का है, मकान उसे ही मैंने दहेजमें दिया।"

विजयाने मुँह उठाकर कहा, "उसके बाद?"

नरेन्द्रने कहा "उसके बाद और अनेक बातें हैं। परन्तु यह पत्र बहुत दिनोंका लिखा हुआ है। बहुत सम्भव है, उनका यह अभिप्राय बादको बदल गया हो और इसीलिए कोई बात आपसे कह जाना उन्होंने आवश्यक न समझा हो।"

पिताकी अन्तिम इच्छाएँ विजयाको अक्षर अक्षर स्मरण हो आईं। उसने एक लम्बी साँस ले ली और कुछ क्षण स्थिर रहकर कहा "तो फिर मकानपर दावा कीजिएगा?" और हँस दी।

नरेन्द्र खुद भी हँसा। इस मन्तव्यको भविष्य परिहास समझकर उसने कहा ‘दावा डिसमिस करूँगा आपकी ही गवाही देकर; और आशा करता हूँ, आप सच ही सच बोलियेगा।’

विजयाने गरदन हिलाकर कहा “निश्चय। लेकिन आप मेरी गवाही क्यों मानियेगा?”

नरेन्द्रने कहा “नहीं तो प्रमाणित कैसे होगा? मकान सचमुच मेरा है, यह बात तो अदालतमें साबित करनी ही होगी।”

विजया गम्भीर होकर बोली “दूसरी अदालतकी जरूरत नहीं है। बापूका आदेश ही मेरी अदालत है। मैं यह मकान आपको लौटाये देती हूँ।”

उसकी मुखाकृति और कण्ठ-स्वर ठीक रहस्यके समान अवश्य न जान पड़ा लेकिन उसके अतिरिक्त और क्या हो सकता है सो भी उसके मनमें स्थान न पा सका। विशेषतः विजयाके परिहासकी भंगी इतनी निगूढ़ थी कि मुँह देखकर और सुनकर कुछ कह सकना अत्यन्त कठिन था। इसीलिए नरेन्द्र स्वर भी इस गम्भीरताके साथ बोला “तो फिर उनकी चिट्ठी आँखसे देखे बिना ही काम चलता है, मकान दे दीजियेगा!”

विजयाने कहा “नहीं चिट्ठी मैं दिखाना चाहती हूँ। लेकिन यदि उसमें यही बात लिखी है तो उनका हुकम मैं किसी प्रकार अमान्य नहीं करूँगी।”

नरेन्द्रने कहा “इसका ही क्या सबूत है कि उनका अभिप्राय अन्त तक यही था?”

विजयाने उत्तर दिया “नहीं था इसका भी तो सबूत नहीं है!”

नरेन्द्रने कहा “लेकिन मैं यदि न लूँ? दावा न करूँ?”

विजयाने कहा, “यह आपकी इच्छा है। लेकिन वैसी हालतमें आपकी बुआके लड़के भी तो हैं। मेरा विश्वास है, अनुरोध करनेपर वे लोग दावा करनेमें असम्मत न होंगे।”

नरेन्द्रने हँसकर कहा, “यह विश्वास मेरा भी है, यहाँ तक कि शपथ खाकर कहनेको राजी हूँ!”

विजयाने इस हँसीमें योग नहीं दिया, वह चुप रही।

नरेन्द्रने फिर कहा “अर्थात् मैं लूँ, चाहे न लूँ, आप देंगी ही!”

विजयाने कहा “अर्थात् मेरी प्रतिज्ञा है कि पिताजीकी दान की हुई वस्तु मैं नहीं हड़पूँगी।”

उसके कण्ठस्वरकी दृढ़ता देखकर नरेन्द्र मन ही मन विस्मित और मुग्ध हो गया। लेकिन कुछ क्षण चुप रहकर मधुर कण्ठसे बोला “यह मकान जब आपने

सम्बन्धमें दान कर दिया है, तब मेरे न लेनेपर भी आपको इसका लेनेका पाप नहीं लगेगा। इसके सिवा आपसे लेकर मैं करूँगा भी क्या बताइए? मेरे कोई है नहीं जो उसमें रहेगा और मुझे बाहर कहीं न कहीं काम करना ही होगा। उसकी अपेक्षा जो व्यवस्था हुई है वही सबसे अधिक अच्छी है। और एक बात यह भी है कि इस विषयमें आप विलास बाबूको किसी प्रकार राजी न कर सकियेगा।"

इस अन्तिम बातसे विजयाका मन ही मन जल उठी और बोली "मेरे पास इतना अधिक समय नहीं है कि उसे अपनी चीजके लिए दूसरेको राजी करनेकी चेष्टामें बरबाद करती फिरूँ। लेकिन आप और भी तो एक काम कर सकते हैं। घरकी जब आपको जरूरत नहीं है तब मुझसे उसका उचित मूल्य ले लीजिए। तब आपको चाकरी भी नहीं करनी पड़ेगी, और अपना काम भी सफलतासे कर सकियेगा। आप राजी हो जाइए नरेन्द्र बाबू!" इस अत्यन्त अनुनयके स्वरने अकस्मात् नरेन्द्रके हृदयमें बाणके समान बिंधकर उसे चंचल कर दिया और यद्यपि विजयाके झुके मुँहपर इस विनतीका छिपा इशारा पढ़ लेनेका सुयोग उसे नहीं मिला तथापि यह परिहास नहीं है, सच है यह भी समझनेमें उसे देर नहीं लगी। विवाहके सम्बन्धकी सहायताओंमें उसे धन-हीन करके वह अपनी खुशी नहीं है बल्कि हृदयमें व्यथा ही अनुभव कर रही है, कोई न कोई बहाना ढूँढकर उसके दुःखका भार हलका कर देना चाहती है, यह निश्चित जानकर उसका हृदय भर आया। लेकिन इसीलिए तो इस प्रकार प्रस्ताव स्वीकार कर लेनेसे काम नहीं चलेगा। जिसका वह अधिकारी नहीं आखिर वह किस प्रकार उसकी भीख ले ले। और भी एक बड़ी बात है। जो सब सांसारिक मामले पहले बहुत बड़ी समस्या थे अकस्मात् अनिवार्य रूप इस क्षणके लिए नष्ट हो गये हैं। उसने स्पष्ट देख लिया है कि विलासके सम्बन्धमें विजया आवेशमें चाहे जो कह डाले लेकिन उस बाधाको ठेलकर अन्त तक वह यह संकल्प किसी प्रकार भी कार्यमें परिणत नहीं कर सकती। इससे केवल उसकी लज्जा और वेदना ही बढ़ेगी और कुछ नहीं होगा।

कुछ क्षण उसके अवनत मुँहकी तरफ सस्नेह दृष्टिसे देखता रहकर वह परिहास तरल कण्ठसे बोला "आपके मनकी बात मैं समझता हूँ। गरीबको किसी बहानेसे कुछ दान करना चाहती हैं, यही न?"

ठीक यही बात आज और भी एक बार कही जा चुकी थी। उसकी ही पुनरावृत्तिसे विजयाका चेहरा स्याह होकर आँख उठाकर कहा "इस बातसे मैं कितना कष्ट पाती हूँ आप जानते हैं?"

नरेन्द्रने मन ही मन हँसकर प्रश्न किया, "तब असल बात क्या है सुनूँ?"

विमलाने कहा   मैं तुमसे सच ही कह रही हूँ; पर आपका पापी मन है, इसीलिए आप विश्वास नहीं कर सकते। आप गरीब हों या आदमी हों इससे मुझे मतलब? मैं केवल पिताजीका आदेश पालन करनेके लिए ही आपको मकान वापस कर देना चाहती हूँ।

नरेन्द्र सहसा अत्यन्त गम्भीर होकर बोला   इसमें भी एक झूठ रह गई,—पर उसे जाने दीजिए। आप बहुत बड़ी प्रतिज्ञायें तो कर रही हैं, लेकिन पिताजीके हुक्मके अनुसार वापस करना हुआ तो और भी कितनी ही चीजें देनी होंगी सो जानती हैं? सिर्फ यह मकान ही तो नहीं है?"

विमलाने कहा   अच्छी बात है। दीजिए, असली सब सम्पत्ति वापस ले लीजिए।"

इस बार नरेन्द्रने हँसकर मस्तक हिलाये। उसने कहा "खूब ऊँचे गलेसे जोर देकर मुझसे दावा करनेको कहती हैं। यहाँ तक कि यदि मैं नहीं करूँगा तो मेरी दुआके ख्यालसे दावा करनेको कहेंगी यह डर भी दिखाती हैं। लेकिन जानती हैं कि उनके आदेशके अनुसार मेरा दावा कहाँतक पहुँच सकता है? केवल यह मकान और कुछ बीघे जमीन ही नहीं उससे बहुत बहुत ज्यादा।"

विमलाने उत्सुक होकर कहा   पिताजीने और क्या क्या आपको दिया है?"

नरेन्द्र बोला   उनकी वह चिट्ठी भी मेरे पास है जिसमें उन्होंने सिर्फ इतना दहेज देकर ही मुझे बिदा नहीं किया है। बल्कि यहाँ जो कुछ आप देख रही हैं सभी कुछ उसमें सम्मिलित है। मैं दावा सिर्फ इस मकानपर ही नहीं कर सकता हूँ बल्कि यह घर यह कमरा ये सब टेबल-कुर्सी आइना दिवालगीर खाट पलँग पलंग दास-दासी अमला कर्मचारी और उनकी मालकिन तक पर दावा कर सकता हूँ जानती हैं? पिताजीका हुक्म—पिताजीका हुक्म—दीजियेगा यह सब?

विमला पद-नखसे लेकर शिरके बालोंतक सिहर उठी। लेकिन वह कोई उत्तर न देकर नीचा मुँह किये काठकी मूर्तिके समान बैठी रही। नरेन्द्र गर्वके साथ मस्तक और मुँहमें टेढ़ा हुआ ताना मार कर बोला, "क्यों? है सामर्थ्य? एक बार न हो तो विमल बाबूसे सिरहानेमें सलाह कर लीजियेगा।" कहकर वह हा हा करके हँसने लगा।

लेकिन इस बार विमलाके मुँह उठाते ही उसकी प्रबल हँसी सहसा जैसे चोट खाकर रुक गई। विमलाके मुँहपर किसी रक्तका आभास तक न रहा। उसके सूखे-पीले मुँहकी तरफ देखकर नरेन्द्र उद्विग्न और परेशान होकर

बोल उठा, "आप पागल हो गई हैं क्या? मैं क्या सचमुच इस समय दावा करने जा रहा हूँ और क्या दावा करते ही सब पा जाऊँगा? बल्कि मैं ही उलटे पकड़कर पागलखानेमें बन्द कर दिया जाऊँगा।'

विजया ये सब बातें मानो सुन ही नहीं सकी। उसने कहा "कहाँ हैं देखूँ, पिताजीकी चिट्ठियाँ?"

नरेन्द्र आश्चर्यमें पड़कर बोला "क्यों? चिट्ठियाँ क्या मैं जेबमें रखकर घूमा करता हूँ? और उन्हें देखनेसे ही आखिर आपको क्या लाभ होगा?"

"लाभ जो भी हो, परेशके हाथ दोनों चिट्ठियाँ आज ही दे दीजिएगा? वह आपके साथ चला जायगा।"

"इतनी जल्दी?"

"हाँ।"

२३

निद्राविहीन रातकी पूरी थकान लिए हुए विजयाने जब सवेरे नीचेकी बैठकमें प्रवेश किया तब देखा कि कचहरीके बही-खाते टेबुलपर तह लगे रक्खे हैं और बूढ़ा गुमाश्ता पास ही खड़ा प्रतीक्षा कर रहा है। उसने विनयके साथ कहा "मा, ये सब आज ही वापस मिल जाने चाहिए।"

उसके दो घण्टेके बाद आनेके लिए कहकर विजयाने ऊपरका खाता बन्द किया और वह खिड़कीसे लगे हुए कोचपर जाकर बैठ गई। उसमें मन लगानेकी शक्ति ही नहीं रह गई थी। उसकी श्रान्त दृष्टि बार बार हिसाबके आँकड़ोंको छोड़कर खिड़कीके बाहर यहाँ-वहाँ भाग रही थी। सहसा उसने देखा कि वृद्ध रासबिहारी नदीके किनारे एक पेड़के नीचे खड़े हैं, परेशसे न जाने क्या पूछ रहे हैं, और उँगली उठाकर कभी नीचेका कमरा कभी ऊपरकी छत दिखा रहे हैं। दोनोंमेंसे किसीकी भी कोई बात सुने बिना विजयाने पलक मारते ही सब कुछ इशारेसे मानो हृदयंगम कर लिया।

कुछ ही देर बाद वे परेशको छोड़कर कचहरीकी तरफ चले गये। परेश घरकी तरफ आ रहा था। विजयाने खिड़कीसे हाथ हिलाकर उसे बुला लिया और प्रश्न किया "तुझसे क्या पूछ रहे थे रे?"

परेशने कहा "अच्छा माजी, गुमाश्ताजीसे रुपया लेकर मैं पतंग और डोर खरीदने क्यों गया था न? डाक्टर बाबूके रोटी खानेके समय क्या मैं घरपर था माजी?"

विजयाने कहा " नहीं तो।

परेशने कहा—" हम ! बड़े बाबू कहते हैं क्या बात हुई थी बता सके नहीं तो तुझे सिपाहीसे पकड़वाकर हथकड़ी लगवाऊँगा। मैं बोला मुझे दरबानने तुमसे झूठमूठ चुगली की है। माजी बोलीं, परेश तू दौड़कर डाक्टर बाबूका पता ला तो तुझे अच्छी पतंग-डोर खरीद दूँगी —इसीलिए न दौड़ गया था ! लेकिन तुम यह बड़े बाबूसे मत कहना माजी। तुमसे बतानेको उन्होंने मना कर दिया है।

नहीं बताऊँगी " कहकर विजयाने परेशको विदा कर दिया और लौटकर वह फिर खाता खोलकर बैठ गई लेकिन इस बार उसकी दृष्टिके सामने खातेकी लिखावट एकदम सिर-ढुँढकर एकाकार हो गई और रातके जागनेके कारण लाल हुई आँखें अत्यन्त कोमलसे भावकी शिखाके समान जलने लगीं। थोड़ी देर बाद ही रासबिहारीने दरवाजेके बाहर ज्योंही आवाज करके मृदु मन्द गतिसे प्रवेश किया और विजयाकी दृष्टि आकर्षित करनेके लिए धीरे-से थोड़ा खाँस कर वे कुर्सी खींचकर बैठ गये।

विजयाने खातेसे मुँह उठाकर कहा " आइए। आज इतने सबेरे कैसे ! "

रासबिहारीने उसी क्षण इस प्रश्नका उत्तर न देकर अत्यन्त स्नेहके साथ पूछा तुम्हारी दोनों आँखें बहुत ही लाल दिखाई पड़ रही हैं बेटी ! ज्वर-व्वर तो नहीं चढ़ गई ! "

विजया मस्तक हिलाकर बोली नहीं। "

रासबिहारी उसपर ध्यान न देकर चिन्ता प्रकट करने लगे। बोले बिना बताये तो मालूम नहीं बेटी या तो रातको अच्छी नींद नहीं आई अथवा किसी प्रकार कुछ—"

" नहीं मुझे कुछ नहीं हुआ।

लेकिन इस प्रकार आँखें लाल होनेका कारण तो कुछ न कुछ—"

विजयाके अधिक प्रतिवाद न करके काममें मन लगाते देखकर रासबिहारी रुक गये। थोड़ा मौन रहकर उन्होंने कहा पूछने ही घरसे सबेरे तुम्हारे पास आना पड़ा बेटी। सारी दस्तावेजें देखती हैं—तुमने सुना नहीं चौधरी लोग घोष-पाड़ाकी सीमाके सम्बन्धमें मामला दायर करनेवाले हैं। "

जमींदारीके सम्बन्धकी अत्यन्त आवश्यक दस्तावेजें विजयाकी अपने ही पास रखते थे। एक तो उन सबका सदैव प्रयोजन नहीं होता और फिर अन्यत्र खो जानेकी सम्भावना रहती है, इसलिए वे कभी उन्हें अपने पाससे अलग

नहीं करते थे। कलकत्तेसे आते समय विजया इन सबको साथ ले आई थी और अपने सोनेके कमरेकी मोटी आलमारीमें उसने बन्द करके रख छोड़ा था। विजयाने मुँह उठाकर कहा "यह किसने कहा कि वे लोग मामला दायर करेंगे?"

रासबिहारीने स्निग्ध भावसे कुछ हँसकर कहा "क्या जानतीं नहीं बेटी मैं हवासे खबर पा लेता हूँ। ऐसा न होता तो क्या इतनी बड़ी जमींदारी इतने दिनों चला पाता?

विजयाने पूछा "वे कितनी जमीनका दावा करते हैं?"

रासबिहारी मन ही मन हिसाब लगाकर बोले "बहुत कम होनेपर भी दो बीघेसे क्या कम होगी।

विजयाने लापरवाहीसे कहा बस! तो फिर वे ही ले लें। जरा-सी जगहके लिए मामले मुकदमेकी जरूरत नहीं है।

रासबिहारीने अत्यन्त अधिक विस्मयका भाव करके क्षोभके साथ कहा, "तुम जैसी लड़कीके मुँहसे ऐसी बात सुननेकी आशा तो नहीं की थी बेटी। आज बिना बाधाके यदि दो बीघे छोड़ दें तो कल और दो सौ बीघे नहीं छोड़ देनी होगी यह कौन कह सकता है?'

लेकिन आश्चर्य है कि इतने बड़े तिरस्कारपर भी विजया विचलित नहीं हुई। उसने सहज भावसे ही प्रत्युत्तर दिया, "लेकिन वास्तवमें तो दो सौ बीघे हमें छोड़नी पड़ नहीं रही है। मैं कहती हूँ, मामूली-सी बातपर मामले मुकदमेकी जरूरत नहीं है।"

रासबिहारी मर्माहत हुए। उन्होंने बार बार सिर हिलाकर कहा यह किसी प्रकार नहीं हो सकता बेटी किसी प्रकार नहीं हो सकता। तुम्हारे बाप् जब मुझपर सब निर्भर कर गये हैं और मैं जीवित हूँ, तब बिना विरोधके दो बीघे क्यों दो अंगुल जगह छोड़ देना भी घोर अधर्म होगा। इसके अतिरिक्त और भी अनेक कारण हैं जिनके लिए पुरानी दस्तावेजोंमें एक बार अच्छी तरह देख लेना आवश्यक है। जरा कष्ट करके उन्हें मेरी सन्दूक ऊपरसे ला दो।"

विजयाने उठनेका कोई आग्रह प्रकाशित नहीं किया। बल्कि, पूछा "और भी कोई कारण है?"

रासबिहारी बोले "हाँ है।"

विजयाने कहा 'कौन-सा कारण?"

रासबिहारीने मन ही मन अत्यन्त असन्तुष्ट होनेपर भी आत्म-संवरण करके

यह मिथ्या मार ही मुझे परम सत्यके समान पकड़ मारते ही मिट्टीमें मिला देगा।

इस तरह पत्थरमूर्तिके समान स्थिर होकर बैठे रहे यह न जाने क्या क्या चिन्ताएँ करने लगी। बार बार आँखें पोंछकर बहुत देरके अनन्तर वह उठ खड़ी हुई और बक्सेमें पत्थरोंसे पिताके दोनों हस्तलिखित पत्र मस्तकसे लगाकर फूट फूटकर रोने लगी। उसने दोनों चिट्ठियाँ पढ़नी चाहीं पर बार बार उसकी दृष्टि आँसुओंसे धुँधली हो गई। अन्तमें बहुत देर बाद बहुत यत्न करके जब उसने पढ़ना समाप्त किया तब पिताकी आन्तरिक कामना उसे अविदित नहीं रही। यह सत्य उसके सामने एकदम स्फटिकके समान स्वच्छ हो गया कि उस समय उन्होंने केवल इसीके लिए नरेन्द्रको मनुष्य बना देना चाहा था और यह भी समझनेको बाकी नहीं रहा कि यह बात और चाहे जिससे अज्ञात हो रासबिहारीसे नहीं थी।

और भी पाँच-छः दिन बीत गये। एक दिन सबेरे विजयाने नीचे बरामदेपर देखा मकानमें राज-मजदूर लगे हुए हैं और सारे मकानको सजानेके पहलेका उद्योग हो रहा है। कारण सोचनेपर अकस्मात् उसके सर्वांग शिथिल हो जाने और उसे याद आ गया कि आगामी पूर्णिमाके आनेमें अब केवल सात दिन बाकी हैं। सारे दिन उसीसे काम चलता रहा। परन्तु वह किसीको भी बुलाकर नहीं पूछ सकी कि यह किसके आदेशसे हो रहा है अथवा क्यों इस विषयमें उसकी सम्मति नहीं ली गई।

आज तीसरे पहर अनेक दिनोंके बाद विजया कानाईसिंहको साथ लेकर नदीके किनारे घूमने निकली थी। इतनेमें दयाल आकर उपस्थित हो गये। उन्होंने कहा, "मैं तुम्हें ही ढूँढ़ता फिर रहा हूँ बेटी।"

विजयाने आश्चर्यमें पड़कर कारण पूछा। उन्होंने कहा "बेटी अब तो देरी नहीं है, निमन्त्रण-पत्र छपाने होंगे। तुम्हारे बन्धु बान्धवोंको आदर बुलानेकी चेष्टा करनी होगी। इसलिए अब सबके नाम-धाम मालूम हो जावें तो—"

विजयाने कठोर होकर पूछा "निमन्त्रण-पत्र आप-पक्षका है, मेरे ही नामसे छपाये जायँगे?"

दयाल मन ही मन जानते थे कि यह विवाह सुखका नहीं उन्होंने सकुचा कर कहा "नहीं बेटी तुम्हारे नामसे क्यों छपेंगे? रासबिहारी वर-कन्या दोनोंके ही जब अभिभावक हैं, तब उनके नामसे ही निमन्त्रण देना स्थिर हुआ है।"

विजयाने कहा "स्थिर क्या उन्होंने ही किया है?"

दयालने गरदन हिलाकर कहा "हाँ, उन्होंने ही किया है।"

विजयाने कहा "तो यह भी वे ही स्थिर करें। मेरे बन्धु-बान्धव कोई नहीं हैं।"

दयाल इसका कोई उत्तर न दे सके। चलते चलते बातें हो रही थीं कि विजया सहसा प्रश्न कर बैठी "जो चिट्ठियाँ आपने नरेन्द्र बाबूको दी थीं उन्हें क्या आपने पढ़ा था?"

दयाल बोले "नहीं बेटी, दूसरेकी चिट्ठी मैं क्यों पढ़ूँगा? नरेन्द्रके पिताका नाम देखकर ही मैंने समझ लिया कि यह जब उनकी वस्तु है, तब उनके लड़केके हाथमें ही देना उचित है। एक बार मनमें आया अवश्य था कि तुमसे पूछूँगा लेकिन—क्यों क्या कोई दोष हो गया बेटी?"

इसके कठिन होते देखकर विजयाने स्निग्ध कण्ठसे कहा "उनके पिताकी वस्तु आपने उन्हें दे दी, यह तो ठीक ही किया है। अच्छा वे क्या आपसे इस सम्बन्धमें कुछ भी नहीं बोले?"

दयाल बोले "ना, नहीं कुछ भी नहीं बोले। लेकिन कुछ जानना हो तो उनसे पूछकर मैं कल ही तुम्हें बता सकता हूँ।"

विजयाने विस्मित होकर कहा, "कल ही किस प्रकार बता सकियेगा?"

दयालने कहा "जान पड़ता है, बता सकूँगा। आजकल वे रोज ही मेरे यहाँ आते हैं न।"

विजयाने शंकित होकर कहा "आपकी स्त्रीकी बीमारी क्या फिर बढ़ गई है? यह बात तो आपने मुझसे नहीं बताई?"

दयाल कुछ हँसकर बोले "नहीं, अब वे बहुत अच्छी हैं। नरेन्द्रकी चिकित्सा और भगवानकी दया।" कहकर उन्होंने हाथ जोड़कर परमपद, उद्देश्य प्रणाम कर लिया।

विजयाके विस्मयकी सीमा न रही। उसने दयालके मुँहकी तरफ क्षण-भर देखते रहकर प्रश्न किया, "तो उन्हें प्रति दिन आना पड़ता है?"

दयाल प्रसन्नमुखसे कहने लगे, "आवश्यक न होनेपर भी जन्मभूमिकी माया क्या सहज ही कट जाती है बेटी? इसके सिवा आजकल नरेन्द्रको काम-काज कम है, यहाँ बन्धु-बान्धव भी कोई नहीं है,—इसीलिए वे शामका समय यहीं बिता जाते हैं। विशेष करके, मेरी स्त्री तो उन्हें बिल्कुल लड़केके समान ही चाहती है।—चाहने योग्य लड़का भी तो है। लेकिन, बातों बातोंमें जब इतनी दूर आ गई हो बेटी तब अपने इस मकान तक भी क्यों न चली चलो?"

चाहिए" कहकर विजया साथ साथ चलने लगी।

दयाल कहने लगे "मैंने तो ऐसा निर्मल और स्वभावतः ऐसा सज्जन व्यक्ति अपनी इतनी उमर कभी नहीं देखा। नलिनीको इन्होंने भी ए. पास करके डाक्टरी पढ़नेकी है। इस विषयमें वे उसे कितना उत्साहित करते हैं, कितनी सहायता देते हैं, इसकी कोई हद नहीं।"

विजया चौंक उठी। कलकत्तेसे प्रति दिन इतनी दूर आकर शाम बितानेका वह संदेह ही अब तक उसके हृदयके भीतर विषके समान वेष्टित होता आ रहा था। दयालने फिरकर देखकर स्नेहार्द्र कण्ठसे कहा "तो अब आगेका काम नहीं है बेटी, तुम थक गयी हो।"

विजयाने कहा "नहीं चलिए।"

इसकी गतिकी शिथिलता लक्ष्य करते ही दयालने थकानकी बात उठाई थी; लेकिन यदि वे उसके मुँहकी आकृति देख पाते तो यह बात मुँहपर भी न ला सकते।

उस समय प्रत्येक पदक्षेपपर विजयाके भीतरसे जो कठिन रुलाई उमड़ती आ रही थी उसका अनुमान करना दयालके लिए असम्भव था। इसीलिए वे फिर भी अपने आप ही कहते चले गये "नरेनकी सहायतासे इतने ही दिनोंमें नलिनीने अनेक पुस्तकें पूरी कर डाली हैं। विज्ञान पढ़नेमें दोनोंका बड़ा अनुराग है।"

अनेक क्षण निःशब्द चलनेके पश्चात् विजयाने प्राणपण प्रयत्नसे अपनेको संयत करके धीरेसे पूछा "आप क्या और कुछ संदेह नहीं करते?"

दयालने कोई विशेष विस्मय प्रकट नहीं किया। सहज भावसे ही पूछा, "काहेका सन्देह बेटी?"

इस प्रश्नका जवाब विजया उसी क्षण नहीं दे सकी। उसका हृदय जैसे फटने लगा। कुछ क्षणोंमें वह व्यथा संवरण कर किसीतरह उसने कहा "मुझे लगता है, नलिनीके सम्बन्धमें उनके मनका भाव स्पष्ट रूपसे जान लेना उचित है।'

दयालने अनुमोदन करते हुए कहा, "ठीक बात है। लेकिन उसका अवसर तो अब भी नहीं बीता है बेटी बल्कि मुझे तो ऐसा लगता है कि दोनों व्यक्तियोंका परिचय जब तक और थोड़ा घनिष्ठ न हो जाय तब तक इसका कुछ न करना ही उचित है।"

विजयाने समझ लिया कि यह प्रश्न दूसरेके मनमें भी उदय हुआ है। क्षण-भर मौन रहकर उसने कहा "लेकिन नलिनीके पक्षमें तो अनिश्चित हो

सकता है। उनका मन स्थिर करनेमें शायद समय लग सकता है, लेकिन इस बीचमें नलिनीके—"

संकोच और विह्वलताके मारे आगेकी बात उनके मुँहसे बाहर नहीं निकल सकी। लेकिन दयालको जान पड़ता है, समस्याको इस दिशासे उतना विचार कर नहीं देखा। वे सन्दिग्ध स्वरमें बोले "सच बात है। लेकिन अबतक मैंने अपनी आँखसे सुना है, उससे—लेकिन तुमसे तो सब सुना है, नरेनपर हम लोग खूब विश्वास करते हैं। उनके द्वारा किसीकी भी कोई हानि हो सकती है, वे भूलकर भी किसीके प्रति अन्याय कर सकते हैं यह मैं सोच भी नहीं सकता।"

वे सोच सके ही न सकें लेकिन तो भी ठीक उसी समय अन्याय कहाँ और किसको दूरतक पहुँच रहा था यह केवल अन्तर्यामी ही जानते थे।

दोनोंने जब दयालकी बैठकके कमरेमें प्रवेश किया तब शामकी छाया घनी हो आई थी। एक टेबुलके दोनों तरफ कुर्सियोंपर नरेन्द्र और नलिनी बैठे हुए थे। सामनेकी खुली पुस्तकके सम्बन्धमें ही, सम्भवतः अक्षर अस्पष्ट हो जानेके कारण पढ़ना छोड़कर दोनोंने धीरे धीरे आलोचना शुरू कर दी थी। नलिनीकी नजर इसी ओर थी। उसने ही पहले कण्ठ-स्वरसे अभ्यर्थना की। लेकिन विजयाका मुँह वे-नासे विवर्ण हो गया है, यह सन्ध्याके म्लान आलोकमें वह न देख सकी। नरेन्द्र तुरन्त कुर्सी छोड़कर उठ बैठा और उसने नमस्कार करके पूछा "अच्छी हैं ?"

विजयाने न तो प्रतिनमस्कार किया और न प्रश्नका ही उत्तर दिया। मानो यह सुन ही न सकी हो ऐसे भावसे उसकी तरफ बिलकुल पीठ करके उसने नलिनीसे कहा "क्यों आप तो फिर एक दिन भी नहीं आईं ?"

नरेन्द्रने सामने आकर हँसमुख होकर कहा "और मुझे शायद पहचान भी न सकीं ?"

विजयाने शान्त अवज्ञाके सहित जवाब दिया "पहचान सकनेसे ही क्या पहचान करना जरूरी हो जाता है ?"

और फिर नलिनीसे कहा "चलिए, आपकी मामीसे बातचीत कर आऊँ।"

कहकर केवल क्षण-भर इस तरफ और एक बार दृष्टिपात करके वह जैसे एक प्रकारसे दौड़ते हुए ही ऊपर चली गई। नलिनीने कुछ सीढ़ियाँ ऊपर चढ़ जानेपर पुकार कर कहा "लेकिन चाय पिये बिना कहीं भाग न जाइएगा नरेन्द्र बाबू।"

नरेन्द्र इसका जवाब नहीं दे सका विस्मयसे अपमानसे एकदम काठ होकर

खड़ा रहा और कुछ दयाल भी उसकी इस अप्रत्याशित अवज्ञाका अंश बँटानेके लिए विरस मुँहसे उसी स्थानपर चुपचाप खड़े रहे। लेकिन तो भी न जाने कैसे उन्हें रह रहकर सन्देह होने लगा कि जो कुछ बाहर प्रकट हुआ है, वह ठीक नहीं वस्तु नहीं है,—इस आवरण अवज्ञाके आवरणके नीचे जो छिपी आगमें रह गया है, वह और चाहे जो हो उपेक्षा और अवहेलनाका भाव तो नहीं है।

कुछ देर बाद चायके लिए पुकार हुई, पर बाबू नरेन्द्र दयालका अनुरोध टालकर नीचे ही रह गया। लेकिन उसे अकेला छोड़कर दयाल ऊपर नहीं जा रहे हैं यह देखकर उसी क्षण उसने हँसते हुए कहा "मैं बाहरका आदमी हूँ, मेरी बात मत सोचिए दयाल बाबू। आपको अपनी मान्य अतिथिका सम्मान रखना आवश्यक है। आप जल्दी जाइए।"

दयालने कुण्ठित और लज्जित भावसे ऊपर जानेका उपक्रम करते हुए कहा "तो फिर तुम क्या कुछ देर बैठोगे?"

नौकर दीपक रख गया था। नरेन्द्रने उसी पुस्तकको नजदीक खींचकर गरदन हिलाकर कहा "जी हाँ जरूर बैठूँगा।"

प्रायः आध घण्टे बाद फिर तीनों व्यक्ति नीचे उतर आये। नरेन्द्र पुस्तक रखकर खड़ा हो गया। आज उसके चले आनेपर ही शायद ये लोग आराम अनुभव करते क्योंकि उसके इस प्रकार आनेकी प्रतीक्षा करते रहनेने उनको एक साथ मानों लज्जा और संकोचका कोड़ा-सा मार दिया।

नलिनीने व्यङ्ग्य मृदु कण्ठसे कहा, "आपकी चाय नीचे भेजनेको कह दिया है,—अभी ही आई जाती है नरेन्द्र बाबू!"

लेकिन विजया उससे किसी प्रकारका सम्भाषण किये बिना यहाँ तक कि उसकी ओर दृष्टिपात तक किये बिना ही धीरे धीरे बाहर निकल गई। कन्हैया-सिंह दरवाजेके पास ही बैठा था वह हाथमें लाठी लेकर उठ खड़ा हुआ। विजयाने बाहर आकर देखा आकाशमें मेघोंका आभास तक नहीं है,—अष्टमीका चन्द्रमा ठीक सामने स्थिर हो रहा है। उसे ऐसा लगने लगा मानों उसके पैरोंके नीचेसे शुरू आरम्भ करके निकट दूर जो कुछ दिखाई पड़ता है आकाश मैदान गाँवके जंगलकी वन-रेखा नदी-तट—सब ही मानों इस निःशब्द ज्योत्स्नामें खड़े होकर अपलकसे हो रहे हैं। किसीके साथ किसीका सम्बन्ध नहीं है—परिचय नहीं है। कोई नींदमें ही स्वतंत्र जगतसे तोड़ लाकर इन्हें यहाँ वहाँ फेंक गया है और अब तन्द्रा टूटनेपर वे परस्परके अनजाने

कुरसीकी तरफ असहाय होकर ताक रहे हैं। चलते चलते उसकी आँखोंसे अविरल आँसू गिरने लगे और उन्हें पोंछते हुए वह बार बार कहने लगी "अब और नहीं सह सकती अब और बरदाश्त नहीं कर सकती।"

घर जाते ही खबर मिली कि रासबिहारी न जाने किस लिए शामसे ही बाहरकी बैठकमें बैठे अपेक्षा कर रहे हैं। सुनते ही उसका चित्त खट्टा हो गया और कोई बात न कहकर पासकी सीढ़ीसे वह अपने ऊपरके कमरेमें चली गई। लेकिन यह भी उसे अविदित नहीं था कि हजार देर होनेपर भी इस परम सहिष्णु व्यक्तिकी धैर्य-च्युति नहीं होगी। वे जब प्रतीक्षा किये बैठे हैं, तब रात चाहे जितनी हो जाय मिले बिना किसी प्रकार नहीं टलेंगे।

थोड़ी देरके ही भीतर दरवाजेपर खड़े होकर परेशने बताया कि बड़े बाबू आ रहे हैं और प्रायः साथ ही साथ उनकी चट्टियों और खाँसीका शब्द सुनाई पड़ा।

विजयाने कहा "आइए।"

कमरेमें प्रवेश करके रासबिहारी कुर्सीपर बैठ गये और बोले, "मैं इसीसे अब तक इन लोगोंसे कह रहा था कि इतने नौकर-चाकरोंमेंसे यह किसीको भी नहीं सूझा कि मकानसे लालटेन ले जायें। इनलोगोंको भी यह भय होना उचित था कि मैदानमें केवल चाँदनीके प्रकाशपर निर्भर न रहकर साथमें लालटेन भेज देना चाहिए। इसीलिए, सोचता हूँ भगवान् इस संसारमें अपने परायेमें तुमने कितना प्रभेद कर रखा है।" फिर उन्होंने एक लम्बी साँस ली। लेकिन जब विजयाने कुछ नहीं कहा तब रासबिहारी खाँसकर कुछ इधर उधर करके जेबसे एक कागज बाहर निकालकर बोले "जो कुछ करना चाहिए मैंने सब कुछ कर रखा है केवल तुम्हें अपना नाम लिख देना होगा बेटी इसे कल सबेरे ही भेज देना चाहिए।" और वह कागज उन्होंने विजयाके हाथमें दे दिया। विजयाने देखते ही समझ लिया यह उनके ब्राह्मविवाहकी कानूनके अनुसार रजिस्ट्री करनेकी दरख्वास्त है। छपी हुई और हाथकी लिखावटको आदिसे अन्त तक दो तीन बार पढ़कर अन्तमें उसने मुँह उठाया। अधिक समय नहीं बीता था लेकिन इतनेमें ही उसके मनमें एक अद्भुत व्यापार घटित हो गया। उसकी सब तरफकी इतनी बड़ी वेदना अकस्मात् न जाने कैसी एक प्रकारकी कठिन उदासीनता और निदारुण वितृष्णामें रूपान्तरित हो गई। उसने सोचा कि जगत्के सभी पुरुष एक ही साँचेमें ढले हैं। रासबिहारी विलास नरेन्द्र—इनमेंसे किसीके साथ विशेष कोई प्रभेद नहीं। बुद्धि और अवस्थाके तारतम्यसे जो कुछ बाहर

दिखलाई देता है केवल यही प्रभेद है। नहीं तो अपने सुख और सुभीतेके लिए नीचतामें, कृतघ्नतामें, निर्मम निष्ठुरतामें नारीके लिए ये सभी समान हैं। आज दयालका आचरण ही उसे सबकी अपेक्षा अधिक खटका था। क्योंकि न जाने कैसे उसे ये दृढ़ विश्वास हो गया कि उसके हृदयकी एकान्त कामनाकी वस्तुको ये जानते हैं और इसी दयालके लिए उसने क्या क्या नहीं किया है! सारे प्राणोंसे श्रद्धा की है चाहा है, बिलकुल अपना समझा है। लेकिन अपनी मामाजीके कन्याके मुकाबिले सब कुछ जान-बूझकर भी इन्होंने उस विश्वासकी कोई मर्यादा नहीं रक्खी। इसकी आँखोंके नीचे ही जब दिनपर दिन एक अनात्मीया रमणीके मर्मान्तक दुःखका पथ प्रस्तुत हो रहा था तब कितनी हिंसा कितनी करुणा इनके मनमें जागी! फिर रासबिहारीके साथ मूलतः इनका भेद किस स्थानपर और कितना है! नरेन्द्रकी बात उसने पहलेसे ही विचारसे बाहर ठेल रक्खी थी। इस समय भी उसके विषयमें विचार करनेका नाम उसने नहीं लिया। केवल यह बात ही इस समय वह अपने आपसे बार बार कहने लगी कि जब सब ही समान हैं, तब किसीको ही आखिर छिद्रकी आँखोंसे देखनेका मुझे क्या अधिकार है! बल्कि, यह ही तो सबकी अपेक्षा निर्दोष है! इसने ही तो सबकी अपेक्षा कम अपराध किया है! वास्तवमें केवल इसके ही तो वाक्य और व्यवहारमें मेल दिखाई पड़ता है। इसका जो कुछ अपराध है, वह केवल मेरे लिए ही है। कुछ स्थिर रहकर विजयाने अपने आपको दुबारा समझाया कि विलासका प्रेम सच्चा और सजीव है इसीलिए तो वह चुपचाप सहन नहीं कर सका और विरुद्ध शक्तिको ठेलनेके लिए पूरी तरहसे हथियार बाँधकर खड़ा हो गया — 'बाबा' कहते ही उसकी अपमानसाहतकी रक्षा करके रुककर चल नहीं पा सका। यदि यही अपराध है, तो उसे दंड देनेका अधिकार और चाहे किसे हो मुझे तो नहीं है। उसे और एक बात याद आई इस कठिन वास्तविक संसारकी। उस दृष्टिसे विचार करके देखनेसे तो इस विलासकी योग्यता ही सबकी अपेक्षा बड़ी दिखाई पड़ती है! उस अपराधीकी तुलनामें तो इसे किसी प्रकार भी उपेक्षाकी वस्तु कहना शोभा नहीं देता!

लेकिन रासबिहारी उसके गम्भीर निर्वाक् मुँहकी तरफ देखकर अत्यन्त आशंकित होकर रह गये। उन्होंने कहा 'तो फिर बेटी, इस कमरेमें दावात-कलम है, या नीचेसे मंगानेको कह दूँ?—'

विजयाने चौंककर देखा। नलिनीकी कुत्सित कटाक्षपर स्पर्धापर उसकी

विचारोंकी डोरीने धीरे धीरे एक सूक्ष्म जाल बुनना प्रारम्भ ही किया था कि सार्वजनिक युक्तिकी इस निष्ठुर व्यापकताने छुरीके समान पड़कर उसे निमेष-भरमें छिन्न-भिन्न करके आगसे भस्म तक अनायास कर दिया और दूसरे ही क्षण विजया एकदम मरनेके लिए प्रस्तुतके समान निर्भय हो उठी। उसने कहा "अच्छा, मैं पूछती हूँ काकाजी आपका क्या यही मत है कि पाप चाहे जितना ही बड़ा क्यों न हो वह रस्मोंके नीचे दब जाता है?"

रासबिहारीने प्रश्नका तात्पर्य ठीकसे न समझ पाकर सिटपिटाकर कहा "क्यों क्यों बेटी?"

विजया अविचलित रह स्वरसे बोली "नहीं तो मेरे इतने बड़े पापकी भी उपेक्षा करके क्या आप मुझे ग्रहण करना चाहते?"

रासबिहारी घबराहटसे व्याकुल हो उठे। वे हतबुद्धि होकर बोले "यह तो झूठ बात है। बहुत बड़ा शत्रु भी तो तुम्हें अपवाद नहीं लगा सकता बेटी।"

विजयाने कहा "शत्रु आकर नहीं लगा सकता। लेकिन मैं पूछती हूँ, विलास बाबू क्या मुझे श्रद्धाकी आँखोंसे देख सकते हैं?"

रासबिहारीने कहा "श्रद्धाकी आँखोंसे नहीं देख सकेगा! तुम्हें! विलास? अच्छा—" कहकर वे ऊँचे स्वरसे पुकारने लगे "विलास! विलास!"

विलास भी कहीं नजदीक ही प्रतीक्षा कर रहा था भीतर आकर खड़ा हो गया। रासबिहारी बोल उठे "सुना विलास हमारी विजया बेटी कह रही है कि तुम क्या इन्हें श्रद्धाकी आँखोंसे देख सकोगे? सुनो जरा—"

लेकिन विलास सहसा कोई उत्तर नहीं दे सका। प्रश्न जैसे समझ ही नहीं सका हो, ऐसे भावसे केवल ताकता रह गया।

विजयाने कहा, "उस दिन काकाजी मकानके भीतर चाकरोंसे पूछताछ करके मुझसे बोले थे कि मैं बहुत रात बीते तक एकान्तमें नरेन्द्र बाबूसे आमोद-प्रमोद करके भी तृप्त नहीं हुई अन्तमें वे ट्रेन न पाकर बहुत रात यहीं काटकर सवेरे गये। ऐसी अवस्थामें—"

बात रासबिहारीके वज्र-कण्ठकी आवाजके नीचे दब गई। वे बार बार कहने लगे "कभी नहीं! कभी नहीं! यह असम्भव है! यह घोर मिथ्या है!—यह बिलकुल ही—" इत्यादि इत्यादि।

विलासका मुँह फक पड़ गया। उसने कहा "नहीं मैंने नहीं सुना।"

रासबिहारी फिर चिल्लाने लगे "तुम कैसे सुनोगे विलास! यह भयानक

सिसकी। वह दोनों हाथ कपालपर रखकर नमस्कार करके कालके दरवाजेसे तेजीसे भाग गई।

२५

निद्राजन्य सैकसकी जागके बेरेमें विजयाका चित्त कितना अधिक पीड़ित और उद्भ्रान्त हो उठा था यह बात तब तक ठीक तरहसे नहीं समझ सकी जब तक कि उसने अपनेको निश्चित रूपसे समर्पित न कर दिया। आज सबेरे नींद खुलते ही ध्यान गया कि उसका मन अत्यन्त शान्त हो गया है क्योंकि अपने मनमें चकलताका आभास तक उसे ढूँढे नहीं मिला। बाहर देखने पर उसे ख्याल आया कि आकाश आषाढ़-प्रभातके समान धूपर मेघोंके भारसे पृथ्वीके ऊपर झुकनेके बल पड़ा है। ऐसे समयमें सन्ध्यायाम करना-न-करना उस एक-सा जान पड़ा। आज वह यह बात सोच ही नहीं सकी कि और दिनों सबेरे और कामोंमें साधारण-सी देर होने पर भी अन्तःकरण क्यों व्यथित अधीन हो उठता था और क्यों ऐसा लगने लगता था कि बहुत-सा समय नष्ट हो गया है। भला उसे ऐसा कौन-सा काम है, जो एक-दो घंटे बिछौनेपर पड़े रहनेसे चलेगा नहीं! घरमें दास-दासी भरे हैं, बड़ी भारी जमींदारी सुनियमित रूपसे चल रही है। समस्त भावी भविष्यत् जीवन यदि ऐसे ही आरामसे —ऐसी ही शान्तिसे कट जाय तो इसकी अपेक्षा और भली बात क्या है! उसने खिड़कीके बाहर दृष्टि फैलाकर देखा वृक्ष-लताओंका हरा रंग तक बदलकर आज न जाने कैसा हो गया है, और उनके पत्ते तक स्थिर-गम्भीर हो उठे हैं। अब विश्व-ब्रह्माण्डमें द्वन्द्व-विवाद तर्क-वितर्क अशान्ति-उपद्रव कहीं भी कुछ नहीं रह गया है — एक रातके भीतर ही मानो वह बिलकुल ऋषि-मुनियोंका तपोवन बन गया है।

हृदयमें भरे हुए परम अवसादको शान्ति समझ कर विजया मरनेसे पहले व्यक्तिकी तरह आलस्य और भी बहुत देरतक बिछौनेपर पड़ी रहती लेकिन परेशकी माँने आकर शान्ति भंग कर दी। जो व्यक्ति रोज सबेरे ही उठ बैठता है वह इतनी देर तक क्यों नहीं उठा यह जाननेके लिए उसने आशंकित चित्तसे बार बार पुकारा और जब कमरेके कपाट खुलवा लिये तब छोड़ा।

हाथ-मुँह धोकर कपड़े बदलकर, विजया नीचे उतर रही थी कि उसने सुना, आज इधर रासबिहारी ही मजदूरोंके कामकी देख-भाल कर रहे हैं। केवल दो दिन और बाकी हैं, इतने थोड़े समयमें ही सारे घरको लीप-पोतकर बिलकुल नया कर देना होगा।

विमलाने कुछ पहले ही सोचा था कि पिछली रातको जिस दुखद समस्याकी समाप्ति और चरम निष्पत्ति हो गई है, अब किसी भी कारणसे और किसीके भी द्वारा उसमें विपर्यय नहीं हो सकता। इसलिए उसके न्याय-अन्याय या भले-बुरेको लेकर अब वह कोई तर्क वितर्क नहीं करेगी। मंगलमयकी इच्छासे यह सब मङ्गलके लिए ही हुआ है इस विश्वासमें वह सन्देहकी छाया तक नहीं पड़ने देगी। लेकिन सहसा उसने देखा कि यह सम्भव नहीं है। यह मनमें आते ही कि राजबिहारी नीचे हैं,—उतरते ही आमने-सामने भेंट हो जायगी उसका सर्वाङ्ग विमुख हो गया। वह अपने आप ही धीरेसे चौंक पड़ी। बहुत देर तक बरामदेमें टहलते रहने पर भी जब समय नहीं कट सका तब अकस्मात् उसे अपने बाल्य बन्धु स्मरण हो आये। बहुत दिनोंसे किसीसे भेंट-मुलाकात नहीं हुई, चिट्ठी-पत्री भी बन्द है आज उन्हीं को स्मरण करके वह अपने लिखने-पढ़नेके कमरेमें चिट्ठियाँ लिखनेके लिए आकर बैठ गई। उसके मनमें न जाने कितनी वेदना संचित हो गई थी। चिट्ठियोंके द्वारा उसे ही मुक्ति देकर व्यक्त करते हुए वह बिल्कुल मग्न हो गई। किस प्रकार कितना समय कट गया कितने आँसू उसके बह गये इसका ध्यान ही उसे नहीं रहा। इतनेमें परेशकी माँने दरवाजेके पास आकर कहा "एक बज गया दीदी खाओगी नहीं?"

घड़ीकी तरफ देखकर वह फिर लिखनेमें मन लगाने जा रही थी कि इतनेमें परेशकी माँने सहसा मृदु कण्ठसे कहा, "अरी भैया डाक्टर बाबू आ रहे हैं!" और वह तुरन्त ही जल्दी खिसक गई। विमलाने चौंक कर मुँह फिराकर देखा, बरामदेके ठीक सामने दूसरी ओरसे परेशके पीछे नरेन्द्र आ रहा है।

इसके पहले और भी कई बार वह ऊपर आया है पर अपनी इच्छासे इस तरह खबर दिये बिना ही ऊपर चढ़ आ सकता है विमला यह कल्पना भी न कर सकती थी। उसका मुँह सूखा हुआ था और बाल बाल रूखे व अस्तव्यस्त हो रहे थे। लेकिन कमरेमें पैर रखते ही जब वह बोल उठा "कहिए तो उस दिन आपने मुझे पहचानना क्यों नहीं चाहा?" और एक कुर्सी लेकर बैठ गया, उस समय उसके कण्ठ-स्वरसे और उसकी सारी देह-व्यापी भाराक्रान्त क्लान्तिने इस तरह आत्म प्रकाश किया कि विमला उत्तर तो क्या देती डरकर बेचारी एकदम चौंक उठी। उसने व्याकुल आग्रहसे उठकर पूछा "आपको क्या हुआ है नरेन्द्र बाबू! तबीयत तो कुछ खराब नहीं हो गई है?"

नरेन्द्रने गरदन हिलाकर कहा "नहीं तबीयत अब ठीक है। बहुत मामूली-सा बुखार आया था लेकिन उसने ही सहसा इतना दुर्बल कर दिया कि

विजयाने पूछा "असंभव क्यों ?"

नरेन्द्रने कहा, "सो रहने दीजिए। पर एक कारण तो यह है कि मैं हिन्दू हूँ और वे ब्राह्म। इसके सिवा हम लोगोंकी जाति भी एक नहीं है।"

विजयाने गंभीर होकर कहा "आप क्या जाति मानते हैं ?"

नरेन्द्रने कहा "मानता क्यों नहीं। हिन्दू-समाजमें जाति-भेद है, एक जातिवालोंके साथ दूसरी जातिवालोंका विवाह नहीं होता—यह क्या आप भी नहीं मानतीं ?"

विजयाने कहा "मानती हूँ, लेकिन अच्छा व्यवहार नहीं मानती। आप शिक्षित होकर इसे अच्छा कैसे मानते हैं ?"

नरेन्द्र हँसने लगा। उसने कहा "बन्दरोंकी बुद्धि कुछ बकरोंकी-सी होती है। आदमियोंके मेरे जैसे लोगोंको जो माइक्रोस्कोपके द्वारा कीटाणुओं तरहकी तुच्छ वस्तु लेकर ही समय बिताते हैं। इसलिए इस मामलेमें मुझे न हो तो माफ ही क्यों न कर दीजिए ?"

विजयाने समझा नरेन्द्र जाति-भेदके सम्बन्धमें एक औरकी बात कहना चाहता है। इसीलिए उसके मुँहसे बोली "अच्छा दूसरी जातिकी बात जाने दीजिए। लेकिन जहाँ जाति एक है, वहाँ भी क्या केवल अलग धर्म-मतके कारण आप विवाहको असंभव कहना चाहते हैं ? आप कहनेको हिन्दू हैं। आप तो बहिष्कृत हैं। क्या आप समझते हैं कि आपके लिए भी कोई ब्राह्म कुमारी विवाहयोग्य नहीं है। इतना बढ़कर आपको किस लिए है ? और यही यदि आपका सच्चा मत है तो यह बात आपने पहलेसे ही क्यों नहीं कह दी ?"

बोलते बोलते ही उसकी दोनों आँखें आँसुओंसे भर गईं और उन्हें ही छिपानेके लिए उसने तुरन्त मुँह फिरा लिया। लेकिन वह नरेन्द्रकी दृष्टिसे धोखा नहीं दे सकी। उसने कुछ आश्चर्यमें पड़कर ही पूछा "लेकिन इस समय आप रो क्यों रही हैं, यह तो मेरा मत नहीं है।"

विजया मुँह छिपाये बिना ही हँसे पड़के बोली "किसीसे नहीं आपका सच्चा मत है।"

नरेन्द्रने कहा "नहीं। यदि आप मेरी परीक्षा करतीं तो जान जातीं कि यह मेरा सच्चा क्यों झूठा मत भी नहीं है। इसके सिवाय अधिकारीकी बात लेकर आप क्यों व्यर्थ बढ़ा रही हैं ? मैं जानता हूँ कि सबका मन कहीं बैठा है; और यह भी मैं ठीक समझ लेगी कि मैं क्यों पृथ्वीके दूसरे छोरसे भाग रहा हूँ। इसलिए मेरे जानेका प्रश्न लेकर आप निरर्थक व्यथित न हों।"

विमलाने निर्मलीकी ओरसे फिरकर कहा "क्या आप समझते हैं कि इसप्रकार समर्थ न होनेसे ही आप यहाँ भाई नहीं आ सकते हैं ?"

नरेन्द्रके हृदयमें ये बातें बिजलीकी रेखाके समान कौंध उठीं, लेकिन साथ ही साथ उसकी दृष्टि टेबुलके उस पार रखे निमन्त्रण-पत्रके ऊपर जा पड़ी। वह एक मुहूर्त तक स्थिर रहकर धीरेसे बोला "यह ठीक है कि मैं आपका भी समर्थ होनेसे कुछ नहीं कर सकता। लेकिन आप तो मेरी सभी बातें जानती हैं, मेरे जीवनकी साध भी आपसे अज्ञात नहीं है। विदेशमें वह साध शायद किसी दिन पूरी भी हो सकती है लेकिन इस देशमें इतने बड़े निष्कर्मा दीन-दरिद्रके रहने न रहनेसे कुछ भी क्षति-वृद्धि नहीं होगी। आप मेरे जानेमें बाधा मत डालिए।"

विमला झुके हुए मुँहसे क्षण-भर निर्वाक् रहकर धीरेसे बोली "आप दीन दरिद्र नहीं हैं। आपके सब कुछ है, इच्छा करते ही सब वापिस ले सकते हैं।"

नरेन्द्रने कहा "इच्छा करते ही तो नहीं ले सकता, लेकिन यह मुझे याद है और हमेशा याद रहेगा कि आपने वह देना चाहा था। लेकिन देखिए, लेनेका भी अधिकार होना चाहिए,—वह अधिकार मुझे नहीं है।"

विमलाने उसी प्रकार अधोमुख रहकर ही प्रत्युत्तर दिया "अधिकार क्यों नहीं है? सम्पत्ति मेरी नहीं है पिताजीकी है, नहीं तो उस दिन उसपर दावा करनेकी बात आप परिहासके छलसे भी मुँहपर न ला सकते। यदि मैं होती तो कहींपर न ठहर पाती। वे जो कुछ दे गये हैं, उस सबपर जबर्दस्ती दखल कर लेती उसमेंसे एक तिल-भर भी न छोड़ती।"

नरेन्द्रने कोई बात नहीं कही। विमला भी और कुछ बोले बिना आँखें झुकाए चुपचाप बैठी रही। लगभग दो मिनट इसी प्रकारकी नीरवतामें कट गये। उसके बाद अकस्मात् एक भारी लम्बी साँसकी आवाजसे चौंककर विमलाने मुँह उठाकर ही देखा नरेन्द्रका सारा चेहरा न जाने कैसा हो गया है। दोनोंकी चार नजरें होते ही वह हठात् बोल उठा "नलिनीने ठीक ही समझा था विमला लेकिन मैंने विश्वास नहीं किया। मेरे समान इतने अकर्मण्य-असमर्थ आदमीकी भी किसीको कोई आवश्यकता हो सकती है, यह मैंने असम्भव समझा था और हँसकर उड़ा दिया था। लेकिन सचमुच ही यदि यह असम्भव खयाल तुम्हारे मनमें आया था तो तुमने केवल हुक्म ही क्यों न कर दिया? मेरे लिए तो इसका स्वप्न देखना भी पागलपन था विमला!"

आज इतने दिनोंके बाद उसके मुँहसे अपना नाम सुनकर विजया सिरसे पैर तक काँप उठी, वह मुँहपर जोरसे आँचल दबाकर अभ्युच्छ्वसित रुलाईको रोकने लगी।

नरेनने पैरोंकी आहट सुनकर पीछेकी ओर मुँह फेरते ही देखा दयाल कमरेमें आ रहे हैं।

दयालने दरवाजेपर खड़े होकर क्षण-भर चुपचाप दोनोंकी तरफ देखा उसके बाद वे धीरे धीरे विजयाके पास आकर उसके सोफेके एक किनारे बैठ गये और माथेपर दाहिना हाथ रखकर मधुर कण्ठसे बोले, मा।"

उसने अवश्य आत्मसंयम अनुभव कर लिया था, और वह प्राणपणसे इस कष्टकर रुलाईको रोकनेका यत्न कर रही थी लेकिन उनके करुण स्वरके मातृसम्बोधनका फल बिलकुल उलटा हुआ। शायद अपने मृत पिताका स्मरण हो आनेके कारण ही उसका धैर्य छूट गया हो। वह पलक मारते ही दयालके दोनों घुटनोंपर औंधी होकर गिर पड़ी और उनकी गोदमें मुँह छिपाकर रो पड़ी।

दयालकी आँखोंसे आँसू झर पड़े। इस संसारमें एक मात्र वे ही इस मर्मान्तक रोदनका आदिसे अन्ततक इतिहास जानते थे। विजयाके सिरपर धीरे धीरे हाथ फेरते हुए वे कहने लगे, "केवल मेरी ही गलतीसे यह इतना भारी अन्याय हुआ है मा, केवल मैंने ही यह दुर्घटना कराई। नलिनीके साथ अभी तक मेरी बहस हो रही थी,—वह सब कुछ जानती थी। लेकिन कौन जानता था कि नरेन्द्र मन ही मन केवल तुम्हें ही—लेकिन निर्बोध मैं सब कुछ गलत समझकर और तुम्हें झूठी खबर देकर इस दुःखको पार कर आया। अब शायद इसका और कोई प्रतिकार—"

दीवालकी घड़ीमें तीन बज गये। तीनों आदमी स्तब्ध हो रहे। उनकी गोदमें विजयाके दुर्दम दुःखका वेग क्रमशः शान्त होता आ रहा है यह अनुभव करके दयाल बहुत देर बाद धीरे धीरे उसकी पीठपर हाथकी थपकी देते देते बोले इसका क्या अब कोई उपाय नहीं हो सकता बेटी?"

विजया उसी प्रकार मुँह छुपाए रखकर ही मन्द कण्ठसे बोल उठी, नहीं। मृत्युके अतिरिक्त मेरे लिए अब और कोई मार्ग नहीं है।'

दयाल कह उठे "छि! लेकिन—"

विजयाने प्रबल वेगसे सिर हिलाते हुए कहा "नहीं नहीं, इसमें अब 'लेकिन' के लिए कोई स्थान नहीं है। मैंने वचन दिया है। अब उसे मैं नहीं तोड़ सकती दयाल बाबू! मेरे पिता—"

बोलते बोलते ही फिर उसका गला रुंध गया। दयालके मुंहसे भी कोई बात नहीं निकल सकी। चुपचाप धीरे धीरे उसके बालोंमें हाथ फेरने लगे।

परेशकी माने बाहरसे नौकरके द्वारा कहलाया 'भाभी तीन बज गये हैं।'

यह सुनकर दयाल बाबू व्यस्त हो उठे और स्नान आहारके लिए स्नेहपूर्वक बार बार अनुरोध करके उसका मुंह ऊपर उठानेका यत्न करने लगे।

परेशने फिर कहा "तुम्हारे न जानेसे कोई खा-पी नहीं सकता भाभी।"

तब आँखें पोंछकर विजया उठ बैठी और किसीकी तरफ देखे बिना ही धीमी चालसे कमरेसे बाहर हो गई।

दयालने कहा, "नरेन्द्र तुम्हारा भी तो खाना-पीना अब तक नहीं हुआ है?"

नरेन्द्र, अन्यमनस्क होकर न जाने क्या सोच रहा था, उसने मुँह उठाकर कहा "नहीं।"

"तो मेरे साथ चले चलो।"

"चलिए।" कहकर बात दुहराये बिना ही वह उठ खड़ा हुआ और दयालके साथ कमरेसे बाहर हो गया।

२६

उसी दिन शामको आसन्न विवाहोत्सवके उपलक्षमें कई आवश्यक बातें करकर पिता-पुत्र—रासबिहारी और विलासबिहारी—चले गये। इसके बाद विजया अपने पढ़नेके कमरेमें प्रवेश करते ही आश्चर्यमें पड़ गई। दयाल ऐसे तन्मय होकर बैठे हैं कि किसीके आनेकी ओर उन्होंने ध्यान तक नहीं दिया। विजया नहीं जानती थी कि वे कब आये और कबसे बैठे हैं, लेकिन उनका यह तल्लीन भाव देखकर ध्यान भंग करके अपना कुतूहल निवृत्त करनेकी प्रवृत्ति उसे नहीं हुई, वह जैसे आई थी वैसे ही निःशब्द चली गई। लेकिन प्रायः घण्टे-भर बाद फिर आकर भी जब देखा कि वे एक ही आसनसे बैठे हैं, तब वह धीरे धीरे पास आकर खड़ी हो गई।

दयालने चकित होकर कहा "तुम्हारे लिए ही प्रतीक्षा कर रहा हूँ मा।" विमला मधुर कण्ठसे बोली "तो फिर बुलाया क्यों नहीं?"

दयालने कहा "तुम लोग बातें कर रहे थे इसलिए मैंने विघ्न करना ठीक नहीं समझा। कल दोपहरको हमारे यहाँ तुम्हारा निमन्त्रण है। —न मत किसी प्रकार न होगा। कहीं न कहकर विदा न कर दो इसी भयसे मैं घर इतना मार्ग पैदल चलकर आया हूँ। लेकिन यह कहे देता हूँ कि दो-पहरकी धूपमें पैदल नहीं आ सकोगी मैंने पालकी-कहार ठीक कर रक्खे हैं वे घर आकर तुम्हें ठीक समयपर ले जायेंगे।"

वृद्धकी सकरुण बातोंसे विमलाकी आँखें छलछला आईं; उसने कहा "एक चिट्ठी लिखकर भेज देनेसे भी तो मैं नहीं न करती। फिर कष्ट आप क्यों निरर्थक होकर आये?"

दयाल उठकर विमलाके निकट गये और उसका एक हाथ दबाकर बोले "याद रहे! देखो बूढ़े आदमीको वचन दे रही हो मा। न आई तो मुझे तुम्हारा पैदल आना पड़ेगा किसी प्रकार भी नहीं छोड़ूँगा।"

विमला मस्तक हिलाकर बोली "अच्छा।"

लेकिन आगन्तुकके इस आचरणसे वह मन ही मन विस्मित हो गई। एक तो इससे पहले किसी दिन भी उन्होंने निमन्त्रण नहीं दिया था तिसपर सामने भोजनके बदले दोपहरके भोजनकी व्यवस्था और यत्न-पालन करनेके लिए बार बार इस प्रकार अनुरोध यह ठीक सहज और साधारण नहीं है। उसे सन्देह हुआ। वह निश्चय है कि आज दूसरे पहर तक इस असाधारण निमन्त्रणकी बात उनके मनमें नहीं था फिर भी इतने समयके भीतर ही पालकी कहारका प्रबन्ध तक करके आनेमें उन्होंने लापरवाही नहीं की है।

मनकी अशान्ति छिपाकर विमलाने थोड़ा-सा हँसकर पूछा "कारण क्या सुन नहीं सकूँगी?"

दयालने तिल-मात्र इधर-उधर न करके उत्तर दिया "नहीं बेटी यह तुम्हें भोजनके पहले नहीं बता सकूँगा।"

विमलाने कहा "यह न बताइए, पर निमन्त्रितोंके नाम तो बता दीजिए?"

रमानाथने कहा " तुम तो सबको पहचानोगी नहीं बेटी। वे मेरे इस सुखके साथी हैं। जिन्हें तुम पहचानोगी उनमेंसे एक व्यक्तिका नाम रासबिहारी है और दूसरेका वगैरह।

रमानाथके चले जानेपर विजया बहुत देर तक स्थिर होकर बैठी रही और मन ही मन इसका कारण ढूँढने लगी लेकिन जितना ही सोचने लगी उतना ही किसी एक अज्ञात डरसे उसके मनका अन्धकार निरन्तर बढ़ता ही चला गया।

लेकिन दूसरे दिन दोपहर ढले तक जब पालकी नहीं पहुँची और विजया तैयार होकर राह देखती रही, तब एक ओर जिस प्रकार उसके विस्मयकी सीमा नहीं रही, दूसरी ओर उसी प्रकार वह कुछ आराम भी अनुभव करने लगी। यह तय हुआ था कि परेशकी मां साथ जायेगी इसलिए उसने सम्भवतः इस बातको लेकर कोई दस बार कुछ कानी देनेके लिए विजयाने बुला भेजा और पूछा है कि कहीं मुझे बुलाना छिपा तो नहीं गये, निमन्त्रणकी बात कहीं भूल तो नहीं गये। इधर आदमी भेजकर पता लगानेमें भी विजयाको संकोच हो रहा था क्योंकि उसने सोचा कि सचमुच ही यदि किसी अनिवार्य कारणसे वे निमन्त्रण देनेकी बात भूल गये हों तो इस प्रकार उन्हें असीम लज्जामें डालना होगा। इस अभूतपूर्व अवस्था-संकटमें उसका दुविधाग्रस्त मन क्या करेगा जब वह कुछ भी निश्चय नहीं कर पा रही थी, तब परेशने हाँफते हाँफते आकर खबर दी कि पालकी आ रही है।

विजयाने जब यात्रा की, तब प्रायः तीसरा पहर था। रासबिहारी अपने मकानोंको लेकर अत्यन्त व्यस्त थे जल्दी जल्दी पालकीके बगलमें आकर हँसते हुए बोले " समझमें नहीं आता कि दयालको यह बुढ़ापेमें *मिलने-मिलानेका* शौक एकाएक कैसे हो गया। वे विशेष रूपसे कह गये हैं कि आपके साथ मुझे भी आना होगा लेकिन उससे यह कह देना बेटी, कि यदि पालकी भेजनेमें देर हो गई तो मैं नहीं आ सकूँगा।"

दयालके घरके द्वारपर आमके पत्तोंका वन्दनवार शोभित था। दोनों किनारे जलसे भरे कलश रखे थे। विजया विस्मित हो गई। दयाल गाँवके कुछ भले आदमियोंसे बातें कर रहे थे। उसके भीतर पैर रखते ही वे लपक कर आगे आये और उन्होंने 'मा' कहकर उसका हाथ पकड़ लिया।

सीढ़ीपर चढ़ते चढ़ते विजयाने उस अभिमानके सुरमें कहा "भूखके मारे मेरे प्राण निकल रहे हैं यही शायद आपके मध्याह्न भोजनका निमन्त्रण है!"

दयाल मधुर कण्ठसे बोले "आज तुम लोगोंको खाना नहीं है मा। नरेन्द्र तो निर्जीव-सा होकर पड़ा है। कमसे कम आज एक दिनके लिए तो तुम्हें अपने महाचार्यका शासन मानना ही होगा।"

सुखोंके सामनेके हालमें विवाहका सारा आयोजन प्रस्तुत था। यह सब क्या है ठीक ठीक न समझकर भी विजया हृदयके भीतर काँप उठी —उसने मुँह खोलकर पूछने तकका साहस नहीं किया।

दयाल अत्यन्त सहज भावसे समझाकर बोले "आज तुम्हारा विवाह है विजया। सौभाग्यवश आज शुभ मुहूर्त भी मिल गया है। न मिलता तो भी आज ही करना पड़ता किसी प्रकार टाला नहीं जा सकता। सब ठीक हो गया है, इसीलिए तो अपने महाचार्यने हँसकर कहा है कि समाजमें तुम लोगोंके लिए ही आपके मिलनी सृष्टि हुई है।"

विजयाका मुँह फक पड़ गया। उसने कहा "आप क्या मेरा हिन्दू विवाह करेंगे?"

दयालने कहा "हिन्दू विवाह क्या विवाह नहीं है बेटी? साम्प्रदायिक मत मनुष्यको ऐसा बेवकूफ बना देता है कि मैं कल सारे दिन सोच सोचकर भी इस तुच्छ बातका कोई कूल-किनारा नहीं पा सका लेकिन नलिनीने मुझे बातकी बातमें समझा दिया। बोली 'मामा, उनके पिता जिनके हाथमें सौंप गये हैं तुम उनके हाथमें ही उन्हें दे दो। नहीं तो ब्राह्म-विवाहका ढोंग करके यदि अपात्र दान करोगे, तो अधर्मकी सीमा नहीं रहेगी। और मनका मिलन ही तो सच्चा विवाह है। नहीं तो विवाहके मन्त्र चाहे भाषामें पढ़े जायँ चाहे संस्कृतमें महाचार्य महाशय पढ़ें चाहे आचार्य महाशय पढ़ें इससे क्या होता जाता है मामा!' इतनी बड़ी कठिन समस्या ऐसे बातकी बातमें सुलझ गई विजया। मैं मन ही मन बोला 'भगवान्, तुमसे तो कुछ छिपा नहीं है। इन लोगोंका विवाह मैं किसी भी मतसे क्यों न कराऊँ यह निश्चय जानता हूँ कि, तुम्हारे निकट अपराधी नहीं होऊँगा' तो भी मैं बोला 'लेकिन एक बात है नलिनी। विजयाने उन्हें वचन दे दिया है। वे लोग उसीपर निर्भर रहकर निश्चिन्त बैठे हैं। यह वचन तोड़ा किस प्रकार जायगा।' नलिनी बोली, 'मामा तुम तो जानते हो

विजयाके अन्तर्यामीने इसका समर्थन नहीं किया है। तब उनकी अपेक्षा क्या निस्सन्देह बोलना ही बड़ा हो जायगा? उसके हृदयके सत्यको छोड़कर मुँहकी बातको ही बड़ा मानना होगा? मैं आश्चर्यमें पड़कर बोला 'तूने यह सब सीखा कहाँ बेटी?' नलिनी बोली 'मैंने नरेन्द्र बाबूसे ही सीखा है। वे बार बार कहा करते हैं कि सत्यका स्थान हृदयमें है, मुँहमें नहीं। केवल मुँहसे निकल-नेके कारण ही कोई बात सत्य नहीं बन जाती। तो भी उसे ही जो लोग सबसे आगे,—सबसे ऊपर स्थापित करना चाहते हैं वे सत्यसे प्रेम करनेके कारण नहीं बल्कि सत्य-भाषणके दम्भसे प्रेम करनेके कारण ही ऐसा करते हैं।'

जरा-सा चुप रहकर वे बोले "तुम नरेन्द्रको जानती नहीं बेटी। वह तुम्हें कितना प्रेम करता है, यह भी शायद ठीक नहीं जानती। वह ऐसा लड़का है कि तुम्हारे सिरपर असह्य बोझा लादकर तुम्हें सहन करनेको भी किसी प्रकार राजी न होगा। तुम एक बार आदिसे अन्त तक उसके कर्मोंको स्मरण करके तो देखो विजया।"

विजयाने कुछ भी नहीं कहा, वह चुपचाप नीचा मुँह किये काठके समान खड़ी रही।

नलिनी भीतर काम-काजमें व्यस्त थी। खबर पाकर दौड़ी आई और उसने विजयाको जकड़कर पकड़ लिया। फिर उसने कानमें कहा "तुम्हें सजानेका भार आज नरेन्द्र बाबूने मुझे दिया है चलो।' यह कहकर वह एक प्रकारसे जबर्दस्ती ही उसे खींच ले गई।

दो घण्टेके बाद नलिनीने उसे फूलों और चन्दनसे सज्जित करके वधूके आसन-पर बिठला दिया। सामनेकी खिड़की खोल दी गई। तब उसके कम्पित मुँहपर दक्षिणकी वायु और आकाशकी चाँदनी एक ही साथ उसके स्वर्गस्थ माता-पिताके आशीर्वादके समान आ पड़ी।

जो महिला कन्या-दान करने बैठी थीं सुना गया कि वे किसी एक बहुत दूरके सम्बन्धसे विजयाकी बुआ हैं। एकाएक भट्टाचार्य महाशयने मन्त्र पढ़ाते पढ़ाते दावा किया कि दो तीन पुश्त पहले हम लोग ही इस जमींदार-घरके कुल-पुरोहित थे। विवाहका अनुष्ठान पूरा हो गया था और वर-वधूको उठानेका आयोजन हो रहा था कि रासबिहारी आकर विवाह-सभामें उपस्थित हो गये।

दयालने ससम्मान अभ्यर्थना करके दोनों हाथ जोड़कर कहा "आओ। तुम्हारी निर्मित्र सम्पूर्ण हो गया है —आजके दिन अब कोई ग्लानि मत रक्खो भाई, और इन लोगोंको आशीर्वाद दे दो।"

रासबिहारीने क्षण-भर स्तब्ध रहकर सहज वाणीसे कहा "वनमालीकी कन्याका विवाह क्या अन्तमें हिन्दू मतसे ही तुमने कर दिया दयाल! मुझे जरा बता देते तो इसकी आवश्यकता न होती।"

दयालने खिलखिलाकर कहा "विवाह तो सभी एक हैं, भाई।"

रासबिहारीने कठोर स्वरसे कहा "नहीं। लेकिन वनमालीकी कन्याने क्या अपने बापके गाँवसे आजीवन निर्वासित होनेके दण्ड-भोगको भी एक बार विचार कर नहीं देखा?"

नलिनी पास ही खड़ी थी उसने कहा "उनकी कन्याने अपने स्वर्गीय पिताकी सच्ची आज्ञाका ही पालन किया है। अनुष्ठानकी बात सोचनेका समय उसे नहीं मिला। आप खुद भी तो वनमाली बाबूकी यथार्थ इच्छा जानते थे। उसमें तो कोई त्रुटि नहीं हुई?"

रासबिहारी इस दुर्मुख लड़कीकी ओर एक क्रूर दृष्टि डालकर सिर्फ 'हूँ' कहकर रह गये। वे लौटनेको उद्यत हो रहे थे कि नलिनीने दुलारके सुरमें कहा "वाह! आप शायद विवाहके घरसे खाली खाली चले जाइएगा। यह नहीं होगा आपको भोजन करके जाना होगा। मैंने मामाके द्वारा कितने कष्टसे आपको निमन्त्रित करके बुलाया है!"

रासबिहारी मुँहसे कुछ नहीं बोले, उसकी ओर एक बार और भी अग्निदृष्टि निक्षेप करके धीरे धीरे बाहर निकल गये।

